M. A. Political Science (Previous) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20POL22C10

RESEARCH METHODOLOGY - II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Pardeep Kumar*

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price :

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

MASTER OF ARTS (Political Science)
Second Semester
Paper Code : 20POL22C10
Paper- Research Methodology-II

M. Marks = 100
Term End Examination = 80
Assignment = 20
Time = 3 hrs

Note : - The question paper will be divided into five Units carrying equal marks i.e. 16 marks. Students shall be asked to attempt one out of two questions from each unit. Unit five shall contain eight short answer type questions without any internal choice and it shall be covering the entire syllabus. As such , all questions in unit five shall be compulsory.

Unit-I

Need and Importance of Sampling,

Types of Sampling; Random, Stratified, Multistage,

Purposive, Characteristics and Problems of Representative Sample.

Unit-II

Types and Sources of Data,

Techniques of Data Collection : Interview, Schedule, Questionnaire,

Participant, Non-Participant, Observation.

Unit-III

Data Processing and Analysis : Classification, Codification, Tabulation.

Scaling Techniques.

Statistical Analysis : Mean, Median & Mode

Unit-IV

Analysis of Secondary Data.

Content Analysis

Report Writing

Problem of Objectivity in Social Science Research

विषय–सूची

इकाई–1 निर्दशन पृ. संख्या : 1–64

निदर्शन–पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा, निदर्शन के आधार, निदर्शन की अनिवार्य अवधारणाएँ, उत्तम या प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की आवश्यक विशेषताएँ, निदर्शन–प्रविधि के लाभ, निदर्शन–प्रविधि के दोष अथवा सीमाएँ, प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुनाव के चरण या प्रक्रिया, निदर्शन के प्रकार, निदर्शन की प्रमुख समस्याएँ एवं उनके निदान

इकाई–2 आँकड़ो का संकलन, आँकड़ों के संकलन की विभिन्न प्रविधियाँ : साक्षात्कार अनुसूची, प्रश्नावली, निरीक्षण या अवलोकन पृ. संख्या : 65–197

आँकड़ों का अर्थ एवं परिभाषा, आँकड़ों के संकलन का महत्त्व, आँकड़ों या सूचना के स्वरूप अथवा प्रकार, प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अंतर, सूचना या आँकड़ों के स्रोत, जनगणना का महत्त्व, आँकड़ों के संकलन की प्रविधियाँ : साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली व अवलोकन प्रविधि

इकाई–3 सामग्री विश्लेषण की प्रक्रिया : सम्पादन, वर्गीकरण, संकेतीकरण तथा सारणीयन, माध्य प्रवृत्तियों की माप : समानान्तर माध्य, माध्यांक, बहुलक माध्य व मानक विचलन पृ. संख्या : 198–278

सामग्री–विश्लेषण का अर्थ व परिभाषा, विश्लेषण के आधार, विश्लेषण की प्रक्रिया के चरण, सम्पादन, वर्गीकरण, संकेतीकरण तथा सामग्री का सारणीयन; माध्य प्रवृत्तियों की माप : समानान्तर माध्य, मध्यका, भूयिष्ठक या बहुलक व मानक विचलन

इकाई–4 द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण, अन्तर्वस्तु विश्लेषण, प्रतिवेदन लेखन व सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या पृ. संख्या : 279–327

द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण– द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण का अर्थ व परिभाषा, प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अंतर, द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की

प्रक्रिया, द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के गुण या लाभ, द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के दोष या सीमाएँ ; अन्तर्वस्तु विश्लेषण–अन्तर्वस्तु विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा, अन्तर्वस्तु विश्लेषण की विशेषताएँ, अन्तर्वस्तु विश्लेषण का महत्त्व, अन्तर्वस्तु विश्लेषण की प्रमुख समस्याएँ; प्रतिवेदन लेखन–रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य, अनुसंधान प्रतिवेदन तैयार करने से संबंधित कुछ सामान्य सिद्धान्त, एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ, प्रतिवेदन की रूपरेखा, अनुसंधान–प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियाँ, अनुसंधान–प्रतिवेदन का प्रकाशन; सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता–वस्तुनिष्ठता का अर्थ तथा परिभाषा, सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का महत्त्व, वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में कठिनाइयाँ, वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन।

इकाई–1 निदर्शन

इकाई की रूपरेखा :

1.0 परिचय

1.1 अधिगमन उद्देश्य

1.2 संरचना

1.3 निदर्शन–पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा

1.4 निदर्शन के आधार

1.5. निदर्शन की अनिवार्य अवधारणाएँ

1.6 उत्तम या प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की आवश्यक विशेषताएँ

1.7 निदर्शन –प्रविधि के लाभ

1.8 निदर्शन–प्रविधि के दोष अथवा सीमाएँ

1.9 प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुनाव के चरण या प्रक्रिया

1.10 निदर्शन के प्रकार

1.10.1 दैव निदर्शन

1.10.2 स्तरीकृत निदर्शन

1.10.3 उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन

1.10.4 बहुस्तरीय निदर्शन

1.10.5 गुच्छ निदर्शन

1.10.6 अभ्यंश निदर्शन

1.10.7 व्यवस्थित निदर्शन

1.10.8 आकस्मिक निदर्शन

1.11 निदर्शन की प्रमुख समस्याएँ एवं उनके निदान

1.12 अपनी प्रगति जांचिए

1.13 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.14 सारांश

1.15 मुख्य शब्दावली

1.16 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0. परिचय :

सामाजिक विज्ञानों में निदर्शन पद्धति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। निदर्शन की प्रक्रिया (सम्पूर्ण (Whole) या समग्र (Universe) में से उसके एक ऐसे अंश का चुनाव, जिसके आधार पर समग्र के बारे में परिणाम निकाले जाते हैं) का विकास जन–शताब्दियों में ही हुआ है। मिल्ड्रेड पार्टिन के मत में 1900 के पूर्व में निदर्शन के उपयोग के लिखित प्रमाण बहुत कम संख्या में उपलब्ध होते हैं। 1920 के उपरान्त ही निदर्शन का प्रयोग आरम्भ हुआ माना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनगणना ब्यूरो ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग 1940 में किया है।

ए.एल. बाऊले ने लन्दन में विभिन्न समूहों में से कुछ परिवारों का चयन करके उस अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत बड़ी मात्रा में उस स्थान की सम्पूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते थे। बाद में आगे चलकर चार्ल्स बूथ एक राउन्ट्री ने उसी समुदाय का व्यापक अध्ययन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत कुछ बाऊले के निष्कर्षों के समान थे, अतः सामाजिक विज्ञानों में बाऊले द्वारा प्रयुक्त निदर्शन प्रणाली की उपयोगिता इस बात को लेकर स्थापित हो गई कि निदर्शन के द्वारा न केवल बहुत अधिक धन व समय की बचत की जा सकती है, बल्कि अध्ययन के निष्कर्षों में विश्वसनीयता व उपयोगिता में भी कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, अतः शनैः शनैः निदर्शन पद्धति समस्त विज्ञानों में अत्यन्त लोकप्रिय होती गई। ए. वुल्फ ने लिखा है कि "विज्ञान एवं दैनिक जीवन के अन्तर्गत वास्तविक प्रयोग में हम उस बात का विश्वास करते हैं जिसे शुद्ध निदर्शनों का सिद्धान्त माना जा सकता है।"

हम अपने सामान्य दैनिक जीवन में निदर्शन का प्रयोग अनेकों बार करते हैं। उदाहरणार्थ, हम बाजार से राशन लेते समय, राशन की पूरी बोरी को उठाकर नहीं देखते वरन् एक मुट्ठी भर राशन का निरीक्षण कर यह पता लगा लेते हैं कि राशन की गुणवता कैसी है। गृहिणी खाना बनाते समय पूरे खाने को नहीं अपितु पूरे खाने में से एक चम्मच चखकर यह अनुमान लगा लेती है कि खाना कैसा पका है। फल खरीदते समय भी हम पूरे फल को नहीं खाते वरन् पूरे ढेर में से एक फल को खाकर यह जान लेते हैं कि फल मीठा है अथवा नहीं। उपरोक्त सभी क्रियाओं में हमने निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया है।

अनुसन्धान कार्य में भी यही बात लागू होती है। अनुसन्धान में अधिकतर परिस्थितियाँ ऐसी आती हैं जिनमें हम केवल निदर्शन के आधार पर विश्वसनीय निष्कर्ष निकाल सकते हैं। बशर्ते कि निदर्शन का चयन वैज्ञानिक ढंग से किया गया हो। अधिकतर अनुसन्धान परिस्थितियों में निष्कर्ष निकालने के लिए केवल निदर्शन को लेना ही पर्याप्त नहीं होता किन्तु समष्टि के समस्त सदस्यों का अध्ययन करना अनावश्यक होता है। सम्पूर्ण समष्टि का अध्ययन करना केवल समय का अपव्यय है, क्योंकि निदर्शन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष समष्टि के समस्त सदस्यों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों से भिन्न नहीं होते। जब हम एक चम्मच चावलों के आधार पर यह पता लगा सकते हैं कि चावल पके हैं या नहीं, तो बर्तन के सब चावल को देखना न तो आवश्यक ही है न सम्भव ही। साथ ही सब चावलों को यदि हम देख भी लें तो शायद हम उसी निष्कर्ष पर पहुंचेगे जिस निष्कर्ष पर एक चम्मच चावलों को देखकर पहुंचे हैं।

अनुसन्धान कार्य में कुछ परिस्थितियां अवश्य ऐसी हो सकती हैं जिसमें हमें सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन करना पड़ता है। केवल निदर्शन से काम नहीं चलता। उदाहरणार्थ, हमें यदि यह पता लगाना हो कि भारत में इस समय साक्षरता (Literacy) की क्या स्थिति है तो हमें सम्पूर्ण गणना करनी होगी केवल निदर्शन लेकर काम नहीं चलेगा। किन्तु अधिकतर परिस्थितियों में हम निदर्शन के द्वारा निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

निदर्शन की प्रक्रिया अथवा समग्र या समष्टि से उसके ऐसे अंश का चुनाव, जिसके आधार पर सम्पूर्ण समग्र का समष्टि के विषय में परिणाम निकाले जाने हैं, अत्यधिक प्राचीनकाल से अनुसंधान कार्यरीति के एक वैद्य एवं शीघ्रता के साथ कार्य करने के ढंग के रूप के प्रयोग में लाया जाता रहा है। आधुनिक निदर्शन कार्यरीति के इतिहास का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हुए स्टीफन ने यह बतलाया है कि "नियमित जनगणनाओं की स्वीकृति के पूर्व सदैव निदर्शन किए जाते रहे हैं।" जानबूझ कर निदर्शन के लिए बनाई गई योजनाओं के लिखित प्रमाण सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सन् 1900 से पूर्व बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं। ए.एल. बाउले द्वारा लंदन में घरों को दैव निदर्शन प्राप्त करने के लिए बनाई गई योजना में सर्वप्रथम प्रतिदर्शन के लिए अपनाई गई अधिक कठोर कसौटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

1.1. अधिगमन उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित उद्देश्यों का अधिगमन कर सकेंगे :

– निदर्शन का अर्थ और आधार

– निदर्शन की अनिवार्य अवधारणाएं

– प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की आवश्यक विशेषताएं

– निदर्शन की आवश्यकता व महत्व

– निदर्शन के दोष व सीमाएं

– निदर्शन विधि के प्रकार जान पाएंगे।

1.2. संरचना :

संचना से अभिप्राय किसी विषयवस्तु के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री को संगठित व क्रमबद्ध आधार प्रदान करना है। किसी विषयवस्तु को संगठित आधार प्रदान करने हेतु निम्न चरणों का अनुसरण करना पड़ता है :

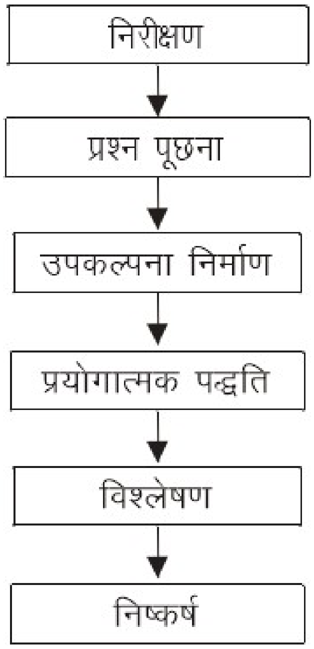

प्रस्तुत इकाई में निदर्शन प्रविधि को परिभाषित करने हेतु इसकी समस्त विषयवस्तु को भी एक संरचनात्मक ढांचे के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है :

निदर्शन का अर्थ व आधार

↓

निदर्शन की अनिवार्य अवधारणाएं

↓

प्रतिनिधित्व निदर्शन की आवश्यक विशेषताएं

↓

निदर्शन की आवश्यकता व महत्व

↓

निदर्शन के दोष व सीमाएं

↓

निदर्शन प्रविधि के विभिन्न प्रकार

1.3. निदर्शन–पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning & Definition)

निदर्शन पद्धति का अर्थ जानने से पूर्व आवश्यक है कि हम निदर्शन का अर्थ जान लें। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि समग्र में से चुने गए ऐसे "कुछ" को जोकि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है निदर्शन कहते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि निदर्शन किसी भी चीज या समूह का सम्पूर्ण भाग या समस्त इकाइयाँ नहीं होती हैं अपितु उस समग्र का एक छोटा भाग या केवल कुछ इकाइयाँ ही होती हैं, पर समग्र का कोई भी कुछ इकाई निदर्शन नहीं है जब तक कि ये कुछ इकाइयाँ समग्र की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व न करें। इस अर्थ में समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ इकाइयों को निदर्शन कहा जाता है।

सर्वश्री गुडे एवं हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है, "एक निदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है किसी विशाल सम्पूर्ण का छोटा प्रतिनिधि है।''

श्रीमती यंग के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अति लघु चित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।"

श्री फ्रैंक याटन (Frank Yaton) के शब्दों में, "निदर्शन शब्द का प्रयोग केवल किसी समग्र चीज की इकाइयों के एक सेट या भाग के लिए किया जाना चाहिए। जिसे इस विश्वास के साथ चुना गया है कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व करेगा।"

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निदर्शन–पद्धति अनुसन्धान की वह पद्धति है जिसमें अनुसन्धान विषय के अन्तर्गत सम्मिलित सम्पूर्ण जनसंख्या या इकाइयों में से सावधानीपूर्वक कुछ ऐसी इकाइयों को चुन लेता है जो कि सम्पूर्ण की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

श्री वी॰डी॰ केसकर (V.D. Keskar) के अनुसार, "निदर्शनात्मक अनुसन्धान में हम समग्र समूह के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं यद्यपि संकलित तथ्य जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं समग्र के केवल एक भाग से सम्बन्धित होता है।"

श्री बोगार्डस (Bogardus) के शब्दों में, "निदर्शन–प्रविधि एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है।"

श्री फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने अपनी डिक्शनरी ऑफ सोशियोलोजी में मिलड्रेड पार्टन के शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, मामलों या निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया या पद्धति अथवा अध्ययन के हेतु एक समग्र समूह में से एक भाग को चुनना निदर्शन पद्धति कहलाती है।"

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है निदर्शन–प्रविधि का केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान में ही नहीं बल्कि रोज के व्यावहारिक जीवन में भी प्रयोग किया जाता है। श्री टिप्पेट (Tippett) ने ठीक ही लिखा है कि "बड़े समूह में से एक छोटा भाग लेने की विधि सामान्यतया भली प्रकार समझी और विस्तृत रूप में काम में लाई जाती है। गृहस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा नमूने के रूप में लेगी और एक रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गाँठ को खरीद लेगा।" इस प्रविधि की लोकप्रियता के कारणों की विवेचना हम इसी अध्याय में आगे चलकर करेंगे। उससे पहले यहाँ निदर्शन के आधार को समझ लेना आवश्यक होगा।

1.4 निदर्शन के आधार

(Bases of Sampling)

निदर्शन पद्धति का अर्थ जान लेने के पश्चात हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि सम्पूर्ण जनसंख्या में से केवल कुछ इकाइयों को चुनकर उसी को सम्पूर्ण का प्रतिनिधि किस प्रकार मान लिया जाए। इस के पक्ष में हम निम्नलिखित तर्क दे सकते हैंः–

1. संपूर्ण जनसंख्या की एकरूपता (**Homoegeneity of Universe**) : श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि यदि तथ्यों में अत्यधिक एकरूपता पाई जाती है अर्थात् सम्पूर्ण तथ्यों की विभिन्न इकाइयों में अन्तर बहुत कम है तो सम्पूर्ण में से कुछ या कोई इकाई समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करेगी। इसलिए यदि हमारा अध्ययन–विषय इस प्रकार का है कि उसकी विभिन्न इकाइयों को चुनेंगे वे प्रतिनिधित्वपूर्ण होंगी और हमारा निदर्शन यथार्थ होगा। भौतिक चीजों में इस प्रकार की समानता बहुत–कुछ उत्पादन विधि में समानता होने के कारण देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ, कपड़े का एक छोटा–टुकड़ा एक मिल में उत्पादित उस प्रकार के समस्त कपड़ों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकता है अथवा घर में पकी हुई सब्जी की एक प्लेट सम्पूर्ण सब्जी की उत्तमता या अधमता का परिचायक हो सकती है। परन्तु सामाजिक घटनाओं का अध्ययन–विषयों में इस प्रकार की समानताओं की आशा नहीं की जा सकती। श्री स्टीफॉन (Stephan) ने लिखा है कि आधुनिक बड़े समाजों में विभिन्न प्रजाति, राष्ट्र, धर्म, आर्थिक स्थिति, पेशा, प्रथा–परम्परा, मनोवृत्तियों तथा रुचियों के लोग इतना अधिक घुले–मिले रहते हैं कि उनमें समानता का दर्शन नहीं होता है। इसके विपरीत जीवन के प्रत्येक पक्ष में विविधताओं का ही बोलबाला होता है और एक–दूसरे को अलग करना कठिन होता है। इस प्रकार के स्पष्ट विभाजनों के प्रभाव से ऐसे निदर्शन का चुनाव जटिल हो जाता है जो कि समुदाय में विद्यमान समस्त विविधिताओं का प्रतिनिधित्व कर सके। अतः निदर्शन के चुनाव में हमें अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए ताकि इन विविधताओं में अन्तर्निहित एकरूपता को ढूँढ़ा जा सके और हमारा निदर्शन प्रतिनिधित्व हो। निदर्शन–प्रविधि इस मान्यता पर आधारित है कि विविधताओं के बीच समानताओं को भी सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में खोजा जा सकता है।

2. प्रतिनिधि चुनाव की सम्भावना (**Possibility of Representative Selection**) : निदर्शन–प्रविधि में यह स्वीकार किया जाता है कि सम्पूर्ण में से कुछ इकाइयों को इस

प्रकार चुना जा सकता है कि वे सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व कर सकें। पर इसके लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। उदाहरणार्थ, किसी विशाल समूह से केवल एक या दो इकाइयों के चुन लेने से ही उस समूह के बारे में हमारा निष्कर्ष प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होगा। निदर्शनों की संख्या समूह की विशालता के अनुसार होनी चाहिए। उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि किसी विशेष गुण या गुण–समूह के आधार पर सम्पूर्ण समूह को कुछ निश्चित वर्गों में विभाजित कर लिया जाए और प्रत्येक वर्ग की कुछ इकाइयों को चुन लिया जाए तो इस प्रकार चुनी हुई सभी इकाइयों के लिए समग्र समूह की आधारभूत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करना सम्भव होगा।

3. लगभग सही होना (Approximate Accuracy) : कोई भी निदर्शन चाहे वह कितनी ही सावधानी से क्यों न चुना गया हो, सम्पूर्ण का शतप्रतिशत प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। इसलिए निदर्शन में परिपूर्ण परिशुद्धता लाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि निदर्शन यथासंभव प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। यह यथासम्भव प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन वास्तविक स्थिति का एक लगभग चित्र होगा और हमारा निष्कर्ष भी लगभग ठीक होगा। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में हमें इस लगभग निष्कर्ष से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है क्योंकि व्यवहारतः शतप्रतिशत सही निष्कर्ष सम्भव नहीं है।

उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज के 200 विद्यार्थियों का अध्ययन निदर्शन–प्रविधि द्वारा किया गया और पता चला कि 7 प्रतिशत विद्यार्थी क्लास से भाग जाने के आदी हैं, जबकि उस कॉलेज के समस्त विद्यार्थियों की जांच करके यदि यह पता चले कि यह प्रतिशत 6.4 अथवा 7.3 है तो हमारे निष्कर्षों पर कोई बहुत बड़ा प्रभाव नहीं पड़ता है और इस प्रकार थोड़े–बहुत अन्तर के लिए प्रत्येक समाज–वैज्ञानिक को प्रस्तुत रहते भी निदर्शन–प्रविधि को अपनाना चाहिए।

1.5 निदर्शन की अनिवार्य अवधारणाएँ

(Essential Concepts of Sampling)

निदर्शन के बारे में विस्तृत अध्ययन से पूर्व यह अधिक उचित होगा कि निदर्शन से सम्बन्धित कुछ प्रमुख अवधारणाओं की विवेचना करें जो कि निम्नांकित हैं–

1. इकाई (Unit)

2. समग्र या समष्टि (Universe)

3. निदर्शन इकाई (Sampling Unit)

4. निदर्शन संरचना (Sampling Frame)

5. स्तर (Strata)

6. साधन–सूची (Source List)

1. इकाई

(Unit)

एक प्रारम्भिक इकाई अथवा केवल एक इकाई तत्त्व अथवा तत्त्वों का एक ऐसा समूह है जिस पर पर्यवेक्षण किए जा सकते हैं अथवा जिससे एक सुपरिभाषित सांख्यिकीय कार्यरीति के अनुसार अपेक्षित साँख्यिकीय सूचना प्राप्त की जा सकती है। इकाइयों के उदाहरण व्यक्ति, परिवार, फार्म, कारखाने इत्यादि। एक सूचना प्रदान करने वाली इकाई वह इकाई है जो वास्तव में आवश्यक साँख्यिकीय सूचना प्रदान करती है अथवा जिससे सूचना सरलतापूर्वक प्राप्त की जा सकती है। सूचना प्रदान करने वाली यह इकाई एक अकेली प्रारम्भिक इकाई अथवा अनेक प्रारम्भिक इकाइयों का समूह हो सकती है। उदाहरण के लिए, परिवार का मुखिया। एक विश्लेषण की इकाई वह इकाई है जिसका प्रयोग सारणीकरण के स्तर पर किया जाता है। यह ध्यान रहे कि सूचना प्रदान करने वाली इकाई तथा विश्लेषण की इकाई भिन्न–भिन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, सूचना प्रदान करने वाली इकाई के रूप में परिवार का मुखिया हो सकता है तथा विश्लेषण की इकाई के रूप में परिवार अथवा परिवार का कोई व्यक्ति हो सकता है।

राजनीतिक समग्र की इकाइयाँ अवधारणाओं के द्वारा निर्मित होती हैं तथा अमूर्त होती हैं। उन्हें केवल कतिपय चिन्हों, प्रतीकों या संकेतकों द्वारा ही पहचाना जाता है। जैसे, भ्रष्टाचार, राष्ट्रवादी, गाँधीवाद, आदि को विशेष संकेतकों अथवा व्यवहार के आधार पर ही जाना जा सकता है। पार्टन (Parten) ने लिखा है कि "सर्वेक्षक यह विचार सम्बन्धी भूल कर बैठते हैं कि मनुष्यों के समग्र का अध्ययन करते समय केवल व्यक्ति (Individual) ही उनके समग्र की इकाई बन सकते हैं। वास्तव में बहुत कम शोध–अध्ययनों में व्यक्ति को अध्ययन की इकाई बनाया जाता है।" राजनीतिक शोध में व्यक्ति के मतदाता दलीय

सदस्यता, राजनेता, अनुयायी आदि पक्ष शोध–समग्र की इकाई बनते हैं। समग्र की अनेक इकाइयाँ हो सकती हैं जैसे–

1. **भौगोलिक इकाइयाँ (Geographical Units)** : राज्य, जिला, ग्राम, नगर, वार्ड, गली, तहसील आदि।

2. **राजनीतिक इकाइयाँ (Political Units)** : राजनीतिक दल, राज्य, जिला परिषद्, पचांयत समिति, पंचायत, दबाव समूह, विधानसभा, संसदीय समितियाँ, राष्ट्र, राष्ट्रीयता–समूह, राजनीतिक अभिजन, विरोध पक्ष, मतदाता वर्ग आदि।

3. **प्रशासनिक इकाइयाँ (Administrative Units)** : विभाग, कर्मर्चारी संघ निगम, अधीनस्थ कार्यालय, नौकरशाह, प्रशासनिक निर्णय, प्रशासनिक कार्यविधि, स्वविवेकीय क्षेत्र, भर्ती आयोग, प्रशासनिक अधिकरण, सचिवालय आदि।

4. **सामाजिक इकाइयाँ (Social Units)** : परिवार, जाति, क्लब, चर्च, संस्कृति, धर्म, सामाजीकरण आदि।

5. **आर्थिक इकाइयाँ (Economic Units)** : बजट, कर, आय, राष्ट्रीय अथवा व्यक्तिगत आय, उत्पादन विनिमय, बैंक, मन्दी, उद्योग आदि।

6. **व्यक्ति सम्बन्धी इकाइयाँ (Individual Units)** : सम्पूर्ण व्यक्ति, पुरुष, स्त्री, बालक, युवा, हिन्दु, मुस्लिम, ग्रामीण, शहरी, नागरिक, तस्कर, व्यापारी, मजदूरी आदि।

निदर्शन की इकाई कोई भी क्यों न हो वह स्पष्ट, सुनिश्चित एवं भ्रमरहित होनी चाहिए। वह प्रमाणिक तथा विषय के अनुकूल होनी चाहिए। सबसे बढ़कर वह अवलोकनीय, सम्पर्क योग्य अथवा उपयोगी होनी चाहिए।

2. **समग्र या समष्टि**

(Universe)

समग्र या समष्टि उस पूरे समूह को जिसके विषय में हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं कहा जाता है। एफ.एम. कर्लिजर ने लिखा है, 'समग्र' शब्द का अर्थ व्यक्तियों, घटनाओं अथवा वस्तुओं के सुपरिभाषित वर्ग के सदस्यों से है। जहोदा ने लिखा है कि, "समग्र उन सभी व्यक्तियों का योग है जो विशिष्टता के एक समान स्तर को बताते हैं।" एम.एन. मूर्ति

ने ''सैम्पलिंग थ्योरी एण्ड मैथ्ड्स'' में कहा है कि, "काल के एक विशिष्ट बिन्दु अथवा अवधि पर एक दिए हुए क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रकार की सभी इकाइयों के संग्रह को समग्र कहा जाता है।"

'समग्र' शब्द का प्रयोग, समय के विभिन्न बिन्दुओं का एक विशिष्ट क्षेत्र में एक इकाई अथवा इकाइयों के समूह से सम्बन्धित पर्यवेक्षणों के संग्रह के लिए भी किया जाता है। इस समग्र तथा उसकी इकाइयों को चुनना वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। शोध–कर्त्ता जितनी अधिक स्पष्टता से अपने समग्र को समझेगा तथा उसकी इकाइयों को सावधानीपूर्वक चुनेगा, उतनी ही अधिक मात्रा में, उसका शोध सफल तथा दूसरों द्वारा सत्यापन–योग्य माना जाएगा। वस्तुतः शोधक 'सम्पूर्ण' समूह का अध्ययन न करके उसके किसी 'पक्ष' या 'सारभाग' का अध्ययन करता है। उसे यह बता देना चाहिए कि वह किस पक्ष या सारभाग का अध्ययन न करे उसके किसी 'पक्ष' या 'सारभाग का अध्ययन कर रहा है। इस स्पष्टीकरण की दृष्टि से समग्र या जनसंख्या के दो प्रकार होते हैं–

1. विशिष्ट, विशेष या कार्यकर समग्र (Specific Univrse); **तथा 2. सामान्य समग्र** (General Universe)।

विशेष या कार्यभार समग्र वह विशिष्ट मूर्त तथा स्पष्ट व्यवस्था होती है जिसमें से शोधक अपने सूचनादाताओं का चयन करता है। इस व्यवस्था को साँख्यिकी में जनसंख्या या समग्र कहा जाता है। शोधकर्त्ता प्रायः इस समग्र की सीमाओं तक ही सीमित रहकर कार्य करते हैं। किन्तु उसकी इच्छा यह होती है कि उसके निष्कर्ष उस विशेष व्यवस्था या समूह पर ही लागू न रहकर अन्य सभी समान व्यवस्थाओं एवं समूहों पर लागू हों। उसके सामान्यीकरण उस समूह से सम्बद्ध होते हुए भी स्थान और समय से आबद्ध न रहें। इन समस्त समूहों या व्यवस्थाओं के अमूर्त समग्र को जिस पर शोधक अपने निष्कर्ष लागू करना चाहता है, 'सामान्य समग्र' कहा जाता है। जैसे, यदि किसी ने राजस्व मण्डल, राजस्थान का अध्ययन किया है तो वह यह चाहता है कि उसके निष्कर्षों को सभी राजस्व मण्डलों पर लागू कर दिया जाए। सेल्जनिक तथा गोल्डनर ने भी ऐसा ही किया है।

शोधकर्त्ता अपने शोध–निष्कर्षों को अपने समकालीन विशेष समग्रों पर ही लागू करके सन्तुष्ट नहीं होता, अपितु यह भी चाहता है कि उन्हें अन्य संस्कृतियों वाले देशों के

समग्रों पर भी लागू किया जाए। ये सभी शोधक विभिन्न समग्रों में से अपने समग्र को 'प्रतिनिधित्वपूर्ण' मानकर अध्ययन नहीं करते, किन्तु ये चाहते हैं कि उनके समग्र सम्बन्धी निष्कर्ष सभी समग्रों की 'व्याख्या' (Explain) कर सकें। इसे 'एक महत्त्वाकाँक्षी सैद्धान्तिक कूद' कहा जा सकता है, जिसके प्रतिनिधित्वपूर्ण होने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। अपने विशिष्ट समग्र से सामान्य समग्र तक उछाल मारने के अनेक कारक होते हैं। (1) विभिन्न समग्रों के मध्य मौलिक एकरूपता मान बैठना (2) उनकी व्यापक सैद्धान्तिक अवधारणाएँ, सभी इसलिए भूल जाते हैं कि सभी इस भूल को दोहराते हैं।

विशिष्ट समग्र का चयन

(Selection of Specific Universe)

निदर्शन शोधक के विशिष्ट समग्र के भीतर होता है। इसलिए विशिष्ट समग्र के विषय में पहले विचार किया जाना चाहिए। व्यवहार में, विशिष्ट समग्र के अध्ययन का आधार बताना अत्यन्त कठिन कार्य माना जाता है। ऐसा करते समय दो बाधाएँ सामने आती हैं। प्रथम, विशिष्ट समग्र शोधक की सैद्धान्तिक मान्यताओं को बताता है, तथा द्वितीय, समग्र के स्थायित्व या बने रहने के काम का पता लग जाता है, जो हो सकता है कि सही न हो। विभिन्न शोधकर्त्ता एक ही अध्ययन–विषय से सम्बन्धित समग्र, जैसे–समुदाय के प्रमुख निर्णायकों के विषय में अपने भिन्न–भिन्न परिप्रेक्ष्यों के कारण अलग–अलग निष्कर्ष निकालते हैं। 'बुद्धिजीवियों (Intellectuals) 'बेरोजगार' (Unemployed) आदि विषयक सामग्री के बारे में एकमत होना सम्भव नहीं है। विभिन्न संस्कृतियों वाले देशों में ऐसे विवादास्पद समग्र लेकर शोध करना और भी अधिक कठिन होता है। 'गाँव' (Village) सभी देशों में एक से नहीं होते। सभी देशों के शहरी औद्योगिक क्षेत्र भी समान नहीं हैं। जिन कारणों से विशिष्ट समग्रों में भिन्नता आ जाती है उनमें से तार्किक एवं सैद्धान्तिक कारण प्रमुख होते हैं। शोधकर्त्ता को किसी सिद्धान्त के प्रति निष्ठा तथा वैसा ही शोध–अभिकल्प होने के कारण समग्र भिन्न हो जाता है। जो शोधकर्त्ता नए सिद्धान्तों या सामान्यीकरणों का विकास करना चाहते हैं, उनके समग्र उन शोधकों से भिन्न हो जाते हैं जो विद्यमान प्रकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों का परीक्षण या प्रमाणीकरण करना चाहते हैं।

समग्रों के चयन के अनेक आधार होते हैं– उनमें से कुछ प्रमुखतः निम्नांकित हैं–

1. नए सिद्धान्त या सामान्यीकरण की खोज : ऐसा करने के लिए शोधक ऐसा समग्र चुनता है जिससे नए तथ्य, सामान्यीकरण आदि ज्ञात हो सकें। वह किसी संघ, दल या समूह का लगातार अध्ययन कर सकता है।

2. विद्यमान प्रकल्पनाओं या सिद्धान्तों का परीक्षण : इसके अन्तर्गत शोधकर्त्ता वर्तमान सामान्यीकरण या सिद्धान्त को प्रमाणित करना चाहता है। जैसे, शोधक भारत में गिरते हुए अनुशासन के लिए बढ़ते हुए विद्यार्थी–राजनेता सम्बन्धों को प्रमाणित करने के लिए राजनीति–प्रेरित विद्यार्थी एवं उनसे सम्बन्धित नेताओं के समग्र को ले सकता है।

3. प्रकल्पना या सिद्धान्त का अप्रमाणीकरण : इसमें विद्यमान प्रकल्पना या सिद्धान्त को असिद्ध करने के लिए समग्र चुना जाता है। लिप्सेट ने मिचैल के 'अल्पतन्त्र की लौह–विधि' (Iron Law of Oligarchy) को असत्यापित करने के लिए एक संघ का अध्ययन किया है।

4. प्रकल्पना या सिद्धान्त का पुनर्परीक्षण : कुछ शोधक अपने पहले के निष्कर्षों या निर्वचनों का पुनर्परीक्षण करने के लिए पुष्टिकारक सामग्री लेते हैं। ये स्वयं या दूसरे के अनुसन्धान कार्यों का प्रतिवलन करते हैं, अर्थात् दोबारा शोध करके सत्य की परख करते हैं। लेविस ने रैडफील्ड द्वारा किए गए एक गाँव के अध्ययन का प्रतिवलन किया था। हार्थोन प्रयोग (Howthorn Experiment) का भी इसी प्रकार पुनर्परीक्षण किया जा चुका है। ऐसा करके पूर्ववर्ती शोधकर्त्ताओं के पूर्वाग्रहों का पता लगाया जा सकता है। लेकिन समाज, समुदाय आदि स्थैतिक नहीं होते, अतएव प्रतिवलन अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर देता है। राजनीति में तो परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से हो सकते हैं। अतः प्रतिवलन और भी अधिक सीमित हो जाती है।

5. सामान्य प्रकार (General Type) की खोज : ऐसे समग्र को शोधकर्त्ता इसलिए चुनता है कि वह असामान्य या विपथगामी नहीं है। ऐसे समग्र का चयन करने से पूर्व शोधक को विस्तृत अध्ययन करना पड़ता है।

6. प्रयोगात्मक अभिकल्प में प्रयोग : ऐसा प्रयोग कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकता है। इसमें शोधकर्त्ता यह आशा करता है कि उस समग्र में प्रयोग करना सम्भव हो सकेगा।

7. सामाजिक कारक : इस शीर्षक के अन्तर्गत समग्र को चयन करने में सामाजिक कारकों को शामिल किया गया है, जैसे आधार–सामग्री की सुविधाजनक प्राप्ति, समय, धन तथा

मानव शक्ति की सीमा, सुगमता तथा व्यावहारिक लाभ। व्यावहारिक लाभ में शोध कराने वालों का आदेश, प्रसन्नता, उपाधि की प्राप्ति आदि बातें विचाराधीन रहती हैं। कभी–कभी आकस्मिक घटना या दैवयोग भी कारण बन जाता है। जेम्स वेस्ट की प्लेनविल गाँव के पास मोटरकार खराब हो गई और उसे वहां कुछ दिन ठहरना पड़ा। उसने शोध के लिए उसी गांव को समग्र बना लिया।

8. अन्य कारण : सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनीतिक दबाव भी विशेष समग्र को चुनने के लिए विवश करते हैं। समाज की विभिन्नताएँ और परिवर्तनशीलता के साथ–साथ शोध–दल का संगठन भी विशेष निदर्शन के चयन का आधार बन जाता है।

समग्रों के चयन के उपर्युक्त आधारों के अध्ययन से पता चलता है कि उसके चयन के अनेक विज्ञानेत्तर कारण होते हैं। इन आधारों का समग्रों, निदर्शनों, प्रविधियों आदि सभी पर प्रभाव पड़ता है।

3. **निदर्शन इकाई**

(Sampling Unit)

ऐसी प्रारम्भिक इकाइयाँ अथवा इन इकाइयों के समूह जो स्पष्ट रूप से परिभाषित, पहचाने जाने योग्य एवं पर्यवेक्षणीय होने के अतिरिक्त निदर्शन की दृष्टि से सुविधाजनक होते हैं, निदर्शन इकाइयाँ कहलाती हैं। उदाहरणार्थ, एक पारिवारिक बजट के अध्ययन में प्रायः परिवार को अत्यधिक सुविधाजनक मानते हुए निदर्शन इकाई के रूप में स्वीकार किया जाता है।

4. **निदर्शन ढाँचा**

(Sampling Frame)

समग्र की सभी निदर्शन इकाइयों का एक ऐसा ढाँचा आवश्यक होता है जो उनकी समुचित परिचयात्मक विशेषताओं को प्रदान कर सके और इस प्रकार के ढाँचे को निदर्शन ढाँचा हो जाता है।

निदर्शन ढाँचों को दो प्रमुख समूहों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) निदर्शन इकाइयों की सूची, तथा

(2) क्षेत्रीय इकाइयों की सीमाओं को निदर्शन करने वाले मानचित्र। सूची–ढाँचे के अन्तर्गत इकाइयों के पहचाने जाने के लिए उपयुक्त सूचना सहित निदर्शन इकाइयों की एक सूची पायी जाती है। प्रायः इस ढाँचे के अन्तर्गत निदर्शन इकाइयों से सम्बन्धित अतिरिक्त सूचना भी पाई जाती है। क्षेत्रीय अथवा मानचित्रीय ढाँचे के अन्तर्गत निदर्शन इकाइयों अथवा इनके समूहों की जो प्रायः क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में पाई जाती है, भौगोलिक सीमाएँ प्रदर्शित की गई होती हैं, जिन्हें स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

5. स्तर

(Strata)

किसी समग्र या समष्टि के कई भाग किए जा सकते हैं। प्रत्येक भाग को स्तर कहते हैं। स्तर विभिन्न आधारों पर बन सकते हैं। जैसे किसी स्कूल के विद्यार्थियों को स्तरों में बांटने का आधार हो सकता है पास होना। पास होने वाले विद्यार्थियों का एक स्तर होगा और फेल होने वाले विद्यार्थियों का दूसरा। इसी प्रकार किसी ग्राम की समष्टि (जनसंख्या) को विभिन्न आधारों पर स्तरों में बाँटा जा सकता है, लिंग के आधार पर पुरुषों और स्त्रियों के स्तर, धर्म के आधार पर हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों आदि के स्तर, शिक्षा के आधार पर निरक्षर, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के स्तर आदि।

6. साधन–सूची

(Source-List)

इकाइयों के सम्बन्ध में साधन–सूची (Source-List) को उपलब्ध किया जाता है। इसकी सहायता से समग्र की इकाइयों को जाना जाता है। जैसे, टेलीफोन वाले व्यक्तियों में राजनीतिक जागरुकता का अध्ययन करने के लिए टेलीफोन डायरेक्टरी साधन–सूची मानी जाएगी। मतदाताओं का अध्ययन करने के लिए निर्वाचक सूची साधन–सूची बन जाएगी। किन्तु, अनेक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए कोई भी साधन–सूची उपलब्ध नहीं होती, या अधूरी उपलब्ध होती है। ऐसी अवस्था में स्वयं शोधकर्त्ता को साधन–सूची तैयार करनी पड़ती है। कभी–कभी उसे तैयार करना भी बड़ा कठिन होता है। जैसे; राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के राजनीति में भाग लेने वाले सदस्यों की सूची को तैयार करना

कठिन कार्य है। इसी तरह राजनीतिक दलों को चन्दा देने वाले पूंजीपतियों के नाम जानना अत्यन्त कठिन होगा। कुछ भी हो, वैज्ञानिक शोध के लिए यह आवश्यक है साधन–सूची में समस्त इकाइयाँ शामिल कर ली जाएँ। कोई भी इकाई न छूटे। राजनीतिक शोध में हो सकता है कि छूटी हुई इकाइयाँ बहुत अधिक महत्वपूर्ण हों। साधन–सूची अवतन तथा ताजी होनी चाहिए। विद्यार्थियों की दो वर्ष पुरानी सूची वर्तमान विद्यार्थी–संघों का अध्ययन करने के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। सूची में सूचनाएँ पूरी होनी चाहिएँ ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनके आधार पर वर्गीकरण किया जा सके तथा निदर्शन में विभिन्न विशेषताओं वाले वर्गों को शामिल किया जा सके। साधन–सूची में कोई भी नाम एक से अधिक बार नहीं आना चाहिए। साधन–सूची अध्ययन–विषय की या समग्र अथवा निदर्शन की इकाइयों के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हमें व्यापारिक संस्थाओं के नाम चाहिएँ तो टेलीफोन डायरेक्टरी अथवा निर्वाचक सूची को साधन–सूची नहीं बनाया जा सकता। साधन–सूची उपलब्ध होने योग्य हो तो शोध का कार्य सुगम हो जाता है। कई बार सूची होते हुए भी शोधक को मिल नहीं सकती, जैसे, आयकर विभाग के पास आयकरदाताओं की सूची अथवा पुलिस के पास सन्देहात्मक चरित्र के लोगों की या गुण्डों की सूची। किसी निदर्शन को तैयार करने से पूर्व साधन–सूची आवश्यक रूप से बनानी पड़ती है।

1.6 उत्तम या प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की आवश्यक विशेषताएँ

(Esstianl Characteristics of a Good or Representative Sample)

निदर्शन जितना पक्षपात रहित होगा, अध्ययन विषय से सम्बन्धित निष्कर्ष उतने ही महत्वपूर्ण होंगे। इस सम्बन्ध में पी.वी. यंग ने लिखा है कि "निदर्शन का आकार ही उसके प्रतिनिधि होने की गारण्टी नहीं होता है, समुचित रूप से चुना गया अपेक्षाकृत छोटे आकार का निदर्शन दोषपूर्ण रूप से चुने गए बड़े आकार के निदर्शन से अधिक विश्वसनीय होता है।" निदर्शन का उत्तम होना अध्ययन की सफलता के लिए आवश्यक है। निदर्शन की मुख्य विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है।

1. निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधि होना चाहिए (A Sample should be Representative) :

निदर्शन के लिए सारे समग्र का प्रतिनिधि होना उसका सर्वप्रथम आवश्यक लक्षण है। निदर्शन का चुनाव विभिन्न ढंग से किया जा सकता है फिर भी हर अवस्था में प्रधान

उद्देश्य प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शन का चुनाव करना है। प्रतिनिधि निदर्शन दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है : (i) समग्र की इकाइयों में एकरूपता लाकर, (ii) निदर्शन के चुनाव की उपयुक्त प्रणाली अपनाकर। लुण्डबर्ग ने लिखा है कि कोई निदर्शन प्रतिनिधि तभी हो सकता है जबकि अध्ययन से सम्बन्धित इकाइयों में एकरूपता हो तथा निदर्शन की प्रणाली तटस्थ रूप से उपयोग में लाई गई हो।

2. पर्याप्त आकार का होना चाहिए (Adequate Size of Sample) : समुचित प्रणाली द्वारा चुने गए निदर्शन की थोड़ी मात्रा भी बड़ी मात्रा के निदर्शनों की अपेक्षा अधिक सही एवं विश्वसनीय परिणाम प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में पी.वी. यंग ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि, "निदर्शन का आकार इसकी प्रतिनिधित्वता की कोई आवश्यक सीमा नहीं है, सापेक्षिक रूप से उचित प्रकार से चुने गए छोटे निदर्शन अनुपयुक्त तरीके से चुने गए बड़े निदर्शन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते हैं।" फिर भी निदर्शन का एक समुचित मात्रा में होना आवश्यक है।

3. सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतन्त्र होने चाहिए (Free from all Prejudice) : निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी इकाई का चुनाव व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर न किया जाए। अक्सर ऐसा देखा गया है कि निदर्शन का चुनाव करते समय हम समग्र जनसंख्या में से कुछ उल्लेखनीय व आकर्षक इकाइयों को जो कि हमारे आदर्श के अनुरूप हैं चुन लेते हैं। परन्तु इस प्रकार चुने गए निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि अपने पक्षपात के कारण हो सकता है कि हम कुछ महत्वपूर्ण इकाइयों को न चुनें और कुछ महत्वहीन इकाइयों को केवल इसलिए चुन लें कि वे हमारी पसंद के अनुकूल हैं। दोनों ही स्थिति में हमारा निदर्शन वास्तविक स्थिति के साथ हमारा परिचय करवाने में सफल नहीं हो सकता। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि निदर्शन सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतन्त्र हो। कभी–कभी ऐसा देखा गया है कि अध्ययनकर्त्ता जानबूझ कर पक्षपात को महत्व देता है। उदाहरण के लिए यदि भेजी गई प्रश्नावली भर कर वापस नहीं आई या आई भी हैं तो सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्त्ता अपनी इच्छानुसार उन कमियों को पूरा करने की कोशिश करता है।

4. अध्ययन विषय के अनुरूप (Conformity with Subject of Study) : निदर्शन का अध्ययन विषय के अनुरूप होना बहुत अधिक आवश्यक है। इस अनुकूलता के आधार पर ही

निदर्शन की विश्वसनीयता की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि अध्ययन का उद्देश्य एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों में अनुपस्थित रहने की आदत के कारणों जानना है तो हमें अपने निदर्शन में उन्हीं विद्यार्थियों को शामिल करना होगा जो कि क्लास से अनुपस्थित रहने के आदी हैं।

5. सामान्य ज्ञान एवं तर्क का उपयोग (Use of Common Knowledge and Logically Sound) : सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्त्ता निदर्शन आदि के नियमों का प्रयोग करता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसे सामान्य ज्ञान एवं तर्क का आश्रय लेना छोड़ देना चाहिए। बिना सामान्य ज्ञान एवं तर्क के कोई भी अनुसंधानकर्त्ता अपने क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है। इसीलिए निदर्शनों को सही रूप देने के लिए सामान्य ज्ञान एवं तर्क का भी आश्रय लेना अधिक उपुयक्त होगा। निदर्शन की प्रविधियाँ चाहे कितनी भी विकसित हों, लेकिन तर्क एवं सामान्य ज्ञान का उपयोग किए बिना अनुसंधानकर्त्ता एक अच्छा निदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता है।

6. व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित (Based on Practical Experience) : निदर्शन केवल तर्क पर ही आधारित नहीं होता बल्कि इसमें अनुसंधानकर्त्ता के व्यावहारिक अनुभवों का समावेश होना आवश्यक है। अधिकतर ऐसा अनुभव किया गया कि निदर्शन के चयन में कुछ ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका समाधान अनुभवों की मदद से ही किया जाता है। ये अनुभव अध्ययन–विषय की प्रकृति के सम्बन्ध में एक अन्तर्दृष्टि को पनपाने में सहायक होता है और यह अन्तर्दृष्टि प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शनों के चुनावों में अत्यन्त मदद करती है। कोई भी व्यक्ति एक विषय पर तब तक अध्ययन नहीं कर सकता है जब तक कि उस विषय से सम्बन्धित उसे कुछ व्यावहारिक ज्ञान न हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निदर्शन में व्यावहारिक ज्ञान का होना आवश्यक है।

1.7 निदर्शन–प्रविधि के लाभ

(Advantages of Sampling Technique)

निदर्शन–प्रविधि की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है क्योंकि आधुनिक विशाल व जटिल समुदायों के अध्ययन में जनगणना–पद्धति (Census Method) अत्यन्त

असुविधाजनक है और उसमें धन तथा समय दोनों ही बहुत लगते हैं। इसके विपरीत निदर्शन–प्रविधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **समय की बचत (Saving of Time)** : निदर्शन–प्रविधि का तात्पर्य ही यह है कि हम सम्पूर्ण जनसंख्या की सभी इकाइयों का अध्ययन न करके उनमें से केवल कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का ही अध्ययन करते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से अध्ययन में कम समय लगता है। समय की बचत तो प्रत्येक अनुसन्धान का ही एक गुण बन जाता है, पर कुछ सामाजिक सर्वेक्षण विशेष करके इस प्रकार के होते हैं जिनमें समय का कारक विशेष महत्व का होता है। उदाहरणार्थ, निर्वाचन के पहले किसी प्रतियोगी की जीत अथवा हार का पूर्वानुमान करने के लिए यदि कोई अध्ययन किया जा रहा है तो यह आवश्यक है कि अध्ययन का कार्य निर्वाचन आरम्भ होने से कहीं पहले समाप्त हो जाए। यदि ऐसा न हुआ तो उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं रह जाएगी। ऐसे अध्ययनों में निदर्शन–प्रविधि अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती है।

2. **धन की बचत (Saving of Money)** : समय की बचत का परिणाम धन की बचत भी होता है जब कम संख्या में इकाइयों का अध्ययन करना पड़ता है तो स्टेशनरी, फाइल आदि खरीदने, कार्यकर्त्ताओं के वेतन, यात्रा–'व्यय आदि पर कम खर्चा करना पड़ता है। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनेक अनुसन्धान –कार्यों को धन के अभाव के कारण बीच में ही रोक देना पड़ता है। निदर्शन–प्रणाली में यह जोखिम न्यूनतम होता है। कम–से–कम खर्च करके अधिक से अधिक विश्वसनीय तथ्यों को एकत्रित करना केवल निदर्शन–प्रविधि के द्वारा ही सम्भव है।

3. **अधिक गहन अध्ययन की सम्भावना (Possibility of more Intense Study)** : जनगणना–पद्धति में अनुसन्धानकर्त्ता का ध्यान असंख्य इकाइयों में बिखर जाता है और इसीलिए उनका गहन अध्ययन सम्भव नहीं होता, केवल मोटी–मोटी बातों का पता लगाना ही सम्भव होता है। इसके विपरीत निदर्शन–प्रविधि में इकाइयों की संख्या पर्याप्त कम होती है। इसलिए अधिक समय तक तथा अधिक सूक्ष्म रूप से उनका अध्ययन तथा विवेचन किया जा सकता है। आधुनिक सामाजिक घटनाएँ अधिक जटिल होती हैं अतः उन्हें समझने के लिए उनका सूक्ष्म अध्ययन ही एक मात्र तरीका होता है। निदर्शन–प्रविधि इसी

आवश्यकता की पूर्ति करती है। क्योंकि इकाइयों की संख्या कम होने के कारण गहन अध्ययन सम्भव होता है।

4. निष्कर्षों की परिशुद्धता (Accuracy of Results) : निदर्शन–प्रविधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता का ध्यान कुछ निश्चित इकाइयों पर केन्द्रित होने के कारण वह उनके सम्बन्ध में गहन अध्ययन करके अधिक यथार्थ निष्कर्षों को निकाल सकता है। यदि निदर्शनों का चुनाव ठीक से किया गया तो उसके आधार पर होने वाले अध्ययनों के निष्कर्ष जनगणना–पद्धति की सहायता से किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से कहीं अधिक यथार्थ होते हैं। अमरीका की फारचून पत्रिका ने एक बार प्रेसीडेण्ट के चुनाव में विभिन्न प्रत्याशियों के जीतने की सम्भावना ज्ञात करने के लिए निदर्शन–प्रविधि की सहायता से सर्वेक्षण करके जो निष्कर्ष निकाला था उसकी यथार्थता आज भी लोगों को आश्चर्य में डालती है।

5. प्रशासनिक सुविधा (Administrative Convenience) : निदर्शन–प्रविधि से अनुसन्धान–कार्य को संगठित करने में भी पर्याप्त सुविधा होती है। यह सुविधा दो कारणों से हमें प्राप्त होती है– एक तो यह है कि निदर्शन–प्रविधि के अन्तर्गत इकाइयों की संख्या कम होती है और इसीलिए हमें कम संख्या में कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करना पड़ता है और इनकी संख्या कम होने से इनको काम में लगाने और इनके ऊपर निगरानी रखने में काफी आसानी होती है। दूसरी बात यह है कि निदर्शन–प्रविधि में हमें अल्प–संख्यक लोगों से सूचना एकत्रित करनी पड़ती है और इसलिए सूचना एकत्रित करने से सम्बन्धित परेशानी का सम्पूर्ण भार (Total Burden) कम हो जाता है। सूचनादाताओं की अपनी सुविधा के अनुसार उनकी सूचना एकत्रित करना कठिन काम है, पर 100 सूचनादाताओं से सूचना एकत्रित करने में परेशानी की जो मात्रा होगी वह निःसन्देह ही निदर्शन–प्रविधि के अन्तर्गत केवल 10 सूचनादाताओं से कहीं अधिक होगी।

6. अन्य लाभ (Other Advantage) : कभी–कभी सामाजिक अनुसन्धान में जनगणना–पद्धति का प्रयोग इसलिए भी नहीं हो पाता कि अध्ययन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और भौगोलिक दृष्टि से लोग इतने अधिक बिखरे हुए हैं कि प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता; ऐसी दशा में केवल निदर्शन–प्रविधि ही एक मात्र उपाय रह जाता है। कभी–कभी ऐसा होता है कि जिनके बारे में हमें अध्ययन करना है उनमें से सबका पता

हमें मालूम नहीं हो पाता है जैसे किसी वस्तु के उपभोक्ताओं के नाम व पता। ऐसी स्थिति में निदर्शन–प्रविधि के द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है।

1.8 निदर्शन–प्रविधि के दोष अथवा सीमाएं

(Demerits or Limitations of Sampling Technique)

यह सच है कि निदर्शन–प्रविधि के कई गुण व लाभ हैं, पर साथ ही यह प्रविधि पूर्णतया दोषरहित भी नहीं है। क्योंकि इसकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनको कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. पक्षपात तथा पूर्वाग्रह की सम्भावना (Possibility of Prejudice and Bias) : निदर्शन–प्रविधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि निदर्शन का चुनाव पक्षपात व पूर्वाग्रह रहित नहीं हो पाता है। निदर्शनों का चुनाव करते समय किसी–न–किसी रूप में इन दोनों तथ्यों का प्रवेश हो ही जाता है। जिनके फलस्वरूप चुने हुए निदर्शन पूर्णतया प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाते हैं या उनका अध्ययन करने से सम्पूर्ण जनसंख्या की आधारभूत विशेषताओं का पता ठीक–ठीक नहीं चल पाता है और हमारा निष्कर्ष भ्रमपूर्ण हो जाता है।

2. प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुनाव में कठिनाई (Difficulty in Selecting Representative Samples) : निदर्शन–प्रविधि का दूसरा दोष यह है कि प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों को चुनना स्वयं ही कठिन कार्य है। निदर्शन का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना या न होना अनेक बातों पर निर्भर है और ये सभी बातें अनुसन्धानकर्त्ता के अनुकूल हों– यह बहुत कम देखा जाता है। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई तो इसलिए होती है कि सामाजिक इकाइयों में भिन्नता और विविधता बहुत अधिक होती है और ये भिन्नताएँ व विविधताएँ जितनी अधिक होंगी प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव उतना ही कठिन हो जाता है। निदर्शन का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना या न होना निदर्शन–चुनाव की पद्धति पर भी निर्भर करता है। यदि उपयुक्त प्रविधि को चुनने में कोई भी गलती हुई तो निदर्शन भी प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाता है।

3. विशेष ज्ञान की आवश्यकता (Special Knowledge Needed) : ऊपरी तौर पर 'निदर्शन' शब्द अत्यन्त सरल प्रतीत होता है, पर सामाजिक घटनाओं में निदर्शनों का चुनाव उतना ही कठिन होता है और इस काम के लिए विशेष ज्ञान, सूझ–बूझ, अनुभव तथा अन्तर्दृष्टि

की आवश्यकता होती है और ये सभी गुण प्रत्येक अनुसन्धानकर्त्ता में समान रूप में हों ऐसी सम्भावना कम ही होती है। इसीलिए केवल विशेष योग्य तथा अनुभवशील अनुसन्धानकर्त्ता ही प्रविधि को पूर्ण सफलता के साथ काम में ला सकते हैं।

4. निदर्शन पर कायम रहने में कठिनाई (Difficulty in Sticking to Samples) : प्रायः यह देखा जाता है कि निदर्शन प्रविधि के अन्तर्गत कम इकाइयों के आधार पर निष्कर्ष निकालने में अनुसन्धानकर्त्ता को कठिनाई होती है। निदर्शन प्रविधि की यह माँग है कि जिन इकाइयों को निदर्शन के रूप में चुना गया है केवल उन्हीं का अध्ययन किया जाए। पर व्यवहारतः यह कहा जा सकता है कि इन चुनी हुई इकाइयों से भौगोलिक दूरी, पर्दा प्रथा, अति उच्च सामाजिक या राजनैतिक स्थिति आदि के कारण सूचना प्राप्त करने के लिए सम्पर्क स्थापित करना कठिन हो जाता है। फलतः चुनी हुई इकाइयों पर दृढ़ता से टिके रहना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में जिन लोगों से सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है उन्हें या तो अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन से निकाल देता है या उनके स्थान पर और किसी को चुन लेता है जो कि हो सकता है कि प्रतिनिधित्वपूर्ण न हो। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि निदर्शन के रूप में चुने हुए कई लोग सूचना देने से जान–बूझकर इनकार कर देते हैं। उस अवस्था में भी मूल निदर्शन पर कायम रहना कठिन हो जाता है।

5. निदर्शन–प्रविधि की असम्भवता (Impossibility of Sampling Technique) : जिस प्रकार कुछ विषयों का अध्ययन जनगणना–पद्धति की सहायता से करना असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार कुछ विषयों के अध्ययन में निदर्शन–प्रविधि बेकार सिद्ध होती है। यदि अध्ययन का विषय बहुत छोटा है तो उसकी प्रत्येक इकाई अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है और उस अवस्था में सभी इकाइयों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। उसी प्रकार सम्पूर्ण अध्ययन–विषय की इकाइयों में अत्यधिक भिन्नता है, तो भी निदर्शन–प्रविधि के द्वारा अध्ययन से यथार्थ निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। ऐसी दशाओं में जनगणना–पद्धति का ही प्रयोग करना पड़ता है।

मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि यदि अध्ययन–क्षेत्र अधिक विशाल है, अनुसन्धानकर्त्ताओं की कमी है, समय का अभाव है, धन की कमी है और औसत निष्कर्ष से भी हमारा काम चल सकता है तो निदर्शन–प्रविधि ही सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति होती है।

उपयुक्त सीमाओं या दोषों के होने पर भी निदर्शन–प्रविधि के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

1.9 प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुनाव के चरण या प्रक्रिया

(Procedure for Selecting Representating Sampling)

यद्यपि निदर्शन–चुनाव के तरीके या प्रविधियाँ कई प्रकार की हैं फिर भी निदर्शन–चुनाव की सम्पूर्ण प्रक्रिया के कुछ प्रमुख चरण ऐसे होते हैं जो कि प्रत्येक प्रणाली में समान होते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सैम्पल–चुनाव के कुछ आधारभूत सिद्धान्त ऐसे हैं जिनका उपयोग एक क्रम से सभी पद्धतियों में समान रूप से किया जाता है। निदर्शन के चुनाव की प्रक्रिया के ये प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं –

1. समग्र को निश्चित करना (Determination of Universe) : निदर्शनों का चुनाव करने से पूर्व सबसे पहले अनुसन्धानकर्त्ता को उन समग्र इकाइयों का निर्धारण करना पड़ता है जिनमें से उसे कुछ इकाइयों को निदर्शन के रूप में चुनना है। यदि ये इकाइयाँ किसी समुदाय में रहने वाली जनसंख्या है तो उसका निर्धारण सरलता से हो सकता है क्योंकि प्रत्येक समुदाय के निवासी एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में ही निवास करते हैं। जैसे अभी हमें किसी शहर के निवासियों की आर्थिक दशा का अध्ययन करना है तो हम उस नगर की समग्र जनसंख्या को जान सकते हैं और उसी आधार पर यह निर्धारित कर सकते हैं कि हमें किस प्रकार से निदर्शन चुनने हैं। परन्तु कभी–कभी ऐसा होता है कि यह समग्र जनसंख्या न होकर कोई गुण, क्रिया अथवा घटना होती है और उस अवस्था में समग्र का निर्धारण करना कुछ कठिन हो जाता है क्योंकि इनके बहुत जल्दी घटने–बढ़ने की सम्भावना हो सकती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि समग्र का निर्धारण उसके प्रकारों (Kinds) पर निर्भर करता है। ये प्रकार निम्नलिखित होते हैं –

(अ) निश्चित समग्र : जब समग्र के अन्तर्गत आने वाली सभी इकाइयों को पूर्णतया निश्चित किया जा सकता है तो उसे समग्र इकाई कहते हैं जैसे किसी नगर, मुहल्ले व गाँव में रहने वाले निवासी अथवा किसी स्कूल व कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थी।

(ब) अनिश्चित समग्र : जब समग्र की इकाइयों को ठीक–ठीक से निश्चित नहीं किया जा सकता तो उसे अनिश्चित समग्र कहते हैं। यह अनिश्चिता समग्र की इकाइयों में

परिवर्तनशीलता के कारण या अज्ञात होने के कारण उत्पन्न हो सकती है जैसे स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या प्रतिवर्ष बदलने के कारण अनिश्चित है उसी प्रकार बिनाका टूथ पेस्ट को इस्तेमाल करने वाले सभी लोगों का पता लगना कठिन होने के कारण वह भी अनिश्चित है।

(स) वास्तविक समग्र : जब समग्र की वास्तविक संख्या ज्ञात हो तो उसे वास्तविक समग्र कहते हैं जैसे एक कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या।

(द) काल्पनिक समग्र : जब समग्र की वास्तविक संख्या मालूम नहीं है और उसे केवल अनुमान के आधार पर मालूम कर लिया जाता हो उसे काल्पनिक समग्र कहते हैं। उदाहरणार्थ किसी नगर की जनसंख्या जानने के पश्चात् विभिन्न आयु के लोगों का अनुमान लगाना काल्पनिक समग्र का ही उदाहरण है।

2. निदर्शन की इकाई का निर्धारण (Determination of Sampling Unit) : समग्र को निश्चित करने के पश्चात् निदर्शन–चुनाव की दिशा में दूसरा चरण निदर्शन की इकाइयों का निर्धारण है। इसका तात्पर्य यह है कि निदर्शन चुनने से पहले हमें यह निश्चित करना होता है कि हमें किन–किन चीजों से निदर्शन की इकाइयों को चुनना है। यदि हम किसी मानव–समूह के बारे में अध्ययन कर रहे हैं तो यह जरूरी नहीं है कि केवल कुछ व्यक्ति ही हमारी निदर्शन की इकाई बन सकते हैं। व्यक्तियों के अतिरिक्त जिन मुहल्लों में वे रहते हैं, जिन पेशों को वह अपनाए हुए हैं, जिस परिवार के वे सदस्य हैं या जिस प्रकार के वे मकानों में रहते हैं, इनमें से प्रत्येक की कुछ–कुछ इकाइयाँ निदर्शन की इकाईयाँ हो सकती हैं और व्यावहारिक रूप में होती भी हैं। श्री पार्टन (Parten) ने उचित ही लिखा है कि "सर्वेक्षणकर्त्ताओं को प्रायः यह भ्रम हो जाता है कि जब तक वे मनुष्य के सम्बन्ध में अध्ययन कर रहे हैं तब केवल व्यक्ति ही उनके निदर्शन की इकाई हो सकता है। परन्तु वास्तव में बहुत थोड़े अनुसन्धान व्यक्ति को इकाई मानकर किए गए हैं।" अतः स्पष्ट है कि मनुष्य के अलावा भी निदर्शन के अन्य प्रकार की इकाइयाँ हो सकती हैं – जैसे भौगोलिक इकाई (एक राज्य, जिला, नगर, वार्ड, क्षेत्र आदि), भवन सम्बन्धी इकाई (घर, कोठी, बंगला, क्वार्टर, फ्लैट (Flat) आदि), सामाजिक समूह की इकाई (परिवार, स्कूल, क्लब, चर्च आदि)। इकाई का प्रकार कुछ भी हो इनका निर्धारण करते समय यह देख लेना जरूरी है कि इनमें

निम्नलिखित लक्षण हैं या नहीं। एक आदर्श निदर्शन की इकाई के निम्निलिखित गुण या लक्षण होते हैं –

(अ) इकाई स्पष्ट, भ्रमरहित तथा सुनिश्चित होनी चाहिए। उदाहरणार्थ एक धूर्त व्यक्ति उत्तम इकाई नहीं है क्योंकि धूर्तता की धारणा अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग हो सकती है।

(ब) दूसरी बात यह है कि इकाई अध्ययन–विषय के अनुकूल होनी चाहिए; उदाहरणार्थ यदि संयुक्त परिवार का अध्ययन किया जा रहा है तो परिवार सबसे उपयुक्त इकाई होगा।

(स) इकाई प्रमाणिक होनी चाहिए क्योंकि ऐसी इकाइयों के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना न्यूनतम होती है, पर यदि बिल्कुल नई इकाई का प्रयोग किया जा रहा है तो उसके अर्थ का स्पष्टीकरण कर देना चाहिए ताकि पाठक–व्यर्थ दुविधा में न पड़े।

(द) इकाई ऐसी होनी चाहिए, जिसके साथ सम्पर्क स्थापित करना सुविधाजनक हो।

3. इकाइयों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की साधन–सूची को उपलब्ध करना (To make available the Sources List) : निदर्शन–चुनाव की दिशा में तीसरा चरण उस साधन–सूची को प्राप्त करना है जिसकी सहायता से समग्र की इकाइयों के बारे में हमें जानकारी हासिल हो सकती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि वह सूची जिसमें समग्र की समस्त इकाइयों के बारे में सूचना रहती है उसे साधन–सूची कहते हैं और इसके बिना निदर्शन का चुनाव नहीं किया जा सकता है। कुछ साधन–सूची तो तैयार की हुई मिलती हैं और कुछ को अनुसन्धानकर्त्ता के द्वारा स्वयं तैयार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ अपने घर पर टेलीफोन रखने वाले सभी लोगों की सूची, नाम, पता आदि हमें 'टेलीफोन डायरेक्टरी' से मिल सकता है, उसी प्रकार कार के मालिकों, मकान–मालिकों, आय–कर देने वाले लोगों की सूची और उनका विवरण हमें विभिन्न विभागीय दफ्तरों से तैयार प्राप्त हो सकता है। परन्तु किसी क्षेत्र में रहने वाली किसी विशेष जाति के सदस्यों की कोई तैयार सूची शायद ही हमें मिल सके इसलिए उसे तैयार करना पड़ता है। प्रायः सूची बहुत विस्तृत होती है तथा अनुसन्धानकर्त्ता को अपनी निदर्शन–प्रविधि के अनुसार सम्बन्धित इकाइयों को उनमें से छाँटना पड़ता है। यह साधन–सूची तभी वास्तव में उपयोगी सिद्ध हो सकती है जबकि उनमें निम्नलिखित गुण हों –

(क) सूची सम्पूर्ण होनी चाहिए जिससे कि समग्र की इकाइयों का विवरण हमें उससे प्राप्त हो सके।

(ख) यह सूची पुरानी नहीं होनी चाहिए। जिससे कि उससे यथासम्भव हाल ही (Lastest) सूचनाएं प्राप्त हो सकें।

(ग) सूची में इकाइयों के सम्बन्ध में पूर्ण सूचना होनी चाहिए ताकि उन इकाइयों का वर्गीकरण विभिन्न वर्गों में किया जा सके।

(घ) सूची में एक ही नाम बार–बार नहीं आना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि कॉलेज के क्रियाकलापों में भाग लेने वाले विद्यार्थियों की सूची बनाई जाए तो एक ही विद्यार्थी का नाम कॉलेज में होने वाले कई क्रियाकलापों के साथ बार–बार आ सकता है –ऐसा न होने देना चाहिए।

(ङ) सूची निदर्शन की इकाई के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि परिवार को इकाई माना गया है तो व्यक्तिगत नामों की सूची बेकार रहेगी।

(च) सूची विश्वसनीय होनी चाहिए अर्थात् इसे ऐसे विभाग या संस्था से प्राप्त करना चाहिए जिस पर विश्वास किया जा सके। उदाहरणार्थ, टेलीफोन डायरेक्टरी एक विश्वसनीय सूची है।

(छ) सूची ऐसी होनी चाहिए कि वास्तव में अनुसन्धानकर्त्ता को वह उपलब्ध हो सके। उदाहरणार्थ, पुलिस विभाग के पास शहर के गुण्डों या सन्देहजनक चरित्र के लोगों की सूची रहती है, कि अनुसन्धानकर्त्ता को वह सूची देखने के लिए न दी जाए। उस बैंक में रुपये जमा करने वालों (Depositors) की सूची मिलना भी बहुत कठिन होता है यद्यपि उनकी सूची बैंक वाले स्वयं रखते हैं। अतः ऐसी सूची से अनुसन्धानकर्त्ता की कोई भलाई नहीं हो सकती। सफल निदर्शन–चुनाव के लिए इन गुणों के सम्बन्ध में भी सचेत रहना आवश्यक होता है।

4. निदर्शन के आधार का निर्धारण (Determination of the size of Sample) : साधन–सूची का निर्माण हो जाने के पश्चात् चौथे चरण में अनुसन्धानकर्त्ता को निदर्शन का आकार निश्चित कर लेना पड़ता है। निदर्शन का आकार कितना बड़ा या छोटा होगा इस सम्बन्ध में कोई दृढ़ नियम नहीं है। उसका आकार बड़ा हो अथवा छोटा, वह विश्वनीय और

प्रमाणिक हो, इसी बात का ध्यान रखा जाता है। निदर्शन के आकार का निर्धारण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें अध्ययन–विषय की सभी आधारभूत विशेषताओं का समावेश हो जाए। निदर्शन का आकार समग्र (Universe) की प्रकृति, अनुसन्धान की प्रकृति, इकाइयों की प्रकृति, अध्ययन–पद्धति व प्रविधियाँ, निदर्शन–पद्धति, उपलब्ध साधन आदि बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

5. निदर्शन–पद्धति का चुनाव (Selection of Sample Method) : निदर्शन का आकर निर्धारित हो जाने के बाद निदर्शन पद्धति का चुनाव प्रक्रिया का पाँचवा चरण है। इस स्तर तक पहुँचते–पहुँचते समग्र (universe) की प्रकृति, निदर्शन की इकाइयों की प्रकृति, साधन–सूची की उपलब्धता तथा निदर्शन का आकार यह सब स्पष्ट हो जाता है। उसी के आधार पर अनुसन्धानकर्त्ता को यह निश्चित करना पड़ता है कि निदर्शन की कौन–सी पद्धति सबसे उपयुक्त रहेगी। यह चुनाव बहुत ही सावधानी से करना पड़ता है ताकि निदर्शन सही अर्थ में प्रतिनिधित्वपूर्ण (Representative) हो।

6. निदर्शन का चुनाव (Selection of Sample) : निदर्शन का चुनाव निदर्शन–प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। जब निदर्शन–पद्धति का चुनाव कर लिया जाता है तो उसी पद्धति की सहायता से आवश्यक निदर्शनों को भी चुन लिया जाता है। वास्तव में उपयुक्त पद्धति की सहायता से विश्वसनीय, प्रमाणिक तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव ही सम्पूर्ण निदर्शन–प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य है क्योंकि इस पर सम्पूर्ण अध्ययन के निष्कर्षों की यथार्थता बहुत कुछ निर्भर करती है।

1.10 निदर्शन के प्रकार

(Types of Sampling)

समग्र में निदर्शन का चुनाव करने की कई पद्धतियाँ हैं जिन्हें हम निदर्शन के प्रकार कहते हैं। ये पद्धतियाँ या प्रकार अध्ययन के उद्देश्य की आवश्यकता, आँकड़ों की प्रकृति, अध्ययन के उद्देश्य आदि पर निर्भर करती हैं तथा अध्ययनकर्त्ता इन पद्धतियों में से किसी का भी चयन करते समय इन्हीं बातों को ध्यान में रखता है। निदर्शन के चुनाव की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं–

(1) द्वैव निदर्शन (Random Sampling)

(2) स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)

(3) उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)

(4) बहुस्तरीय निदर्शन (Multi Stage Sampling)

(5) गुच्छ निदर्शन (Cluser Sampling)

(6) अभ्यास निदर्शन (Quota Sampling)

(7) व्यवस्थित निदर्शन (Systematic Sampling)

(8) आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)

निदर्शन की उपरोक्त सभी पद्धतियों का विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1.10.1 दैव निदर्शन

(Random Sampling)

दैव अथवा यादृइच्छिक निदर्शन एवं प्रायिकता या सम्भावना निदर्शन को एक पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है। निदर्शन समग्र के एक अंश (अथवा निदर्शन) को निकालने का एक ऐसा ढंग है जो जनसंख्या अथवा समय के प्रत्येक सदस्य को चुनाव को ज्ञात सम्भाविता प्रदान करता है। यहाँ पर 'यादृइच्छिक' शब्द चुनाव के एक विशिष्ट ढँग का विशेषण है, निदर्शन का नहीं। यदि निदर्शन इस प्रकार किया जाए कि समग्र के सभी तत्त्वों या इकाइयों को निदर्शन में चुने जाने की सम्भाविता समान हो तो उसे हम दैव यादृच्छिक निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हम किसी गोल बर्तन में काँच के 100 कँचे रखें और फिर उनमें से कोई एक कँचा निकालें तो प्रत्येक कँचे के चयन की सम्भाविता 1—100 होगी। इस प्रकार चुने हुए निदर्शन में ना केवल इकाइयों के चयन की सम्भाविताएँ समान होती हैं बल्कि इनमें संयोगों के चयन की सम्भाविता भी बराबर होती है जैसे यदि यह मान लें कि समग्र में पाँच व्यक्ति हैं अ, ब, स, द और ड, इनमें में अनुसन्धानकर्त्ता दो का चयन करना चाहता है। दो का संयोग इस प्रकार का हो सकता है : 1.अ,ब, 2.अ,स, 3.अ,द, 4. अ,ड, 5.ख,स, 6.ख,ग, 7.ख,ड, 8.स,द, 9.स,ड, एवं 10.द,ड। दैव निदर्शन के लिए आवश्यक है कि इन सभी संयोगों को चयन का बराबर—बराबर अवसर दिया जाये।

दैव निदर्शन को भी अनेक विद्वानों ने परिभाषित किया है। यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम दैव निदर्शन की कुछ परिभाषाओं को देखें : गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि "दैव निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन की समान सम्भावना रहती है।"

हार्पर ने लिखा है कि "एक दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसका चयन इस प्रकार हुआ हो कि समग्र की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ हो।"

मिल्टेंड पार्टन के अनुसार दैव निदर्शन के प्रयोग में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :

(1) समग्र की इकाइयाँ स्पष्ट होनी चाहिएँ एवं उनकी सूची तैयार की जाये,

(2) इकाइयों का आकार लगभग समान हो,

(3) प्रत्येक इकाई एक–दूसरे से स्वतन्त्र हो,

(4) प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चुनाव का समान अवसर मिलना चाहिए,

(5) निदर्शन चयन की विधि स्वतन्त्र होनी चाहिए,

(6) अध्ययनकर्त्ता की प्रत्येक इकाई तक पहुँच सुलभ होनी चाहिए,

(7) चुनी हुई इकाई को न तो छोड़ा जाना चाहिए और न ही उसका प्रति स्थान करना चाहिए।

दैव या यादृइच्छिक निदर्शन के अनेक प्रकार हो सकते हैं एवं उनके चुनने की प्रमुख प्रविधियाँ (Techniques) भी अनेक हैं उनमें से कुछ प्रमुख हैं :

(1) लॉटरी विधि (Lottery Method)

(2) कार्ड प्रणाली (Card Method)

(3) रेण्डम अंक प्रणाली (टिप्पेट टेबिल) (Random Number Method)

(4) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Interval Method)

(5) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Interval Method)

(6) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)

1. लॉटरी विधि (Lottery Method) : सरल दैव निदर्शन के चुनाव की यह विधि बहुत ही सरल है। कई अवसरों पर इसका प्रचलन जनसाधारण में भी देखने को मिलता है। इस विधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता समग्र की प्रत्येक इकाई के लिए एक–एक कागज की पर्ची तैयार करता है। उस पर उस इकाई का नाम या संकेत लिख दिया जाता है। इस प्रकार बनाई गई पर्चियों के आधार पर कागज की गोलियाँ बना ली जाती हैं और उन्हें एक साथ ठीक से मिला दिया जाता है। ऐसा करने के बाद अनुसन्धानकर्त्ता जिस संख्या में निदर्शन का चुनाव करना चाहता है उतनी गोलियाँ निकाल लेता है और उन पर जिन इकाइयों के नाम या संकेत होते हैं उन्हें निदर्शन मान लिया जाता है। इस विधि का उपयोग करने के लिए एक सावधानी यह रखनी पड़ती है कि सभी गोलियों का आकार बराबर हो।

मान लें हमें 5,000 छात्रों की समष्टि में से 100 का दैव निदर्शन लेना है। हम समष्टि के प्रत्येक सदस्य का नाम कागज की एक पर्ची पर लिख लेंगे। ये पर्चियाँ एक जैसी होनी चाहिएँ। फिर इन्हें मोड़ कर इनमें से गोलियाँ जैसी बना लेंगे और एक गोल बर्तन में खूब मिला देंगे। फिर इनमें से एक निकाल कर बाकी को खूब मिला देंगे। इस प्रकार एक–एक करके हम 100 पर्चियाँ निकाल लेंगे और इन पर लिखे नामों से हमारा निदर्शन बन जायेगा।

2. कार्ड प्रणाली (Card Method) : यह प्रणाली लॉटरी प्रणाली से मिलती–जुलती होती है। लॉटरी प्रणाली में कागज की पर्चियों के उपयोग के कारण उसका एक प्रमुख दोष यह है कि ये पर्चियाँ एक–दूसरे से चिपक सकती हैं। अतः कार्ड प्रणाली में पर्चियों की जगह कार्ड (Card) का उपयोग किया जाता है। सबसे पहले एक से आकार, रंग या बनावट के कार्डों या टिकटों पर जनसंख्या समग्र की समस्त इकाइयों के नाम अथवा संख्या या कोई अन्य चिन्ह अंकित कर दिया जाता है। सबको एकत्रित कर गोल तथा बड़े ड्रम में भर कर पचास बार घुमाया जाता है। प्रत्येक पचास बार घुमा कर एक बार एक कार्ड या टिकट निकाल लिया जाता है। जितनी इकाइयों का चुनाव करना होता है, उतने पचास बार घुमाकर कार्ड निकाले जाते हैं। निकाले गये कार्डों वाली इकाइयों का शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन किया जाता है। (क) में शोध–कर्त्ता स्वयं या अन्य कोई आँख बन्द करके तथा

(ख) में कोई भी आँख खुली रखकर इकाइयों का चयन करता है। दोनों के मध्य इतना ही अन्तर है।

3. रेण्डम अंक या टिप्पेट प्रणाली (Random Number of Tippet Method) : सरल दैव निदर्शन के चयन की एक अन्य विधि को रेण्डम प्रणाली या टिप्पेट प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली को प्रो. टिप्पेट (Prof. Tippet) ने (1927) में गणितीय अंकों के आधार पर तैयार किया था। टिप्पेट की तरह ही फिशर एवं वेल्स (1936), केण्डल एवं स्मिय (1939), रेण्ड कारपोरेशन (1955), राव–मित्रा, एवं मथाई (1966) ने भी निदर्शन सारणियाँ बनायी हैं। लेकिन वर्तमान समय में टिप्पेट सारणी का प्रयोग अधिक किया जाता है। टिप्पेट ने चार अंकों वाली 1040 संख्याओं की एक सूची बनायी। उन संख्याओं को दैव–निदर्शन का प्रयोग करने के लिए सुनिश्चित कर दिया गया। यह संख्या बिना किसी क्रम के कई पृष्ठों पर लिखी हुई है। शोधकर्त्ता आवश्यकतानुसार, जितनी इकाइयों का अध्ययन करना है उतनी इकाइयों को किसी भी पृष्ठ से लगातार लेता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि 100 मजदूरों के समय से 10 मजदूरों की इकाइयों का अध्ययन करना है, तो उन 100 इकाइयों को क्रम से जमा कर टिप्पेट के क्रम से लेंगे। टिप्पेट प्रणाली में संख्याओं के चुनाव के दो प्रमुख ढँग हैं:

(i) प्रत्यक्ष चुनाव का ढँग (Direct Selection Method)

(ii) अवशेष चयन का ढँग (Remainder Selection Method)।

(i) प्रत्यक्ष चुनाव का ढँग : इस ढँग के अन्तर्गत हम किसी विशिष्ट प्रकार के तथा क्रमबद्ध संख्याओं की सारणी से संख्याओं को चुनते हैं और उन संख्याओं को स्वीकार करते हैं जो निदर्शन के आकार से अधिक नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि हमें 400 इकाइयों के समय से चुनाव करना चाहते हैं और हमने यह निश्चित कर रखा है कि हम संख्याओं के स्तम्भों के आरम्भ और अन्त में दी गई संख्याओं का ऊर्ध्वरूप से तीन–तीन के समूहों में चुनाव करेंगे क्योंकि 400 में तीन अंक पाए जाते हैं। प्रायोगिक रूप से सम्पूर्ण स्थिति को अग्राङ्कित सारिणी की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

संख्याएँ (Numbers)

———————————————————————————————

42827	29280	70203	51213	78569
41519	73184	84612	26689	30877
38273	52677	33891	23027	33891
48225	48663	85998	02427	85998
56506	22635	27941	58903	56560

———————————————————————————————

इस सारणी से उपरिलिखित क्रम में हम 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733, 979 को प्राप्त करते हैं किन्तु हम उन्हीं संख्याओं को निदर्शन के लिए स्वीकार करते हैं जो 400 से अधिक नहीं होती और इस दृष्टि से 275, 47, 321 तथा 397 को हम निदर्शन में सम्मिलित करते हैं और शेष सभी को छोड़ देते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ पर हम आरम्भिक रूप से चुनी गई 10 संख्याओं में केवल 4 का उपयोग करने में समर्थ हुए हैं अर्थात् हमारे समय, प्रयास एवं धन का पर्याप्त व्यय बेकार में ही हुआ है। इस बर्बादी पर काबू पाने के लिए ही अवशेष वाले ढंग को प्रयोग में लाया जाता है।

(iii) अवशेष वाला ढंग : मान लीजिए कि उस समय में 150 इकाइयाँ हैं जिससे हम अपने निदर्शन का चुनाव करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में हमें निम्न कार्य रीति का पालन करना पड़ेगा।

1. एकाएक हम संख्याओं को सारिणी के चाहे किसी भी स्तम्भ अथवा पंक्तियों से आरम्भ करें, हमें तीन अंकों वाले समूहों के रूप में संख्याओं का चुनाव करना होगा।

2. हमें यह ज्ञात करना पड़ेगा कि तीन अंकों वाली संख्याओं में 150 (समय में इकाइयों की संख्या) का अधिकतम गुणन क्या है? यहाँ स्पष्ट है कि 150 का अधिकतम गुणन 900 से कम है।

3. तीन–तीन के समूहों के रूप में चुनी गई विभिन्न संख्याओं में से हमें केवल उन्हीं को स्वीकार करना होगा जो 900 से कम हों।

4. स्वीकार की गई 150 से अधिक संख्याओं को 150 से विभाजित कर इनके अवशेष को ज्ञात करना होगा तथा इसे ही अन्तिम रूप से निदर्शन में स्वीकार करना होगा।

उदाहरण के लिए, यदि उपयुक्त सारणी के आधार पर 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733 तथा 979 को प्राप्त करते हैं तो हमें 979 को इसलिए छोड़ देना होगा क्योंकि यह 900 से अधिक है तथा 47 को अन्तिम चुनाव के लिए स्वीकार कर लेना होगा। अन्य सभी अर्थात् 443, 793, 275, 783, 321, 522, 397 तथा 733 को 150 से विभाजित कर अवशेष ज्ञात करने होंगे जो क्रमशः 143, 193, 125, 183, 21, 72, 97 तथा 133 होंगे। ये भी संख्याएँ अन्तिम रूप से निदर्शन में सम्मिलित की जाएँगी।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जहाँ भी संख्याओं का प्रयोग किया जाए वहाँ स्रोत का नाम, पृष्ठ संख्या, स्तम्भ संख्या, पक्ति संख्या और आरम्भिक संख्या का अवश्य उल्लेख किया जाए।

4. नियमित अंकन प्रणाली (Regular Internal Method) : नियमित अंकन प्रणाली सरल दैव निदर्शन की एक महत्त्वपूर्ण विधि मानी जाये या नहीं इस सम्बन्ध में दो विपरीत धारणाएँ हैं किन्तु इस विवाद की चर्चा करने से पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियमित अंकन प्रणाली क्या है? इस पद्धति के द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता जब निदर्शन का चुनाव करता है तब सबसे पहले वह वर्गान्तर की गणना करता है। इसके लिए निम्न सूत्र को काम में लिया जाता है –

$$\text{वर्गान्तर} = \frac{\text{समग्र का आकार}}{\text{निदर्शन का आकार}}$$

इस प्रकार वर्गान्तर की गणना करने के पश्चात् आरम्भिक बिन्दु का चुनाव किया जाता है और उसके लिए अनुसंधानकर्त्ता पहली संख्या तथा वर्गान्तर के बीच की किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी या रेण्डम अंक विधि से करता है। इस आरम्भिक संख्या का चयन करने के बाद वह उसमें वर्गान्तर जोड़ता है। जो संख्या प्राप्त होती है उसमें पुनः वर्गान्तर जोड़ा जाता है और इसी प्रक्रिया को समग्र की अन्तिम संख्या तक जारी रखता जाता है। इस प्रकार जो विभिन्न संख्यायें प्राप्त होती हैं उन पर समग्र की सूची में जिन इकाइयों के नाम होते हैं उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। एक उदाहरण से इस विधि को स्पष्ट किया जाता सकता है।

यदि हमें 10,000 के समग्र में से 500 व्यक्तियों का चयन इस विधि से करना है तो हम सर्वप्रथम इन 10,000 व्यक्तियों की सूची करेंगे। इसके बाद वर्गान्तर की गणना करेंगे जो कि इस उदाहरण के सन्दर्भ में 20 होगी, इस वर्गान्तर की गणना के बाद पहली संख्या व 20 के बीच किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी द्वारा करेंगे। उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि वह संख्या 4 है। इस संख्या (4) को आरम्भिक बिन्दु कहा जायेगा। इसमे वर्गान्तर जोड़ने पर 24 की संख्या बनती है और इस प्रकार 4, 24, 44, 64, 84.... की संख्या हमें प्राप्त होती है। समग्र की सूची में इन अंकों पर जिन व्यक्तियों के नाम होंगे उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जायेगा।

5. अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Interval Method) : इसमें भी समग्र या जनसंख्या को समस्त इकाइयों की एक सूची बनायी जाती है। उस सूची में प्रथम और अन्तिम अंक को छोड़कर शेष इकाइयों की क्रमसंख्या पर शोधकर्त्ता निशान लगाता चलता है। ये निशान उतनी ही इकाइयों पर लगाए जाते हैं, इस कारण इसमें पक्षपात का समावेश हो जाता है।

6. ग्रिड प्रणाली (Grid Method) : यह क्षेत्र या भौगोलिक आधार पर निदर्शन निर्माण की प्रणाली है। इसमें किसी विशाल भौगोलिक क्षेत्र का जहाँ से निदर्शन लेना है, नक्शा या मानचित्र लिया जाता है। उस मानचित्र पर सेल्यूयॉयड की पारदर्शक ग्रिड प्लेट रख दी जाती है। इस प्लेट में वर्गाकार चौकोर खाने कटे हुए तथा उन पर नम्बर लिखे हुए होते हैं। यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता है कि किस आधार पर किन–किन नम्बरों वाली इकाइयो को अध्ययन का विषय बनाया है। इन नम्बरों का निर्णय आकस्मिक ढंग से किया जाता है। मानचित्र के जिन हिस्सों पर निर्धारित नम्बरों के वर्गाकार खाने आते हैं, उनको चिन्हित करके अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। इसे क्षेत्र निदर्शन भी कहते हैं किन्तु वह थोड़ा–सा भिन्न प्रकृति का होता है।

दैव निदर्शन के लाभ

(Advantages of Random Sampling)

इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

1. दैव निदर्शन का प्रयोग किए जाने की स्थिति मे समग्र की विशेषताओं अथवा इसके आबंटन का पूर्व ज्ञान आवश्यक नहीं है।

2. अनुसन्धानकर्त्ता अपने परिणामों की यथार्थता का मूल्याँकन सरलतापूर्वक कर सकता है क्योंकि निदर्शन त्रुटियाँ संयोग के नियमों का पालन करती हैं।

3. दैव निदर्शन की इकाइयाँ एक समग्र की परिवर्तनशीलता को अधिक अच्छे ढंग से स्पष्ट कर सकती हैं अपेक्षाकृत उस स्थिति की जिसमें समान संख्या में इकाइयों का चुनाव स्वेच्छापूर्वक किया गया हो।

4. जैसे–जैसे दैव निदर्शन का आकार बढ़ाया जाता है वैसे–वैसे निदर्शन की प्रतिनिधित्वपूर्णता भी बढ़ती जाती है, तथा उस सीमा का निर्धारण सम्भाविता के नियमों के आधार पर किया जा सकता है जिस सीमा तक इसके ऊपर समग्र के एक सही के रूप में विश्वास कर सकते हैं।

इससे कुछ प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित हैं :

1. पहले से ही समग्र के सूचीबद्ध रूप में उपलब्ध होने की आवश्यकता के पाए जाने के कारण दैव निदर्शन का प्रयोग करने के मार्ग में आने वाली कठिनाई।

2. निदर्शन के चुनाव के पूर्व प्रत्येक इकाई के लिए संख्याओं के निर्धारण कार्य में होने वाले समय, प्रयासों एवं धन का अतिरिक्त व्यय।

3. असन्तोषजनक अथवा भ्रामक निदर्शन प्राप्त होने की सम्भावना। स्टीफन ने ठीक ही लिखा है–"यह दैव निदर्शन में असन्तोषपूर्ण चुनाव के शिकार को यह आश्वासन दिलाने में कि लम्बी अवधि के दौरान चुनाव का दैव ढंग एक दिशा में उतनी ही त्रुटियाँ प्रदान करेगा जितनी कि दूसरी दिशा में, बहुत कम सहायता एवं आराम प्रदान करता है।"

4. समान साँख्यिकीय विश्वसनीयता की प्राप्ति के लिए आवश्यक निदर्शन का आकार प्रायः स्तरीयकृत निदर्शन की तुलना में दैव निदर्शन में अधिक होता है।

5. क्षेत्र अध्ययनों के अन्तर्गत चुनी गई इकाइयों के विस्तृत क्षेत्र में फैले होने के कारण समय, प्रयास एवं धन का व्यय अधिक होता है।

1.10.2 स्तरीकृत निदर्शन

(Stratified Sampling)

स्तरीकृत दैव निदर्शन वस्तुतः दैव निदर्शन पद्धति का ही विकसित रूप है। स्तरीकृत निदर्शन के अन्तर्गत सरल दैव निदर्शन पद्धति के द्वारा ही निदर्शन का चयन किया जाता है। अनेक बार सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य विभिन्न वर्गों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ता है अथवा ऐसी स्थिति में जबकि अध्ययनकर्त्ता अध्ययन से पूर्व यह तय कर लेता है कि निदर्शन में समग्र में पाये जाने वाले समस्त वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व हो तब स्तरीकृत निदर्शन का उपयोग किया जाता है। ये दोनों ही उद्देश्य सरल

दैव निदर्शन के द्वारा ही पूरे किए जा सकते हैं और किए जाते भी हैं किन्तु उसके प्रतिनिधि होने का पता तभी लग जाता है जब विभिन्न वर्गों में से कोई एक वर्ग अपेक्षाकृत बहुत छोटा है तो सरल दैव निदर्शन के द्वारा लिए गए निदर्शन में उस वर्ग का उतना प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता कि उसका दूसरे वर्गों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। ऐसी स्थिति मे भी स्तरीकृत दैव निदर्शन एक उपयोगी पद्धति सिद्ध होती है। स्तरीकृत निदर्शन में हम सबसे पहले समग्र को विभिन्न स्तरों में बाँट लेते हैं और फिर प्रत्येक स्तर में से स्वतन्त्र निदर्शन ले लेते हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि परिभाषा इस प्रकार दी जाए कि प्रत्येक तत्त्व (सदस्य) एक ओर केवल एक ही स्तर में आयें फिर प्रत्येक स्तर में से दैव या व्यवस्थित निदर्शन ले लेते हैं। स्तरीकृत निदर्शन का यह सबसे सरल और सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाला ढंग है। यह हो सकता है कि सब स्तरों में से एक ही अनुपात में निदर्शन का अनुपात बराबर नहीं है।

स्तरीकृत निदर्शन को अग्रांकित सारणी की सहायता के सोदाहरण समझाया जा सकता है।

एक विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के स्तरीकृत निदर्शन

विवरण	स्तर संख्या तथा नाम कला संकाय 1	विधि संकाय 2	वाणिज्य संकाय 3	विज्ञान संकाय 4
प्रत्येक स्तर में इकाइयों की संख्या	8000	6000	4000	2000
विभिन्न संकायों में इकाइयों का अनुपात	.4	.3	.2	.1
निदर्शन के विभिन्न स्तरों में उन विद्यार्थियों का अनुपात जो प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हैं	.35	.30	.15	.20
प्रत्येक स्तर के निदर्शन अनुपात की अनुमानित मानक त्रुटि	.02	.02	.03	.03

इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन के दो बड़े प्रकार किए जा सकते हैं :

(क) समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन (Proportionate Stratified Sampling) : समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन में प्रत्येक निदर्शन की इकाइयाँ उसी अनुपात में ली जाती हैं जिस अनुपात में वे समग्र के अन्तर्गत होती हैं, यदि विभिन्न स्तरों में भिन्न–भिन्न संख्या में इकाइयाँ पाई जाती हैं जो प्रत्येक स्तर के लिए समानुपातिकता की प्राप्ति हेतु प्रत्येक स्तर

में से इकाइयों को एक स्थिर अनुपात में चुनते हैं। समानुपातिक निदर्शन अनुसन्धानकर्त्ता को इस विषय में निश्चित होने का सामर्थ्य प्रदान करता है कि वह प्रत्येक स्तर से सही अनुपात में इकाइयों का चुनाव कर रहा है।

समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं :

(1) समानुपातिक निदर्शन सूक्ष्मता की सीमा को बढ़ा देता है क्योंकि प्रत्येक स्तर का निदर्शन के अन्तर्गत समानुपातिक प्रतिनिधित्व होता है।

(2) इसका प्रयोग करने पर गैर–समानुपातिक निदर्शन की तुलना में प्रायः अधिक बचत होती है।

(3) इसका प्रयोग सापेक्षतया सरल है और इसलिए प्रायः प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

(4) इकाइयों के चुनाव की तुलना में गुच्छो का निदर्शन की इकाइयों के रूप में चुनाव अधिक लाभदायक होता है।

(5) स्तरीकरण के लिए उपयुक्त चरों के निर्धारण एवं चुनाव पर अधिक समय को व्यय नहीं किया जाता।

(6) स्तरों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, त्रुटि की सम्भावना उतनी ही कम होती है।

उदाहरण के लिए यदि, हम यह मान लें कि इस समग्र में कुल एक हजार व्यक्ति हैं। इसमें से 600 हिन्दू, 300 मुसलमान और 100 ईसाई हैं। अब यदि हमे 100 व्यक्तियों का निदर्शन चुनना है तो उसमें दैव निदर्शन से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसमें 60 हिन्दू, 30 मुसलमान एवं 10 ईसाइयों का चयन होगा। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि विभिन्न धर्मों के लोग अपने ठीक अनुपात में निदर्शन में आयें तो हमें प्रत्येक स्तर का दसवां भाग (1/10) ले लेना चाहिए, दूसरे शब्दों में हमें हिन्दुओं में से 6, मुसलमानों में से 3 एवं ईसाइयों में से 1 का प्रतिचयन कर लेना चाहिए। इसे ही समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन कहा जाता है। कभी–कभी यह ठीक समझ में नहीं आता कि स्तरीकरण किस आधार पर करना चाहिए। जैसे सरकारी कर्मचारियों के स्तर कई आधारों पर बनाये जा सकते हैं–पद, वरीयता, आयु, धर्म आदि। इसमें से वही आधार लिया जा सकता है जो कि समष्टि सूची में स्पष्ट हो। जैसे यदि हमें लोगों की जाति मालूम न हो तो हम इस आधार

पर स्तरण नहीं कर सकते। यथासम्भव स्तरीकरण का आधार अध्ययन के विषय से सम्बन्धित होता है। यदि हम सोचते हैं कि सरकारी कर्मचारियों का मनोबल उसके वर्ग (या पद) से सम्बन्धित है तब हम इस आधार पर स्तरण करते हैं। यदि हम यह सोचते हैं कि मनोबल आयु से सम्बन्धित है (जैसे यदि बड़ी आयु के लोगों का मनोबल छोटी आयु के लोगों की अपेक्षा कम या अधिक होने की सम्भावना है) तो हम आयु के आधार पर स्तरीकरण करेंगे। तब हम यह कर सकते हैं कि कर्मचारियों को दो स्तरो में बाँट लें–20 से 40 की आयु वाले और 40 से 60 की आयु वाले और फिर उनके अनुपात के अनुसार निदर्शन ले लें।

(ख) असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन (Disproportionate Sampling) : कभी–कभी असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन का चयन करना पड़ता है। जहोदा के अनुसार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के कई कारण हो सकते हैं। कई परिस्थितियों में जिन स्तरों में कम संख्या होती है, उनसे अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है जैसे कि विभिन्न स्तरों मे तुलना सम्भव हो। कभी–कभी एक स्तर मे किसी विशेषता के आधार पर अधिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं और दूसरे स्तर में अधिक समानता होती है। ऐसी स्थिति में पहले स्तर में से अधिक इकाइयों की आवश्यकता होगी और दूसरे स्तर में तुलनात्मक रूप में कई इकाइयों का चयन करना पड़ेगा। यदि अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों के विचारों और मनोवृत्तियों में अधिक विभिन्नता है तो निदर्शन में पुरुषों की संख्या अधिक होनी चाहिए जिससे कि इन विभिन्नताओं का अध्ययन किया जा सके।

इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। कभी–कभी एक स्तर में से अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है। क्योंकि उस स्तर को उपभागों में विभाजित करना होता है और विभिन्न उपभागों की तुलना करनी होगी क्योंकि इकाइयों की संख्या सीमित होगी। जहोदा के अनुसार विभिन्न स्तरों में से इकाइयों का चुनाव अध्ययन के उद्देश्य पर निर्भर करना चाहिये। इस प्रकार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन में इसके अन्तर्गत प्रायः प्रत्येक स्तर में समान संख्या में इकाइयों को चुना जाता है तथा इस बात की कुछ परवाह नहीं कि जाती कि विभिन्न स्तर समग्र का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। प्रत्येक स्तर से चुनी गई इकाइयों की संख्या योजना में पूर्व–निश्चित इकाइयों की संख्या के समान रखी

जाती है। इस प्रकार के निदर्शन को कभी–कभी नियन्त्रित निदर्शन भी कहा जाता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. निदर्शन के आकार की दृष्टि से सभी समान रूप से विश्वसनीय होते हैं। प्रत्येक स्तर के समान संख्या में इकाइयों का चुनाव किए जाने के कारण विभिन्न स्तरों की तुलना सम्भव हो जाती है।

2. निदर्शन के इस प्रकार से बचत बहुत अधिक होती है क्योंकि इसके उत्तरदाता एक–दूसरे से भौगोलिक सामीप्य की स्थिति में होते हैं।

असमानुपातिक निदर्शन उस स्थिति में काम में लिया जाता है जबकि उपसमग्रों का निर्माण करने पर अनुसंधानकर्त्ता को यह लगे कि किसी एक उप–समग्र का आकार दूसरे उप–समग्रों की तुलना में बहुत छोटा है। इस स्थिति में यदि समानुपातिक निदर्शन का चुनाव किया जायेगा तो उस छोटे उप–समग्र में से जो निदर्शन आयेगा वह नगण्य होगा तथा तुलना के लिए सही आधार प्रस्तुत नही कर पायेगा। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्त्ता उस छोटे उप–समग्र में से अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में इकाइयो का चयन करता है और बड़े उप–समग्र का अनुपात थोड़ा–सा कम कर देता है। इस कारण इसे असमानुपातिक की संख्या दी जाती है। ऐसा करना वस्तुतः विशेष परिस्थितियों में आवश्यक हो जाता है। क्योंकि इसके बिना सही रूप से तुलना नहीं की जा सकती। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को एक उदाहरण के रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी एक सामाजिक अनुसन्धान में अनुसंधानकर्त्ता को विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का अध्ययन करना है जिनकी कुल संख्या 10,000 है। अनुसंधानकर्त्ता अपने अध्ययन में मुख्य रूप में प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी तथा तृतीय श्रेणी प्राप्त विद्यार्थियों की परस्पर तुलना करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह निदर्शन के चयन में स्तरीकृत पद्धति को काम में लेना चाहता है। इसके लिये यह करना होगा कि वह सबसे पहले उन 10,000 में से प्रत्येक विद्यार्थी की श्रेणी ज्ञात करे और इस एक समग्र को तीन समग्रों में विभाजित करे। यदि प्रथम श्रेणी में 200 विद्यार्थी हैं, द्वितीय श्रेणी में 5,000 विद्यार्थी हैं तथा तृतीय श्रेणी में 4,800 विद्यार्थी हैं और अनुसन्धानकर्त्ता को कुल मिलाकर 500 विद्यार्थियों का निदर्शन लेना है तो वह समानुपातिक निदर्शन के अनुसार प्रथम श्रेणी के दस, द्वितीय श्रेणी के 250 तथा तृतीय श्रेणी के 240 विद्यार्थियों का चयन करेगा। ऐसा करने में मुख्य कठिनाई यह है कि जहाँ द्वितीय व तृतीय

श्रेणी में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है वहाँ प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या निदर्शन के दृष्टिकोण से बहुत ही कम है। ऐसी स्थिति में कोई अर्थपूर्ण तुलना नहीं की जा सकती। तब अनुसंधानकर्त्ता के लिये उपयुक्त यह होगा कि वह असमानुपातिक निदर्शन के नियम को काम में ले अर्थात् वह प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों का, प्राप्त अनुपात के अधिक संख्या में चयन करे और द्वितीय व तृतीय श्रेणी के विद्यार्थियों के चयन की संख्या को थोड़ा–थोड़ा कम कर ले।

इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन ही सामाजिक अनुसंधान में निदर्शन के चयन की अत्यन्त उपयुक्त पद्धति है लेकिन समान्यतः समग्र को स्तरों में स्तरीकृत करने के लिए चरों का चुनाव करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाता है :

1. **उपलब्ध सूचना की प्रकृति** : यह आवश्यक है कि स्तरों के विषय में सूचना उपयुक्त, उचित, पूर्ण एवं सम्पूर्ण जनसंख्या पर लागू होने योग्य तथा अनुसन्धानकर्त्ता को सरलतापूर्वक प्राप्त होने योग्य होनी चाहिए। अनेक चरों के साथ नियन्त्रक के रूप में प्रयोग में नहीं लाया जाना चाहिए क्योंकि चरों की संख्या जितनी अधिक होती है स्तरीकरण में उतनी ही कठिनाई होती है।

2. **चरों का अनुसन्धान में उद्देश्यों की प्राप्ति से सम्बन्ध।**

3. **सम्पूर्ण निदर्शन में स्तरों का आकार** : सभी स्तरों का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि क्षेत्र में जाकर इसे तथा इसकी निर्माणकारी इकाइयों का पता सरलतापूर्वक लगाया जा सके।

4. **स्तरों की आन्तरिक समता** : समग्र की प्रत्येक निदर्शन इकाई को निर्मित किये गये स्तरों में से एक (और केवल एक) में ही निदर्शन के चुनाव के पूर्व रखा जाता है ताकि सभी स्तरों में पाई जाने वाली इकाइयों का योग समग्र की इकाइयों के समान हो। एक विशिष्ट स्तर में निर्धारित की गई इकाइयो में से ही इस स्तर विशेष के लिए एक निदर्शन का चुनाव किया जाता है तथा प्रत्येक निदर्शन के आगणनों को अलग–अलग निकाला जाता है। प्रत्येक स्तर के लिए अलग–अलग निकाले गये इन आगणनों को सामूहिक रूप से एकत्रित करते हुए सम्पूर्ण समग्र के लिए आगणनों को निकाला जाता है।

स्तरीकृत निदर्शन के लाभ व हानियाँ निम्नलिखित हैं

(Advantages and Disadvantages of Stratified Sampling)

स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. क्योंकि समग्र को पहले स्तरीकृत करने के बाद ही उनके प्रत्येक स्तर से स्तरीकृत निदर्श निकाला जाता है इसलिए समग्र के किसी भी महत्वपूर्ण समूह के पूर्णरूपेण बाहर रह जाने की सम्भावना कम हो जाती है।

2. अधिक समरूपता वाले समग्र से केवल कुछ इकाइयों को ही निदर्श में सम्मिलित करने पर अधिक सूक्ष्म परिणामों की प्राप्ति की जा सकती है। जिसके परिणामस्वरूप अन्तः आँकड़ों के संग्रह एवं संसाधन पर लगने वाली लागत कम हो जाती है।

3. यदि स्तरों का निर्माण करने तथा प्रत्येक छोटे स्तर का निर्धारण करने के पश्चात् साक्षात्कारकर्त्ताओं से इकाइयों को चुनने को कहा जाये तो वे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों को चुन सकते हैं, अपेक्षाकृत उस स्थिति के जिसमें उनको पूर्णरूपेण अपना निर्णय लेते हुए इकाइयों के चुनाव करने को कहा जाए। इसका कारण यह है कि जब साक्षात्कारकर्त्ता के चुनाव की सीमा कुछ ऐसे समूहों तक सीमित हो जाती है जिनमें विषमता कम होती है तो उनके द्वारा किया चुनाव स्वतः अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण होता है।

4. ऐसे निदर्श जो स्वतः चुने गये होते हैं जैसे कि डाक प्रश्नावली से प्राप्त होने वाले प्रतिदान, वे कम पूर्वाग्रहपूर्ण होते हैं किन्तु स्तरीकरण का आश्रय लेते हुए निदर्श का चुनाव करने पर पूर्वाग्रह कहीं कम होता है। इस सम्बन्ध में स्टीफन के विचार उल्लेखनीय हैं : "इस बात का प्रावधान करने पर कि निदर्शन का एक निश्चित अनुपात प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र अथवा आय समूह से होगा, स्तरीकरण स्वतः निदर्शन द्वारा खोये गये व्यक्तियों को उसी स्तर के व्यक्तियों द्वारा पुनर्स्थापित कर देता है और इस प्रकार आँशिक रूप से वह पूर्वाग्रह कम हो जाता है जो उस समय उत्पन्न हो सकता है जबकि व्यक्तियों का पुनर्स्थापन सम्भव न हो। न्यून प्रतिपादन की दर वाले स्तरों में व्यक्तियों को डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की संख्या को न्यून दरों की क्षतिपूर्ति करने के लिए बढ़ाया जा सकता है ताकि प्रत्येक स्तर से प्राप्त किये गये प्रयोग प्रतिदानों की संख्या स्तर के आकार के समानुपाती हो सके। स्तरीकरण की व्यवस्था के अन्तर्गत एक ऐसे वर्गीकरण का समावेश

सम्भव हो सकता है जो अधिक क्षति के दरों वाले व्यक्तियों को कम क्षति की दरों वाले व्यक्तियों से प्रभावपूर्ण ढंग से अलग कर सकता है जिसमें क्षति के कारण पूर्वाग्रह के एक बड़े हिस्से को नियन्त्रित किया जा सकता है।”

5. दैव निदर्शनों की तुलना में स्तरीकृत निदर्श भौगोलिक दृष्टिकोण से अधिक सीमित क्षेत्र में केन्द्रित किये जा सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप समग्र, प्रयास एवं धन के व्यय में पर्याप्त बचत सम्भव हो सकती है। क्राक्सटन तथा काउडेन ने इस प्रणाली को अन्य प्रणालियों की तुलना मे अधिक अच्छा बताया है। विभिन्न वर्गों का विभाजन यदि सतर्कता से किया गया है तो थोड़ी इकाइयों का चयन करने पर भी सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व हो जाता है जबकि दैव निदर्शन में प्रतिनिधित्व का गुण तभी आ सकेगा जब इकाइयों की संख्या पर्याप्त हो। क्षेत्रीय दृष्टि से वर्गीकरण करने पर इकाइयों से सम्पर्क आसानी से स्थापित किया जा सकता है। इससे धन व समय की भी बचत होती है।

स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित हैं :

(1) स्तरीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण चरों का प्रयोग किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन का कार्य आरम्भ करने के पूर्व ही अनुसन्धानकर्त्ता को अपने समग्र से सम्बन्धित विभिन्न चरों एवं इनके सापेक्ष महत्त्व की पर्याप्त जानकारी हो।

(2) यदि स्तरीकरण के दौरान विभिन्न स्तरों के लिए निदर्शों का निर्धारित किया गया आकार समानुपातिक नहीं होता है तो भारण की समस्या हमारे समाने आती है जिसके अन्तर्गत हम विभिन्न स्तरों से प्राप्त किए गए परिणामों को इन स्तरों से निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों की संख्या के अनुसार भार निर्धारित करते हैं और भारण के लिए समग्र के प्रत्येक स्तर में सापेक्ष बारम्बारता का ज्ञान आवश्यक होता है। भारण के दौरान कुछ विशेष प्रकार की समस्याएँ हमारे सामने आती हैं। जैसे की पहले भार प्रदान किए बिना विभिन्न स्तरों से आँकड़ों का एकत्रित किया जाना तथा इन आँकड़ों के आधार पर आगणनो का निकाला जाना, भारित तथा गैर–भारित आँकड़ों को अलग–अलग रखा जाना, आवश्यकतानुसार भारों में परिवर्तन किया जाना, जबकि हम इनमें अतिरिक्त सूचना का समावेश करना चाहते हैं अथवा दो खानों में दी गई सूचना को एक साथ प्रदर्शित करना चाहते हैं।

(3) विशेष विवरणों की दृष्टि की उपयुक्त इकाइयों का पता लगाने में क्षेत्रीय कार्य के दौरान पर्याप्त कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। जब तक इकाइयों का चुनाव दैव रूप से अथवा प्रत्येक इकाई की सूची रखने वाले सम्पूर्ण समग्र से न किया जाए तब तक निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों का पता लगाने में पर्याप्त समय लगता है जिसके परिणामस्वरूप अनुसन्धान कार्य पर लगने वाली लागत भी बढ़ जाती है।

(4) प्रत्येक स्तर से सरल दैव निदर्शन की आवश्यकता के कारण प्रायोगिक कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं।

(5) जब समानुपातों की गणना करनी होती है तो स्तरीकृत निदर्शन की सहायता से प्राप्त होते हैं।

(6) प्रत्येक स्तर से आगणन किए जाने के परिणामस्वरूप क्रमबद्ध त्रुटि की सम्भावना बढ़ जाती है।

(7) अध्ययन किए जाने वाले सभी चरों के सम्बन्ध में उपयुक्त परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते।

1.10.3 उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन

(Purposive Sampling)

जब अनुसन्धानकर्त्ता किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर जान–बुझकर समग्र में कुछ इकाइयों का चुनाव करता है तो उसे उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन कहते हैं। इस प्रकार के निदर्शन के चुनाव का मुख्य आधार यही है कि इसमे अनुसन्धानकर्त्ता समग्र (Universe) की इकाइयों के लक्षणों से पूर्वपरिचित होकर सविस्तारपूर्वक निदर्शनों का चुनाव करता है। चुनाव का आधार अध्ययन का उद्देश्य होता है और उद्देश्यों को सामने रखते हुए उसी के अनुरूप अनुसन्धानकर्त्ता सम्पूर्ण क्षेत्र से सर्वाधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चुनाव करता है। इस प्रकार अध्ययन के उद्देश्यों को अपना मार्गदर्शन मानते हुए उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त निदर्शनों का विचारपूर्वक चुनाव करने के कारण ही इसे उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन कहते हैं।

श्री एडोल्फ जेन्सन (Adolph Jenson) ने लिखा है, "सविचार निदर्शन से अर्थ है इकाइयों के समूहों की एक संख्या को इस प्रकार चुनना कि चुने हुए समूह मिलकर उन

विशेषताओं के सम्बन्ध में यथासम्भव वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करें जो कि समग्र में हैं और जिनकी सांख्यिकीय जानकारी पहले से ही है।"

सविचार निदर्शन के लक्षण (Characteristics of Purposive Sampling) :

(1) अनुसन्धानकर्त्ता समग्र (Universe) की समस्त इकाइयों की विशेषता से परिचित हो ताकि उसे पहले से ही यह ज्ञान हो कि कौन सी इकाई के क्या गुण हैं और उसी आधार पर कौन सी इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति सरल हो सकेगी।

(2) सविचार निदर्शन मे निदर्शनों का चुनाव किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाता है। बहुधा सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस प्रकार के निदर्शन का लक्ष्य होता है।

(3) इस प्रणाली में चूँकि अनुसन्धानकर्त्ता अपनी इच्छानुकूल निदर्शनों का चुनाव करता है, इसलिये पक्षपात की सम्भावना भी अधिक होती है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुण (Merits of Purposive Sampling) : उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख हम कर सकते हैं।

(क) यह कम खर्चीली है क्योंकि इनमें निदर्शन का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है। इसकी मान्यता यह है कि यदि निदर्शनों का चुनाव पक्षपात रहित होकर किया जाये तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकता है।

(ख) यह उन अनुसन्धानों में अत्यन्त उपयोगी होती है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयाँ विशेष रूप में महत्वपूर्ण होती हैं और इसीलिए उनका चुना जाना आवश्यक होता है। इस आवश्यकता की पूर्ति दैव निदर्शन से नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि रुहेलखण्ड डिविजन की शिक्षा संस्थाओं का अध्ययन करना है तो बरेली कॉलेज को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। पर यदि हम दैव निदर्शन–प्रणाली को अपना रहे हैं तो निदर्शन के चुनाव में बरेली कॉलेज का नाम आ भी सकता है और छूट भी सकता है। ऐसी दशा में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन–प्रणाली ही उपयोगी सिद्ध होती है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के दोष (Demerits of Purposive Sampling) : उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुणों की अपेक्षा दोषों की ओर भी विद्वानों ने हमारा ध्यान अधिक आकर्षित किया है। श्री पार्टन (Parten) ने लिखा है, "एक वर्ग के रूप में सांख्यिकी शास्त्रियों को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के पक्ष में कुछ भी कहना नहीं है।"

प्रो. नेमैन (Neyman) ने तो इसको 'निरर्थक' बताया है। प्रो. स्नेडेकोर (Sendecor) ने इसके निम्नलिखित तीन दोषों का उल्लेख किया है :

(अ) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में यह आवश्यक है कि अनुसन्धानकर्त्ता को पहले से ही समग्र (Universe) का पूर्ण ज्ञान हो ताकि वह समझ सके कि किन इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव होगी। पर पहले से ही इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं होता।

(ब) इसमें अनुसन्धानकर्त्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने के लिये स्वतन्त्र होता है और इस सम्बन्ध में उस पर कोई नियन्त्रण न होने के कारण पक्षपात तथा मिथ्या–झुकाव पूर्वाग्रह (Bias) के प्रवेश की पूर्ण सम्भावना इसमें है।

(स) निदर्शन सम्बन्धी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती।

1.10.4 बहुस्तरीय निदर्शन

(Multistage Sampling)

किसी भी अनुसन्धान में जब अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन के लिए सरल दैव निदर्शन या स्तरीकृत दैव निदर्शन विधि का उपयोग करता है तब उसके सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ मुख्य तौर पर आती हैंः

(1) सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उसके पास समग्र की पूरी सूची पहले से ही मौजूद हो। स्तरीकृत दैव निदर्शन में तो यह भी जरूरी होता है कि जिस लक्षण के आधार पर हम समग्र का विभाजन कर रहे हैं समग्र की सभी इकाइयों के बारे में उस लक्षण से सम्बन्धित जानकारी पहले से ही हमारे पास हो अन्यथा उनका विभाजित समूहों में वर्गीकरण नहीं किया जा सकेगा। सामाजिक अनुसन्धान में कभी–कभी ऐसे भी अवसर आते हैं जब जिन इकाइयों के बारे में हम अध्ययन करना चाहते हैं उनसे सम्बन्धित समग्र की पूरी सूची उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में यदि हम पहले समग्र की सूची का निर्माण न करें और उसके लिए संगणना का कार्य, जो कि अपने आप में बहुत अधिक समय लेने वाला होता है, न करें तब इन दोनों में से किसी भी पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता। सूची निर्माण का कार्य तब और अधिक कठिन हो जाता है जब हमारा अध्ययन

क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत हो। इसे एक सरल उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि अनुसन्धानकर्त्ता घर में काम करने वाली नौकरानियों के बारे में कोई अध्ययन संचालित करना चाहे और उसके लिए सरल दैव निदर्शन या स्तरीकृत दैव निदर्शन लेना चाहे तो उसके लिए यह जरूरी होगा कि ऐसी नौकरानियों की एक सूची उसके पास हो। ऐसी सूची सामान्यतया उपलब्ध नहीं होती है। ऐसे में अनुसन्धानकर्त्ता के सामने एक ही विकल्प रहेगा कि प्रत्येक घर में जाकर यह पता लगाए कि उनके यहाँ कौन नौकरानी काम करती है और इस प्रकार नौकरानियों के समग्र की पूरी सूची तैयार करे। निश्चित रूप से यह कार्य अधिक समय लेगा जो कि अनुसन्धानकर्त्ता के पास नहीं होता है।

(2) जब कभी अनुसन्धानकर्त्ता सरल दैव निदर्शन या स्तरीकृत दैव निदर्शन का उपयोग करता है तो उसके सम्मुख एक कठिनाई यह आती है कि यदि अध्ययन क्षेत्र अधिक बड़ा हो तो चुनी गई इकाइयों की भौतिक दूरी अधिक होती है ऐसी स्थिति में किसी एक इकाई के न मिलने पर या उससे कार्य पूरा करने के बाद दूसरी इकाई से सम्पर्क स्थापित करने के लिए या तो अनुसन्धानकर्त्ता के पास यातायात के द्रुतगामी साधन सुलभ हों अथवा उसे काफी समय इधर से उधर जाने में व्यय करना पड़ेगा। ऐसी सुविधा प्रायः सामान्य अनुसन्धानकर्त्ता के पास नहीं होती है। इसी कारण वह ऐसा प्रयास करता है कि अध्ययन के लिए चुनी गई इकाइयों को एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रखा जाए। इन दोनों ही स्थितियों में बहुस्तरीय निदर्शन एक उपयुक्त विकल्प है।

बहुस्तरीय निदर्शन में अनुसन्धानकर्त्ता सबसे पहले अध्ययन क्षेत्र को भौगोलिक आधार पर छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित करता है। ये क्षेत्र कितने होंगे तथा इनका आधार क्या होगा, ये अध्ययन क्षेत्र के विस्तार और स्वरूप पर निर्भर करता है। यदि अनुसन्धानकर्त्ता को उदयपुर क्षेत्र में इस प्रकार के निदर्शन का चयन करना है तो वह उदयपुर शहर को नगरपालिका के उनतालीस वार्डों में विभाजित कर सकता है। इसी प्रकार विभाजन का कोई दूसरा आधार भी लिया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र को छोटे–छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित करने के बाद अनुसन्धानकर्त्ता उनमें से कुछ वार्डों का चयन रैण्डम विधि जैसे लॉटरी या दूसरी विधि के द्वारा करता है, जैसे यदि उसने अध्ययन क्षेत्र को 39 भागों में विभाजित किया है तो वह पहले 1 से 39 तक लॉटरी डाल देगा उसमें से 3–4 या जिस भी संख्या में वह चाहे क्षेत्रों का चयन अपने अध्ययन के लिए

कर लेगा। उदाहरण के तौर पर लॉटरी निकालने पर 2, 7, 26 या 37 कार्ड निकले। उस स्थिति में अनुसन्धानकर्त्ता निदर्शन का चुनाव पूरे शहर की इकाइयों में से नहीं करेगा वरन् उसे उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखेगा। उन क्षेत्रों का चयन करने के बाद अनुसन्धानकर्त्ता इन क्षेत्रों की इकाइयों की सूची प्राप्त करेगा। यदि सूची उपलब्ध नहीं है तो वह संगणना के द्वारा अध्ययन से सम्बन्धित इकाइयों की सूची का निर्माण करेगा। इस प्रकार तैयार की गई सूची में यदि इकाइयों की कुल संख्या इतनी हो कि उन सभी का उपलब्ध साधनों के द्वारा अध्ययन हो सकता हो तब तो वह उन सभी इकाइयों के तथ्यों का संकलन करेगा। इसके विपरीत यदि उसे ऐसा लगे कि इकाइयों की संख्या बहुत अधिक है तो इस प्रकार बनाई गई सूची में से वह सरल दैव निदर्शन के द्वारा इकाइयों का चयन करेगा। चूँकि इस पूरी प्रक्रिया में अनुसन्धानकर्त्ता एक से अधिक स्तरों पर निदर्शन पद्धति का उपयोग करता है तो इस कारण उसे बहुस्तरीय निदर्शन कहा जाता है।

1.10.5 गुच्छ निदर्शन

(Cluster Sampling)

यदि हम किसी समष्टि को बहुत से समूहों में बाँट लें और फिर इनमें से केवल कुछ समूहों का निदर्श लेकर उनके तत्वों का अध्ययन करें तो इसे गुच्छ निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि किसी राज्य में 200 चुनाव क्षेत्र हों और हम इनमें से 10 का निदर्श ले लें और इसके मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह गुच्छ निदर्शन होगा। इस प्रकार से सारे राज्य में नहीं घूमना पड़ेगा। अपने निदर्श में आए चुनाव क्षेत्रों के आधार पर हम सारे राज्य के विषय में आकलन कर सकेंगे। सामाजिक सर्वेक्षणों में इस प्रणाली का उपयोग मुख्यतया आधार–सामग्री–संग्रह के लिए यात्रा के व्यय को बचाने के उद्देश्य से होता है।

गुच्छों के निर्माण के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं:

1. इकाइयों के एक संग्रह को गुच्छ के नाम से सम्बोधित किया जाए अथवा नहीं इस बात का निर्धारण विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कहीं गुच्छ एक जनपद (जिला) के रूप में हो सकता है तथा कहीं यह एक मकान के रूप में हो सकता है।

2. गुच्छ आवश्यक रूप से एक प्राकृतिक संकलन नहीं होते। उदाहरण के लिए क्षेत्र निदर्शन के दौरान मानचित्र पर जाली रखते हुए कृत्रिम गुच्छों का निर्माण किया जाता है किन्तु प्रायः गुच्छ निदर्शन के दौरान समग्र के प्राकृतिक समूहों में प्रयोग किया जाता है।

3. किसी एक ही निदर्शन प्ररचना के अन्तर्गत गुच्छों के अनेक प्रकारों का प्रयोग किया जा सकता है उदाहरण के लिए राज्य के अन्तर्गत जिलों, जिलों के अन्तर्गत तहसीलों, तहसीलों के अन्तर्गत ब्लाकों, ब्लाकों के अन्तर्गत गाँवों तथा गाँवों के अन्तर्गत परिवारों का प्रयोग गुच्छों के रूप में किया जा सकता है।

4. गुच्छ जितने बड़े होंगे, निदर्शन की लागत उतनी ही कम होगी। गुच्छ निदर्शन में यदि हम केवल एक बार निदर्शन करें तो उसे एक पद निदर्शन कहते हैं और यदि एक से अधिक बार करें तो उसे बहु–पद निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हमें किसी राज्य के मतदाताओं का अध्ययन करना हो और हम 10 चुनाव क्षेत्रों का दैव निदर्शन लेकर इन 10 चुनाव–क्षेत्रों के सभी मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह एक पद निदर्शन होगा क्योंकि हमने केवल एक ही बार निदर्शन लिया है। किन्तु यदि हम (1) चुनाव–क्षेत्रों का दैव निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए चुनाव–क्षेत्र में से, (2) गाँवों का दैव निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए प्रत्येक गाँव में से (3) मतदाताओं का दैव निदर्श ले लें तो यह त्रि–पद निदर्शन होगा। यहाँ हमने तीन बार निदर्शन लिया है। प्रत्येक बार प्रायिकता निदर्शन होना चाहिए फिर चाहे वह दैव हो या व्यवस्थित।

गुच्छ निदर्शन में यह प्रयत्न किया जाता है कि गुच्छे यथासम्भव छोटे हों जिससे आने–जाने में व्यय कम हो। साथ ही यह भी प्रयत्न रहता है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। जैसे विधान–सभा चुनाव–क्षेत्र, लोकसभा वाले क्षेत्रों से छोटे होंगे। मतदाताओं के साथ साक्षात्कार के लिए शोधकर्त्ता को अधिक यात्रा न करनी पड़े, इस दृष्टिकोण से विधान–सभा चुनाव–क्षेत्र अधिक उपयुक्त होंगे। किन्तु दूसरी आवश्यक बात यह है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। यहाँ प्रत्येक चुनाव–क्षेत्र गाँवों का गुच्छा है। यदि विधान–सभा के चुनाव–क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के गाँव न आते हों तो लोक–सभा के चुनाव–क्षेत्रों का निदर्शन लेना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि निदर्शन के इन अवसरों में किस सीमा तक विरोध हो सकता है। यथासम्भव दोनों उद्देश्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे यदि हमें लगे कि

विधान–सभा के चुनाव–क्षेत्रों में सभी प्रकार के गाँव आ जाते हैं तो इनका प्रतिदर्श ले लेना ठीक होगा क्योंकि ये छोटे भी हैं और विषम भी। गुच्छ प्रतिचयन दैव निदर्शन से बहुधा सस्ता पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि हम सारे भारत में 2,000 मतदाताओं का निदर्श लेना चाहें और दैव निदर्श लें, तो सम्भव है, अकेले मध्यप्रदेश में 150 मतदाताओं से साक्षात्कार के लिए हमें सारे राज्य में घूमना पड़े। इसके विपरीत गुच्छ निदर्शन में हो सकता है कि हमें केवल इसके पाँच जिलों में जाना पड़े। यदि बहु–पद निदर्शन लिया जाए तो पूरे–पूरे जिलों में भी नहीं घूमना पड़ेगा, कुछ गाँवों में जाने से ही काम चल जाएगा।

गुच्छ निदर्शन के प्रमुख लाभ :

1. विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैले हुए समग्र का अध्ययन गुच्छ निदर्शन की सहायता से अधिक बचतपूर्ण ढंग से किया जा सकता है।

2. जहाँ समग्र के उप–समूहों के विषय से आगणन प्राप्त करना हो। उदाहरण के लिए गुच्छ निदर्शन का प्रयोग करते हुए अध्ययन करने पर प्रत्येक मकान में रहने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या भी ज्ञात हो जाती है।

3. कुछ परिस्थितियों में गुच्छों का प्रयोग बार–बार किया जा सकता है जैसे कि पैनल अध्ययनों के अन्तर्गत जिसमें हम एक निश्चित अवधि में समग्र में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना चाहते हैं।

4. निदर्शन ढाँचे के उपलब्ध न होने पर स्वयं सूची बनाने की आवश्यकता का अनुभव होता है और हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति गुच्छ निदर्शन द्वारा सम्भव बनाई जाती है।

5. गुच्छ निदर्शन की कुशलता को बढ़ाने के लिए निम्न प्रकार के उपायों को अपनाया जा सकता है :

(i) गुच्छों का स्तरीकरण,

(ii) गुच्छों के आकार का कम किया जाना,

(iii) उप–निदर्शन।

1.10.6 अभ्यंश निदर्शन

(Quota Sampling)

अभ्यंश निदर्शन या कोटा निदर्शन में यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न तत्व जिस अनुपात में समग्र में पाये जाते हैं उसी अनुपात में निदर्शन में भी आ जाएँ, किन्तु इकाइयों का चयन आकस्मिक ही होता है। दूसरे शब्दों में, अभ्यंश निदर्शन आकस्मिक निदर्शन का ही सुधारा हुआ रूप है। इसमें समग्र के मुख्य स्तरों का ध्यान रखा जाता है एवं यह प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक स्तर का प्रतिनिधित्व निदर्शन में होगा यदि प्रत्येक स्तर का सदस्य अपने सही अनुपात में निदर्शन में न भी आ सके तो कम से कम यह होना चाहिए कि प्रत्येक स्तर के विषय में अनुमान लगाया जा सके।

इस पद्धति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अधिक उपयुक्त नहीं माना जाता एवं इसके अन्तर्गत भी उत्तरदाताओं का चुनाव अनुसन्धानकर्त्ता स्वेच्छा से ही करता है। अभ्यंश निदर्शन का उपयोग करते समय अनुसन्धानकर्त्ता यह ध्यान में रखता है कि अध्ययन के दृष्टिकोण से किन–किन लक्षणों के आधार पर विभिन्न वर्गों में से इकाइयों का चुनाव करना अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा करने के उपरान्त यह निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में से कितने उत्तरदाताओं से आँकड़ों को एकत्रित करना है इस संख्या को ही अभ्यंश या कोटा कहा जाता है। प्रत्येक वर्ग में से चयन की जाने वाली इकाइयों की संख्या तय करने के उपरान्त अनुसन्धानकर्त्ता इस बारे में पूर्णतः स्वतन्त्र होता है कि, 'वह इन वर्गों में किन इकाइयों का चयन अपने अध्ययन में करे। अपनी सुविधा के अनुसार या आकस्मिक विधि से इकाइयों को लेते हुए तथ्यों का संकलन करता है। यदि यह मान लें, हमें किसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की राजनीतिक जानकारी का अध्ययन करना है। हम सोचते हैं कि पुरुष विद्यार्थियों की जानकारी स्त्री विद्यार्थियों से अधिक है। इसलिए यदि दोनों अपने सही अनुपात में निदर्शन में आये तभी निदर्शन के माध्य से समग्र के माध्य का सही अनुमान लग सकेगा। इसके विपरीत यदि पुरुष अपने अनुपात से अधिक आ गये तो निदर्श का माध्य घट जाएगा। इसलिए हम यह प्रयत्न करते हैं कि निदर्श में उनका अनुपात लगभग वही हो जो समग्र में है। अब यदि हमें ज्ञात है कि कुछ विद्यार्थियों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से दोगुनी है तो हम साक्षात्कारकर्त्ता को यह निर्देश देते हैं कि उसे 90 विद्यार्थियों के साथ साक्षात्कार करना है। किन्तु अभ्यंश निदर्शन में उसे कोई सूची

नहीं दी जाती। उसे जो भी विद्यार्थी मिलते जाते हैं उनसे वह साक्षात्कार करता जाता है, यहाँ तक कि उनकी संख्या निर्देश के अनुसार काफी हो जाए और उनमें पुरुषों और स्त्रियों का निर्दिष्ट अनुपात हो जाए। इस प्रकार इतने विद्यार्थी हमें मिल जाते हैं कि हम पुरुषों और स्त्रियों की अलग–अलग जानकारी का अनुमान लगा सकें, और साथ ही दोनों को मिलाकर कुल विद्यार्थियों की जानकारी का भी।

अभ्यंश निदर्शन के पक्ष में कई तर्क दिए जाते हैं। एक, तो यह कि इसमें खर्च कम आता है क्योंकि पहले से चुने हुए उत्तरदाताओं को नहीं ढूँढना पड़ता। दूसरे, इसके प्रबन्ध में आसानी होती है। प्रायिकता निदर्शन की कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ती। साक्षात्कार के लिए बार–बार प्रयत्न नहीं करना पड़ता। तीसरे, इसे शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। इंग्लैंड में रेडियों के कार्यक्रमों के विषय में लोगों के मत जानने के लिए इसे प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में प्रतिदिन 3,000 से अधिक लोगों से पिछले दिन के कार्यक्रमों के विषय में पूछा जाता है। यदि दूसरे ही दिन न पूछा जाए तो यह सम्भावना रहती है कि लोग इनके विषय में भूल जाएँ। अभ्यंश निदर्शन से ही इतनी जल्दी इतने लोगों का निदर्शन और साक्षात्कार हो सकता है। चौथे, नियत मात्रात्मक निदर्शन के लिए समग्र सूची की आवश्यकता नहीं होती।

इन लाभों के होते हुए भी अभ्यंश निदर्शन आकस्मिक निदर्शन का एक सुधरा हुआ रूप ही है। यह पाया गया है कि साक्षात्कारकर्त्ता अपने मित्रों से अधिक साक्षात्कार करते हैं। मित्र बहुत–सी बातों (जैसे विचार, रुचि, आदि) में एक जैसे होते हैं और हो सकता है उनमें और दूसरे लोगों में काफी भेद हो। निदर्शन में अपने सही अनुपात से अधिक होने से उससे लगाए गए अनुमान पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार साक्षात्कारकर्त्ता बहुधा यह प्रयत्न करता है कि मेले, तमाशे, आदि में जाकर बहुत–से लोगों से आसानी से साक्षात्कार कर लें। किन्तु यहाँ भी यह सम्भावना रहती है कि मेले–तमाशे में जाने वाले लोग न जाने वाले लोगों से काफी भिन्न हों। यदि साक्षात्कारकर्त्ता घरों पर जाता है तो वह भवन और लोगों के कपड़ों के रूप आदि से प्रभावित होकर कुछ को चुनाव में अधिमान दे सकता है। बहुधा पाया गया है कि नियत मात्रात्मक निदर्शन में अमीर, उच्चवर्गीय लोग अपने अनुपात से अधिक आ सकते हैं।

इन सब कठिनाइयों का निराकरण प्रायिकता निदर्शन द्वारा ही हो सकता है। किन्तु यदि शोधकर्त्ता को इन खतरों का ध्यान रहे तो अभ्यंश निदर्शन में भी वह इनके निराकरण के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हो सकता है।

1.10.7 व्यवस्थित निदर्शन

(Systematic Sampling)

निदर्शन का एक और सरल ढंग है व्यवस्थित निदर्शन। इसमें दैव संख्याओं का उपयोग करने के स्थान पर समष्टि सूची में से नियमित अन्तराल के बाद सदस्यों को चुन लेते हैं। जैसे यदि 1,500 की समष्टि में से हमें 100 का निदर्श लेना हो तो हम समष्टि की सूची में से प्रत्येक पन्द्रहवें सदस्य को चुन लेते हैं। 1,500 को 100 से भाग देकर यह 15 का अन्तराल हमें मिल जाता है। यह आवश्यक है कि पहले तत्व का चयन दैव हो। पहली संख्या चुनने के लिए हम लॉटरी की पद्धति या दैव संख्याओं की तालिका का उपयोग कर सकते हैं। मान लें हमें पहली दैव संख्या 10 मिलती है। तब हमारे निदर्श में आने वाली संख्याएँ होंगी 10, 25, 40, 55, 70, 85 आदि। सूची के अन्त तक जाने पर हमें 100 संख्याएँ मिल जाएँगी। इन संख्याओं वाले सदस्य हमारे व्यवस्थित निदर्शन में माने जाएँगे।

व्यवस्थित निदर्शन का उपयोग सामाजिक शोध में बहुधा होता है। यदि समष्टि की सूची अत्यन्त लम्बी हो या हमें बड़ा निदर्श लेना हो तो व्यवस्थित निदर्शन से अधिक सरल होता है। उदाहरणार्थ, मान लें हमें किसी चुनाव क्षेत्र के 50,000 मतदाताओं में से 1,000 का निदर्श लेना है। दैव संख्याओं द्वारा निदर्शन के लिए हमें पहले सारे मतदाताओं के आगे 1, 2, 3 आदि 50,000 तक संख्याएँ लिखनी होंगी, फिर उनमें से निदर्श में आई संख्याओं वाले सदस्यों को ढूँढ–ढूँढ कर निदर्शन हो सकेगा। इसके स्थान पर व्यवस्थित निदर्शन में हम एक दैव प्रारम्भ (जैसे ऊपर उदाहरण में दसवाँ व्यक्ति) से लेकर प्रत्येक पचासवें व्यक्ति को अपने निदर्श में रखते जाएँगे।

1.10.8 आकस्मिक निदर्शन

(Accidental Sampling)

आकस्मिक निदर्शन, निदर्शन का वह प्रकार है जो प्रर्णरूप से मनमाने ढंग से किया जाता है अर्थात् यह पद्धति पूर्णतः अवैज्ञानिक है। यहाँ अनुसन्धानकर्त्ता अपनी इच्छानुसार

निदर्शन सूची से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव करता है। निदर्शन की इस प्ररचना में समय, धन एवं प्रयासों के व्यय में बचत तो अवश्य होती है किन्तु इसमें पूर्वाग्रह अधिक तथा सूक्ष्मता कम पाई जाती है। जहोदा ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें तथ्यों का संकलन करने से पूर्व अनुसन्धानकर्त्ता इकाइयों का चयन नहीं करता है बल्कि वह तथ्यों के संकलन के क्षेत्र के साथ अध्ययन क्षेत्र में पहुँच जाता है। अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन विषय से सम्बन्धित जो भी इकाई उसे मिले वह उससे तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास कर लेता है। अन्यथा वह इस इकाई को छोड़कर दूसरी इकाई से तथ्यों का संकलन, करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आकस्मिक रूप से जो भी उत्तरदाता मिले और तथ्य प्रस्तुत करने के लिए तैयार हो वह उसे अध्ययन का अंग बना लेता है तथा शेष को छोड़ता जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखता है जब तक कि एक पूर्ण निश्चित संख्या में उत्तरदाताओं से तथ्य प्राप्त नहीं हो जाते।

चूंकि इस पद्धति में उत्तरदाता का चयन पूर्ण रूप से अनुसन्धानकर्त्ता पर निर्भर करता है और इसमें भी वह केवल तथ्य प्रस्तुत करने को तैयार इकाइयों को ही सम्मिलित करता है अतः यह पद्धति विश्वसनीय प्रतिनिधि व वैज्ञानिक नहीं मानी जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि जिन अध्ययनों के आधार पर साधारणीकरण, उपकल्पना का परीक्षण या वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विकास या निर्माण करना हो उनमें वह पद्धति काम मे ली जा सकती है।

1.11. निदर्शन की प्रमुख समस्याएँ एवं उनके निदान

(Main Problems of Sampling and their Solutions)

निदर्शन की अनेक समस्यायें अनुसंधान कार्य को सम्पादित करते समय उपस्थित होती हैं। उसमें से कुछ प्रमुख समस्याओं को निम्नांकित बिंदुओं में रखकर समझा जा सकता है :

1. आकार की समस्या (Prblem of Size) : निदर्शन प्ररणाली में महत्त्वपूर्ण समस्या निदर्शन के आकार की होती है। आकार के छोटे या बड़े होने का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समय, धन, शुद्धता की मात्रा तथा संगठन से है। बड़े–बड़े निदर्शनों का संगठन कठिन होने के कारण अध्ययन के उपयुक्त नहीं रहते। गुडे तथा हॉट के शब्दों में, "एक निदर्शन को केवल प्रतिनिधिपूर्ण

होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसमें पर्याप्तता भी होनी चाहिए। एक निदर्शन उस समय पर्याप्त होता है जिसका आकार उसके लक्षणों की स्थिरता में विश्वास स्थापित करने के लिए पर्याप्त हो।"

निदर्शन का आकार छोटा होना चाहिए अथवा बड़ा, यह निर्धारित करना बहुत कठिन कार्य है। छोटे आकार में पूर्ण प्रतिनिधित्व न होने की त्रुटि रहती है तथा बड़े आकार में भी कई कठिनाइयाँ जैसे श्रम, पैसा व समय इत्यादि की हैं। निदर्शन को निर्धारित करने में निम्नांकित तत्त्वों का प्रमुख प्रभाव पड़ता है –

(i) समग्र की प्रकृति (Nature of Universe) : सजातीय इकाइयों वाले समग्र में थोड़े से निदर्शन से भी प्रतिनिधित्व पर्याप्त हो सकता है। विभिन्न इकाइयों वाले समग्र में बड़ा निदर्शन उपयुक्त रहता है।

(ii) अध्ययन की प्रकृति (Nature of Study) : अध्ययन की प्रकृति के आधार पर ही निदर्शन का आकार निर्धारित करना होता है। अतः यदि इकाइयों के गहन अध्ययन की आवश्यकता अधिक समय के लिए न हो तो छोटे निदर्शन को अपनाना उपयुक्त होगा। यदि अध्ययन विस्तृत हो तो निदर्शन बड़ा चुनना होगा।

(iii) वर्गों की संख्या (Number of Class) : यदि समग्र में विभिन्न प्रकार के वर्गों का समावेश है, उनमें काफी विविधताएँ हैं तो स्वाभाविक रूप से ही निदर्शन का आकार बड़ा करना पड़ेगा। परन्तु यदि वर्गों की संख्या कम है और साथ में भी एकरूपता है तो छोटा निदर्शन उपयुक्त हो सकता है।

(iv) उपलब्ध साधन व स्रोत (Available Means and Sources) : अनुसन्धानकर्त्ता के पास समय, धन, कार्यकर्त्ताओं, आवागमन के साधन व अन्य सामग्री पर्याप्त है तो बड़े निदर्शन का चुनाव किया जा सकता है लेकिन इसके विपरीत जितने साधन स्रोत कम होंगे, उस निदर्शन का आकार उसी अनुपात में छोटा होगा।

(v) निदर्शन पद्धति (Sampling Method) : यदि दैव निदर्शन प्रणाली का प्रयोग करना है तो निदर्शन का आकार बड़ा होना चाहिए जिससे अधिक संख्या में विभिन्न गुणों वाली इकाइयों के चुनाव का अवसर प्राप्त हो सके। सविचार या वर्गीय निदर्शन में कम इकाइयों का चुनाव भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सकता है।

(vi) परिशुद्धता की मात्रा (Degree of Accuracy) : यद्यपि छोटे आकार के निदर्शन भी काफी विश्वसनीय तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकते हैं, तथापि सामान्यतः बड़े निदर्शनों में परिशुद्धता की मात्रा अधिक होती है।

(vii) चयनित इकाइयों की प्रकृति (Nature of Selected Units) : निदर्शन का आकार इकाइयों की प्रकृति पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि इकाइयाँ अधिक हुई हैं तो उनसे सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई के अलावा समय व धन भी अधिक खर्च होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि निदर्शन का आकार छोटा हो तो उत्तम रहेगा, इससे विपरीत अवस्था में निदर्शन का आकार बड़ा लेना चाहिए।

(viii) अध्ययन के उपकरण (Techniques of Study) : यदि प्रत्येक के घर जाकर अनुसूचियाँ तैयार करनी हैं तो छोटा निदर्शन उपयुक्त रहेगा और यदि डाक द्वारा ही प्रश्नावलियाँ भेजनी हैं तो बड़ा निदर्शन भी उपयुक्त होगा। प्रश्नों की संख्या, आकार तथा उनकी प्रकृति पर भी निदर्शन का आकार निर्भर करता है। यदि प्रश्न छोटे, संख्या में कम व सरल हैं तो बड़ा निदर्शक उपयुक्त रहता है अन्यथा छोटे निदर्शन अपनाना चाहिए।

उपयुक्त कारकों के अध्ययन से पता चलता है कि निदर्शन के आकार के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम व सिद्धान्त नहीं है बल्कि परिस्थितियाँ ही उसके आकार को निर्धारित करती हैं। सभी प्रभावशाली कारकों के सम्बन्ध में सावधानी बरती जानी चाहिए। पार्टेन के मतानुसार, "आवश्यक खर्चे से बचने के लिए निदर्शन की काफी छोटा और असहनीय अशुद्धि से बचने के लिए उसे पर्याप्त बड़ा होना चाहिए।"

2. अभिनति का पक्षपातपूर्ण निदर्शन की समस्या (Problem of Biseness in Sampling) : निदर्शन के चुनाव पर पक्षपात का प्रभाव पड़ने से निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकता, ऐसे निदर्शन को अभिनति या पक्षपातपूर्ण निदर्शन की संज्ञा दी जाती है। निदर्शन में अभिनति निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हो सकती है :

(i) आकार छोटा होने से (The size of Being Small) : निदर्शन का आकार छोटा होने के कारण बहुत–सी इकाइयों को चुने जाने का अवसर नहीं मिलता है। ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हो सकती हैं जिन्हें सम्मिलित नहीं किया गया है, ऐसी स्थिति में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाता।

(ii) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन (Purposive Sampling) : सविचार या उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली में अनुसन्धानकर्त्ता को निदर्शनों के चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। फलतः पक्षपात का प्रवेश सरल हो जाता है। दूसरी स्थिति यह भी है कि अनुसन्धानकर्त्ता जिन इकाइयों से सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई महसूस करता है, उनको छोड़ देता और वह केवल उन्हीं को निदर्शन में स्थान देता है जो कठिन व सुविधाजनक न हों परन्तु ऐसी स्थिति में भी निदर्शन निष्पक्ष नहीं हो पाता है।

(iii) दोषपूर्ण वर्गीकरण (Defective Classification) : वर्गीय निदर्शन विधि के अन्तर्गत दोषपूर्ण वर्गीकरण निदर्शन को अभिनति या पक्षपातपूर्ण बना देता है। यदि वर्ग अस्पष्ट व असमान होंगे तो निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार यदि वर्ग में असमान संख्या में इकाइयाँ हैं और उन्हें निदर्शन में समान रूप में भारयुक्त भी हो जायेगा। इकाइयों को गलत वर्ग में रखने से चुनाव भी अनुचित रूप से होता है।

(iv) अपूर्ण स्रोत सूची (Incomplete Source List) : यदि साधन सूची अधूरी, पुरानी या अनुपयुक्त है तो स्वभावतः निदर्शन का चुनाव अनुसंधानकर्त्ता की इच्छानुसार होगा। इससे निदर्शन अभिनतिपूर्ण हो जाता है।

(v) कार्यकर्त्ताओं द्वारा चयन (Selection by workers) : जब इकाइयों के चयन की अनुमति कार्यकर्त्ताओं को दी जाती है उनकी लापरवाही के कारण चयन में पक्षपात प्रवेश कर जाता है। यदि इकाइयों में एकरूपता पाई जाती है तो इसकी सम्भावना कम रहती है अन्यथा निदर्शन अभिनतिपूर्ण होगा क्योंकि इकाइयों का चुनाव कार्यकर्त्ताओं ने अपनी इच्छानुसार किया है।

(vi) सुविधानुसार निदर्शन (Sampling by convenience) : इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता को पूर्ण छूट रहती है कि वह सुविधानुसार निदर्शनों का चुनाव कर सकता है, ऐसी स्थिति में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाता और उसमें पक्षपात का प्रवेश होना स्वाभाविक हो जाता है।

(vii) दोषपूर्ण दैव निदर्शन (Defective Random Sampling) : यद्यपि इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई को चुने जाने के समान अवसर प्राप्त होते हैं, लेकिन त्रुटिपूर्ण ढंग से इस पद्धति को प्रयोग में लाने से 'मिथ्या–झुकाव' का प्रवेश अनजाने में ही हो जाता है। यदि

गोलियों को बनाने में असावधानी बरती गई तो गोलियाँ छोटी–बड़ी हो सकती हैं, क्योंकि बड़ी गोली हाथ में जल्दी आती है। इसी प्रकार पर्चियों को अच्छी तरह हिलाकर या घुमाकर नहीं मिलाया गया तो ऊपर की पर्ची आ सकती है जो सबका प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

3. विश्वसनीयता–परीक्षण की समस्या (Problem of Testing Reliability) : यदि निदर्शन में किसी तरह पूर्वाग्रह या मिथ्या–झुकाव जाने की शंका हो तो उसका परीक्षण किया जा सकता है। इसके तीन तरीके हैं –

(i) समानान्तर निदर्शन,

(ii) समग्र से तुलना, तथा

(iii) निदर्शन का निदर्शन।

(i) समानान्तर निदर्शन (Parallel Sampling) : इसका अर्थ यह है कि उसी समग्र से उसी आकार का किन्तु किसी दूसरी प्रणाली से निदर्शन ले लिया जाये तथा उसकी मूल निदर्शन से तुलना की जाये। यह तुलना साँख्यिकीय रीतियों से की जाती है। यदि इसमें बहुत अधिक अन्तर आ जाता है तो मूल निदर्शन को दोषयुक्त मानकर रद्द कर देना चाहिए।

(ii) समग्र से तुलना (Comparision from Universe) : कई बार स्वयं शोधकर्त्ता को समग्र के बारे में बहुत कुछ मालूम होता है। वह अपने पूर्व–ज्ञान या अनुभव के आधार पर निदर्शन की तुलना करके अपना निर्णय दे सकता है। पर्याप्त समानता होने पर उसे "कार्यकर" निदर्शन माना जा सकता है।

(iii) निदर्शन का निदर्शन (Sampling from Sampling) : इसमें मूल निदर्शन में से कुछ इकाइयों का चयन दैव–निदर्शन से कर लिया जाता है। इस निदर्शन को समग्र से लिये हुए मूल निदर्शन के साथ तुलना की जाती है। मूल निदर्शन से उप–निदर्शन की तुलना करके देख लिया जाता है कि वह कहाँ तक विश्वसनीय है।

4. सामाजिक–राजनीतिक मानकों के अध्ययन की समस्या (Problem of Studing Socio-political Norms) : अनेक राजनीतिक विषयों एवं समस्याओं की तरह निदर्शन–पद्धति से सामाजिक एवं राजनीतिक मानकों का भी अध्ययन नहीं किया जा सकता। जिन इकाइयों को निदर्शन में शामिल किया जाता है वे अपने संकुचित क्षेत्र, व्यवहार एवं कार्य को ही

समझती हैं। समस्त संगठन या व्यवस्था के उद्देश्यों, लक्ष्यों या नैतिक मानकों के विषय में उनका ज्ञान बहुत सीमित होता है। यही बात बड़े समूहों, नौकरशाही संगठनों आदि पर भी लागू होती है। पीटर ब्लाउ, डाल्टन गोल्डनर आदि ने संगठनों का अध्ययन करने में सम्भावना निदर्शनों का प्रयोग नहीं किया है। इसका एक कारण, सोबर्ज एवं नैट के अनुसार यह हो सकता है कि वे सभी संगठन प्रायः अलोकतन्त्रात्मक ढंग से गठित होते तथा काम करते हैं। विभिन्न स्तर पर ज्ञान, अधिकार, दायित्व आदि असमान ढंग से बिखरे होते हैं। केवल शीर्षस्थ व्यक्ति या नेता ही संगठनों को समग्र दृष्टिकोण से देख पाते हैं। अन्य लोगों के लिए निष्पक्ष होकर तथा मानकीय दृष्टि से समग्र संगठन को देखना कठिन होता है। यह कार्य केवल महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्रीय व्यक्तियों को सूचनादाता बनाकर ही किया जा सकता है। ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों का पता निदर्शन से नहीं लगाया जा सकता है। सम्भवतः इस कार्य में उस क्षेत्र के अनुभवी, प्रतिष्ठित तथा निष्पक्ष लोगों के एक निर्णायक–मण्डल से सहायता ली जा सकती है, यद्यपि ये लोग भी यथास्थितिवादी होंगे तथा परिवर्तन से दूर रहना चाहेंगे। ऐसी समस्याओं का समाधान अन्य प्रविधियों को अपनाकर किया जाना चाहिए। पूर्व अध्यायों में शोध–प्रक्रिया के अन्तर्गत सामान्य प्रविधियों का विवेचन किया गया था। उन्हें अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र में लागू करने के लिए निदर्शन–प्रणाली को अपनाया जाता है। किन्तु राजनीतिक के तथ्य इतने समरूप, सरल, मूर्त अथवा बोधगम्य नहीं हैं कि इन पद्धतियों एवं प्रविधियों मात्र से ही समझ लिये जाएँ। अनेक राजनीतिक तथ्यों, इकाइयों आदि का गहन अध्ययन करना आवश्यक होता है।

उपर्युक्त दशाओं में यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ विशेष प्रयत्नों के द्वारा निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच अवश्य की जाए। इसके लिए विभिन्न विद्वानों ने अनेक उपायों का उल्लेख किया है जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण उपायों को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है :

(i) समानान्तर निदर्शन (Parallel Sampling) : प्राप्त निदर्शन कहाँ तक विश्वसनीय है, उसकी परीक्षा करने के लिए एक समानान्तर उप–निदर्शन को प्राप्त करना अक्सर बहुत उपयोगी होता है। यदि समानान्तर निदर्शन के अन्तर्गत आने वाली इकाइयों की विशेषताएँ मुख्य निदर्शन से सम्बन्धित इकाइयों की विशेषताओं से मिलती–जुलती होती हैं तो निदर्शन को विश्वसनीय माना जा सकता है।

(ii) समग्र से तुलना (Comparision from Universe) : समग्र को विभिन्न इकाइयों की सूची बनाते समय अध्ययनकर्त्ता समग्र की अनेक विशेषताओं को ज्ञात कर लेता है। उदाहरण के लिए, समग्र में स्त्री–पुरुषों का अनुपात व्यावसायिक स्वरूप जाति विभाजन तथा परिवार का स्वरूप आदि इसी प्रकार की कुछ प्रमुख विशेषतायें हैं। किसी भी विधि से प्राप्त निदर्शन से सम्बन्धित इकाइयाँ यदि अवलोकन पर आधारित विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं तो निदर्शन को विश्वसनीय माना जा सकता है।

(iii) परिणामों की तुलना (Comparision of Results) : अध्ययन से सम्बन्धित विषय यदि इस प्रकार का है कि उसके किसी अन्य पक्ष का अध्ययन पहले भी किया जा चुका हो तो उसके परिणामों की वर्तमान निदर्शन से प्राप्त परिणामों से तुलना करने पर भी यह ज्ञात किया जा सकता है कि निदर्शन किस सीमा तक विश्वसनीय है। यह विधि यद्यपि अधिक उपयोगी नहीं होती लेकिन तो भी कुछ विशेष परिस्थितियों में इसका उपयोग अवश्य किया जा सकता है।

(iv) महत्त्व का परीक्षण (Test of Significance) : निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच करने के लिये एक तरीका सबसे कम वैज्ञानिक होते हुए भी व्यावहारिक जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। निदर्शन के उपयोग द्वारा प्राप्त सूचनाओं का जब प्रथम स्तर पर प्रमापीकरण किया जाता है, उस समय अध्ययनकर्त्ता तनिक सी अन्तर्दृष्टि द्वारा यह ज्ञात कर सकता है कि प्राप्त सूचनायें किस सीमा तक उपयोगी हैं। इस प्रकार यदि प्राप्त सूचनायें अवलोकन के आधार पर भी सही प्रतीत होती हैं तो निदर्शन की विश्वसनीयता स्पष्ट हो जाती है।

1.12. अपनी प्रगति जांचिए :

(क) निदर्शन को परिभाषित कीजिए।

(ख) निदर्शन के दो मूलभूत आधार बताओ।

(ग) समष्टि व निदर्शन में क्या अन्तर है?

(घ) प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की तीन विशेषताओं का वर्णन करो।

(ड़) निदर्शन प्रविधि की तीन सीमाएं बताओ।

(च) निदर्शन प्रविधि के प्रकारों का वर्णन करो।

(छ) संभावित निदर्शन को परिभाषित करो।

(ज) संभावित निदर्शन के प्रकारों के नाम बताओ।

(झ) असंभावित निदर्शन का वर्णन करो।

(ञ) असंभावित निदर्शन के कितने प्रकार हैं?

(ट) निदर्शन की प्रमुख समस्याएं बताओ।

1.13. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) निदर्शन प्रविधि एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार समग्र समष्टि में से एक निश्चित प्रतिशत व भाग का चुनाव है।

(ख) निदर्शन के आधार :

- सम्पूर्ण जनसंख्या की एकरूपता
- प्रतिनिधि चुनाव की संभावना

(ग) समष्टि/समग्र : वह पूर्ण समूह जिसके विषय में हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

निदर्शन : समग्र में से चुने गए ऐसे 'कुछ' जो कि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है।

(घ) प्रतिधित्वपूर्ण निदर्शन की विशेषताएं :

- समग्र का उचित प्रतिनिधित्व
- अध्ययन विषय के अनुरूप
- सभी पक्षपात से स्वतंत्र

(ङ) निदर्शन प्रविधि की सीमाएं :

- प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव कठिन
- पक्षपात या पूर्वाग्रह की संभावना
- निदर्शन पर कायम रहने की कठिनाई

(च) निदर्शन प्रविधि के प्रकार :

मुख्य रूप से निदर्शन के दो प्रकार हैं :

– संभावित (प्रायिकता) निदर्शन

– असंभावित (अप्रायिकता) निदर्शन

(छ) संभावित निदर्शन :

इस प्रकार के निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई के पास निदर्शन में शामिल होने की संभावना होती है। निदर्शन का चुनाव यांत्रिक यादृच्छीकरण का प्रयोग करते हुए किया जाता है।

(ज) संभावित निदर्शन के निम्न प्रकार हैं :

(1) दैव निदर्शन

(2) स्तरीकृत निदर्शन

(3) बहुस्तरीय निदर्शन

(4) व्यवस्थित निदर्शन

(5) गुच्छ निदर्शन

(झ) असंभावित निदर्शन :

संभावित निदर्शन के विपरीत इसमें समग्र की प्रत्येक इकाई के पास न तो निदर्शन में सम्मिलित होने की संभावना का अनुमान लगाने का कोई तरीका है और न ही इसकी गारंटी की प्रत्येक तत्व को निदर्शन में शामिल होने का अवसर मिलेगा।

(ञ) असंभावित निदर्शन के निम्न प्रकार हैं :

– उद्देश्यपूर्ण निदर्शन

– आकस्मिक निदर्शन

– अभ्यंश निदर्शन

(ट) निदर्शन की प्रमुख समस्याएं

– आकार की समस्या

– पक्षपातपूर्ण निदर्शन की समस्या

– विश्वसनीयता–परीक्षण की समस्या

– सामाजिक–राजनीतिक मानकों के अध्ययन की समस्या

1.14. सारांश :

प्रस्तुत इकाई के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निदर्शन किसी भी अनुसंधान कार्य की आधारशिला है। यह आधारशिला जितनी सुदृढ़ होगी अनुसंधान के परिणाम उतने ही विश्वसनीय एवं परिशुद्ध होंगे। निदर्शन को तभी उपयुक्त माना जा सकता है कि जब सम्पूर्ण समष्टि का सही प्रतिनिधित्व करे। निदर्शन सम्पूर्ण समष्टि का वास्तविक प्रतिनिधि है या नहीं इसकी एक कसौटी यह है कि निदर्शन के स्थान पर यदि सम्पूर्ण समष्टि का अध्ययन किया जाए तो परिणामों में सार्थक अन्तर नहीं आना चाहिए। निदर्शन चुनने की प्रमुख समस्या यह है कि निदर्शन किस प्रकार चुना जाए ताकि वह समष्टि का ठीक प्रतिनिधित्व कर सके और उसमें किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह न हो। हमें सांख्यिकी द्वारा अनेक विधियां उपलब्ध हुई हैं जिनके द्वारा उचित निदर्शन का चयन किया जा सकता है। निदर्शन के चयन तथा इसके प्रयोग में चाहे किसी भी प्रविधि का उपयोग किया जाये, अध्ययनकर्त्ता के वैयक्तिक गुणों के बिना निदर्शन को न तो विश्वसनीय बनाया जा सकता है और न ही इसके द्वारा यथार्थ सूचनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। अनुसंधानकर्त्ता की बौद्धिक ईमानदारी, अध्ययन–विषय का समुचित ज्ञान; समग्र की जानकारी तथा प्रविधियों के उपयोग के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि वे विशेषतायें हैं जिनके आधार पर ही निदर्शन को सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण विधि के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

1.15. मुख्य शब्दावली :

- **निदर्शन** : शोध की वह पद्धति, जिसमें समस्त शोध क्षेत्र से कुछ प्रतिदर्श का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि यह संपूर्ण शोध क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर सके और जो निष्कर्ष प्राप्त हो वो संपूर्ण क्षेत्र के निष्कर्ष से भिन्न न हो।
- **समष्टि** : वह संपूर्ण समूह जिसमें से निदर्शन का चुनाव किया जाता है।

- **संभावित (प्रायिकता) निदर्शन** : समग्र की प्रत्येक इकाई के पास निदर्शन के रूप में चुने जाने की संभावना होती है।
- **असंभावित (अप्रायिकता) निदर्शन** : समग्र की प्रत्येक इकाई के पास निदर्शन में शामिल होने का समान अवसर नहीं होता है।
- **दैव निदर्शन** : समग्र की इकाइयों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जाता है कि चयन प्रक्रिया में उस समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन की समान संभावना रहती है।
- **अभ्यांश निदर्शन** : अभ्यांश या कोटा निदर्शन में यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न तत्व जिस अनुपात में समग्र में पाये जाते हैं, उसी अनुपात में निदर्शन भी आ जाएँ।

1.16. अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) इन प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(1) अनुसंधान में निदर्शन के महत्व का वर्णन करो।

(2) अनुसंधान में निदर्शन की आवश्यकता क्यों होती है?

(3) समष्टि को परिभाषित कीजिए।

(4) दैव निदर्शन का वर्णन करो।

(5) गुच्छ निदर्शन को परिभाषित करो।

(6) अभ्यांश निदर्शन का वर्णन करो।

(ख) इन प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

(1) निदर्शन को परिभाषित करते हुए इसकी अनिवार्य अवधारणाओं का वर्णन करो।

(2) उत्तम या प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की आवश्यक विशेषताएं बताओ।

(3) प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुनाव के चरण व प्रक्रिया का वर्णन करो।

(4) निदर्शन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(5) निदर्शन की प्रमुख समस्याएँ व उनके निदान का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

1.17. आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***

इकाई–2 आँकड़ों का संकलन, आँकड़ों के संकलन की विभिन्न प्रविधियाँ : साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली, निरीक्षण या अवलोकन

इकाई की रूपरेखा :

2.0 परिचय

2.1 अधिगमन उद्देश्य

2.2 संरचना

2.3 आँकड़ों का अर्थ एवं परिभाषा

2.4 आँकड़ों के संकलन का महत्त्व

2.5. आँकड़ों या सूचना के स्वरूप अथवा प्रकार

2.6 प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अंतर

2.7 सूचना या आँकड़ों के स्रोत

2.7.1 प्राथमिक स्रोत

2.7.2 द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत

2.8 जनगणना का महत्त्व

2.9 आँकड़ों के संकलन की प्रविधियाँ

2.10 साक्षात्कार

2.10.1 साक्षात्कार : अर्थ एवं परिभाषा

2.10.2 साक्षात्कार पद्धति की विशेषताएँ

2.10.3 साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य

2.10.4 साक्षात्कार के प्रकार

2.10.5 साक्षात्कार प्रविधि के प्रमुख चरण

2.10.6 एक अच्छे साक्षात्कारकर्त्ता के कार्य तथा गुण

2.10.7 साक्षात्कार की उपयोगिता

2.10.8 साक्षात्कार पद्धति की सीमाएँ अथवा दोष

2.11 अनुसूची

2.11.1 अनुसूची : अर्थ एवं परिभाषा

2.11.2 अनुसूची की विशेषताएँ

2.11.3 अनुसूची के उद्देश्य

2.11.4 अनुसूची के प्रकार

2.11.5 अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया

2.11.6 अनुसूची का भौतिक स्वरूप

2.11.7 अनुसूची की अन्तर्वस्तु

2.11.8 अनुसूची के प्रश्न

2.11.9 अनुसूची की उपयोगिता या महत्त्व

2.11.10 अनुसूची की सीमाएँ

2.12 प्रश्नावली

2.12.1 प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषा

2.12.2 प्रश्नावली की प्रकृति

2.12.3 अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएँ

2.12.4 प्रश्नावली के प्रकार

2.12.5 प्रश्नावली के निर्माण

2.12.6 प्रश्नावली–प्रविधि का महत्त्व व गुण

2.12.7 प्रश्नावली की सीमाएँ

2.12.8 अनुसूची एवं प्रश्नावली में अन्तर

2.13 निरीक्षण या अवलोकन

2.13.1 अर्थ एवं परिभाषा

2.13.2 अवलोकन प्रणाली की विशेषताएँ

2.13.3 सामान्य देखना बनाम वैज्ञानिकता अवलोकन

2.13.4 अवलोकन प्रणाली के गुण अथवा महत्त्व

2.13.5 अवलोकन प्रणाली के अवगुण या दोष

2.13.6 अवलोकन के प्रकार

2.14 अपनी प्रगति जांचिए

2.15 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.16 सारांश

2.17 मुख्य शब्दावली

2.18 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.19 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0. परिचय :

किसी भी शोध कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनुसन्धानकर्त्ता ने अपनी विषयवस्तु के सम्बन्ध में कितनी वास्तविक एवं विश्वसनीय सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्रित किया है, यह सफलता बहुत कुछ सूचना प्राप्त करने के स्रोतों की विश्वसनीयता पर भी निर्भर करती है। ये सूचनाएँ एवं तथ्य कई प्रकार के हो सकते हैं। शोधकर्त्ता को सूचनाओं के स्रोत तथा उनके प्रकार की भली प्रकार जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। किस स्रोत से किस प्रकार की सूचना उसे प्राप्त हो सकती है, इस बात की स्पष्ट जानकारी न होने पर अनुसन्धानकर्त्ता केवल इधर–उधर भटकता ही रहेगा और उसका काफी समय तथा श्रम व्यर्थ चला जाएगा। इसके साथ ही शोधकर्त्ता को आँकड़ों के स्रोतों की विश्वसनीयता का ज्ञान भी होना चाहिए। अतः शोधकर्त्ता को सूचना या तथ्यों के प्रकार और स्रोतों के बारे में पूरी जानकारी होना अति आवश्यक है। इस इकाई के अन्तर्गत आँकड़ों के संकलन, प्रकार व स्रोतों के साथ–साथ आँकड़ों के एकत्रित करने की विभिन्न तकनीकों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

2.1. अधिगमन उद्देश्य :

- अनुसंधान में आँकड़ों की आवश्यकता व महत्व
- आँकड़ों के प्रकार व स्वरूप
- आँकड़ों के विभिन्न स्रोत
- आँकड़ों के संकलन की विभिन्न तकनीकों को जान पायेंगे ।

2.2. संरचना :

अनुसंधान कार्य में निष्कर्ष तक पहुंचने हेतु विभिन्न स्रोतों से संबन्धित आँकड़ों का संकलन किया जाता है, उन्हें क्रमबद्ध व संगठित स्वरूप प्रदान करके निष्कर्षों का सत्यापन किया जाता है। किसी भी विषयवस्तु व आँकड़ों को क्रमबद्ध व संगठित स्वरूप प्रदान करना ही उसका संरचनात्मक ढांचा होता है। प्रस्तुत इकाई का संरचनात्मक ढ़ांचा निम्नलिखित रूप में हैं :

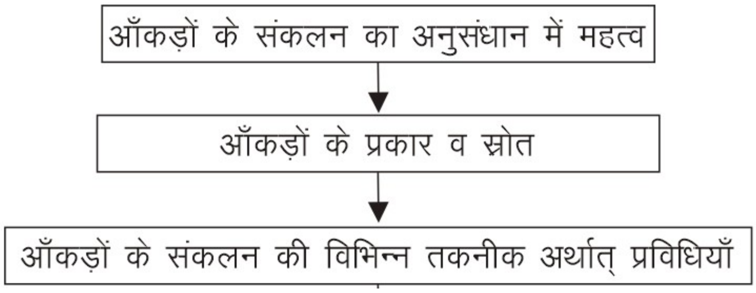

2.3. आँकड़ों का अर्थ एवं परिभाषा

Meaning and definition of Data

सामाजिक शोध की समस्याओं को सुलझाने के लिए सही एवं उचित आँकड़ों की आवश्यकता होती है। आँकड़े वस्तुतः सामाजिक यथार्थ के किसी वर्ग के विषय में तथ्यों के नवीन अभिलेख तैयार करते समय अथवा पूर्व में उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर सूचनाएं प्राप्त करने की एकत्रित की गई सामग्री को कहा जाता है। इस तरह सामाजिक अनुसंधान में क्षेत्रीय अथवा प्रलेखीय आधार पर हम जो भी सामग्री एकत्रित करते हैं, वह आँकड़ा कहलाती है। आँकड़ा शब्द से हमारा तात्पर्य ''प्रत्युत्तरों के अभिलेखन'' से है। साधारण शब्दों में, सामाजिक शोध में क्षेत्रीय या प्रलेखीय आधार पर हम जो भी सामग्री संचय करते हैं, वह आँकड़ा कहलाती है।

2.4 आँकड़ों के संकलन का महत्व

Importance of Data Collection

शोध कार्य के आँकड़ों के संकलन का महत्व निम्नांकित बिन्दुओं से समझा जा सकता है :

(1) अनुसन्धान का आधार (Base of Research) : किसी भी सामाजिक अनुसन्धान का वास्तविक प्रारम्भ आँकड़ों के संकलन से ही आरम्भ होता है। संकलित सामग्री या आँकड़ों का वर्गीकरण और व्याख्या करने से ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। जब कहीं भी किन्हीं तथ्यों की परीक्षा अथवा पुनर्परीक्षा करने की आवश्यकता महसूस की जाती है, तो पुनः नये आँकड़ों को संकलित करना आवश्यक हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि कार्य प्रारम्भ करने से लेकर अन्त तक प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी रूप में सामग्री या आँकड़ों की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और इन्हीं आँकड़ों के द्वारा विषय से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को ज्ञात किया जाता है।

(2) कार्य–कारण सम्बन्ध की खोज (Discovery of Cause and Effect) : सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत–संकलन की एक महत्त्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि संकलित तथ्यों या आँकड़ों के द्वारा ही किसी समस्या अथवा घटना के कारणों और परिणामों को ज्ञात किया जा सकता है। यह एक निश्चित तथ्य है कि प्रत्येक समस्या अथवा घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है जिसे अनुसन्धानकर्त्ता एकत्रित आँकड़ों की सहायता से ही समझ सकता है।

(3) यथार्थ का बोध (Perception of Reality) : आँकड़ों के संकलन के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अध्ययन–समूह अथवा समुदाय के सामान्य जन–जीवन में प्रवेश करना पड़ता है। अतएव यह जीवन की साधारण तथा विशेष दशाओं में उनके स्वाभाविक अथवा वास्तविक रूप से परिचित हो जाता है। उसे आँकड़ों के संकलन के दौरान ही समुदाय के जीवन का सही बोध होने लगता है।

(4) समस्या के निदान में सहायक (Helpful in Problem Solving) : संकलित आँकड़े केवल विभिन्न घटनाओं के बीच कार्य–कारण के सम्बन्ध को स्पष्ट करने में ही सहायक नहीं होते बल्कि इसके आधार पर समस्याओं का समाधान करना भी सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आँकड़ों के संकलन द्वारा यह ज्ञात हो जाये कि छात्र–असन्तोष का मुख्य कारण 'शिक्षा प्रणाली के दोष' और 'शिक्षा के प्रति नियोजनकर्त्ताओं की उदासीनता' है तो सरलता से उन तरीकों को ढूँढा जा सकता है जिनके द्वारा इस समस्या का समाधान हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी समस्या के वास्तविक कारण की खोज कर लेने से उसके समाधान का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार भी ज्ञात किया जा सकता है।

(5) तुलनात्मक अध्ययनों में सहायक (Helpful in Comparative Studies) : संकलन द्वारा विभिन्न घटनाओं तथा अनेक तथ्यों की जानकारी हो जाने पर उनमें परस्पर तुलना भी की जा सकती है। एक ही समय की अनेक परिस्थितियों के अन्तर्गत भी विभिन्न तथ्यों की तुलना की जा सकती है अथवा समयानुसार एक ही समूह की दशाओं में भी तुलना करना सम्भव हो सकता है।

(6) परिवर्तन के अध्ययन में सहायक (Helpful in the Study of Change) : एक ही क्षेत्र में समय–समय पर तथा एक ही समय पर विभिन्न क्षेत्रों में आँकड़ों का संकलन करने से सामयिक परिवर्तनों एवं उनकी प्रकृति का ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ, अनेक समाजों से परिवार–संरचना में भिन्नता तथा विभिन्न पीढ़ियों में भारतीय संयुक्त परिवार में परिवर्तन, आँकड़ों के संकलन मात्र से ही ज्ञात होने लगते हैं।

(7) प्रशासन में महत्त्व (Importance in Administration) : अनेक आँकड़ों की जानकारी, जो सर्वप्रथम संकलन के ही दौरान प्राप्त होती है, विभिन्न सामाजिक, विशेषकर विघटनकारी, समस्याओं को दूर करने में सरकारी प्रशासन के लिए सहायक सिद्ध होती हैं। अधिकाँशतः सरकारी स्तर पर, पुलिस, न्यायालयों, जेलों, अस्पतालों, विद्यालयों तथा स्वास्थ्य और स्थानीय प्रशासन विभागों द्वारा ये सूचनाएँ संकलित की जाती हैं।

(8) नियोजन में आवश्यक (Essential in Planning) : देश का सम्पूर्ण कार्यक्रम प्रारम्भिक छानबीन, सर्वेक्षणों द्वारा प्रस्तुत प्राथमिक सूचनाओं पर आधारित होता है। राष्ट्रीय योजना आयोग स्वयं ही किसी भी परियोजना को लागू करने से पूर्व, सम्बन्धित समस्या के विषय में अनेक आँकड़ों या सूचनाओं द्वारा जानकारी प्राप्त कर लेने में रुचि रखता है और तदनुसार ही विकास कार्यों की रूपरेखा बनाता है।

डॉ. सुरेन्द्र सिंह ने आँकड़ों के संग्रह के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण विचारणीय बातों का उल्लेख किया है। आँकड़ों को उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण बनाने की दिशा में इन बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में आँकड़े तभी उपयोगी हो सकते हैं जब हम निम्नांकित बातों का ध्यान रखें –

1. आँकड़ों को उचित एवं संक्षिप्त होना चाहिए।
2. आँकड़े विश्वसनीय होने चाहिएँ।
3. आँकड़ों को अर्थपूर्ण एवं उपयुक्त होना चाहिए।
4. इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि वस्तुस्थिति तथा पर्यवेक्षित अथवा परिमापित स्थिति के बीच अन्तर कम से कम हो। इस प्रकार के अन्तर के अनेक स्रोत हैं और इन सभी स्रोतों पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।
5. आँकड़ा–संग्रह की योजना लचीली होनी चाहिए तथा इसके अन्तर्गत अनदेखी परिस्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए समुचित परिवर्तन करने की गुंजाइश होनी चाहिए।
6. आँकड़ा–संग्रह की योजना को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।
7. योजना अधिक विस्तृत, जटिल एवं महत्त्वाकांक्षी न होकर सूक्ष्म, सरल एवं प्रायोगिक होनी चाहिए।
8. सम्भावित परिणामों की आशा पहले से ही कर ली जानी चाहिए और आँकड़ा–संग्रह योजना का निर्माण इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए।
9. धन, कर्मचारियों एवं समय सम्बन्धी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए ही योजना का निर्माण किया जाना चाहिए।
10. प्रयासों की पुनरावृत्ति तथा अन्य अनावश्यक बर्बादी को यथासम्भव नियन्त्रित किया जाना चाहिए।
11. सूचना एकत्रित करने का समय उत्तरदाताओं के लिए सुविधाजनक होना चाहिए।

12. आँकड़ा–संग्रह की कार्य–रीति का पूर्व–परीक्षण किया जाना चाहिए, ताकि त्रुटियों के विभिन्न स्रोतों एवं प्रायोगिकता की समस्याओं का पता चल सके और इन्हें दूर किया जा सके।

13. सौहार्दपूर्ण जनसम्बन्धों की स्थापना करने की दिशा में सभी सम्भव प्रयास किए जाने चाहिएँ क्योंकि इसके कारण अध्ययन की लागत कम हो सकती है और अधिक अच्छे प्रतिदान प्राप्त हो सकते हैं।

14. अनुसन्धान उपकरण प्रायोगिक, स्पष्ट, आवश्यक निर्देशों से युक्त तथा आकर्षक होने चाहिएँ।

15. यदि उत्तरदाताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचना की प्रकृति ऐसी है कि इससे किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार से उन्हें क्षति पहुँच सकती हो तो अनामता की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिएँ किन्तु अनामता की सबसे बड़ी कमी यह है कि बाद में पुनः अध्ययन की आवश्यकता पड़ी तो ऐसा करना असम्भव होगा।

16. अनुसन्धान उपकरणों के अन्तर्गत प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द एवं वाक्यांश सरलतापूर्वक बोधगम्य किन्तु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों एवं अनुशंसयों के अनुकूल होने चाहिएँ।

17. उत्तरदाताओं को सूचना प्रदान करने तथा साक्षात्कारकर्त्ताओं एवं पर्यवेक्षकों की सूचना एकत्रित करने के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं विस्तृत निर्देश प्रदान किए जाने चाहिएँ।

18. संसाधन क्षमता को बढ़ाने के लिए रूपरेखा इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए कि इसके अन्तर्गत संकेतीकरण एवं छिद्रण की समुचित व्यवस्था हो।

19. आँकड़ों के प्रभावपूर्ण संग्रह के लिए सम्बन्धित कर्मचारियों के समुचित चुनाव एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। उनके कार्य के गुणात्मक एवं परिमाणात्मक नियन्त्रण की समुचित व्यवस्था भी आवश्यक है।

20. कर्मचारियों को अपने परिचय–पत्र साथ ले जाने चाहिएँ।

21. संगृहीत सूचना को प्रतिवेदन के अन्तर्गत इस प्रकार प्रयोग में लाया जाना चाहिए कि उत्तरदाताओं का परिचय प्राप्त न हो सके।

2.5. आँकड़ों या सूचना के स्वरूप अथवा प्रकार

(Forms or Types of Data or Informations)

आँकड़ों के सामान्य विवेचना के बाद अब हम आँकड़ों के स्वरूप अथवा प्रकार की विवेचना करेंगे। किसी भी अनुसन्धान के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आँकड़ों के

कितने स्वरूप हैं अथवा वे कितने प्रकार के हैं एवं कैसे हैं? अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अनुसन्धान कार्य का प्रारम्भ करने से पहले इस बात की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए कि वह किस प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग अपने अनुसन्धान के दौरान करेगा। सामान्यतः आँकड़ों के दो प्रकारों का उल्लेख दो आधारों पर किया जाता है –

(1) प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nature).

(2) मौलिकता के आधार पर (On the Basis of Originality).

प्रकृति के आधार पर आँकड़ों को पुनः दो भागों में विभाजित किया जाता है :

(1) गणनात्मक आँकड़े (Quantitative Datas).

(2) गुणात्मक आँकड़े (Qualitative Datas).

(1) गणनात्मक आँकड़े सामान्यतः उन्हें कहा जाता है जिसमें तथ्य की प्रकृति संख्यात्मक होती है, और जो गणना के योग्य हों, जैसे – 1, 2, 10000, 1274 आदि।

(2) गुणात्मक आँकड़े उन्हें कहा जाता है जो विश्लेषणात्मक एवं गुण सम्बन्धी पक्ष से सम्बन्धित हों। यह तथ्य किसी विशेषता को स्पष्ट करता है।

मौलिकता के आधार पर भी आँकड़ों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है। आँकड़ों के प्रकारों या स्वरूपों का यह विभाजन सामाजिक विज्ञानों से अधिक मान्य है –

(1) प्राथमिक आँकड़े (Primary Datas),

(2) द्वितीयक आँकड़े (Secondary Datas).

प्राथमिक तथ्य या सूचनाएँ

(Primary Data of Information)

प्राथमिक तथ्य वे मौलिक सूचनाएँ या आँकड़े होते हैं जो कि एक अनुसन्धानकर्त्ता वास्तविक अध्ययन–स्थल (Field) में जाकर विषय या समस्या से सम्बन्धित जीवित व्यक्तियों से साक्षात्कार (Interview) करके अथवा अनुसूची या/और प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है अथवा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा प्राप्त करता है। प्राथमिक तथ्य प्राथमिक इस अर्थ में होते हैं कि उन्हें अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन–उपकरणों की सहायता से प्रथम बार एकत्रित करता है अथवा निरीक्षण करता है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने के दो प्रमुख स्रोत (Source) हो सकते हैं – एक तो जीवित व्यक्तियों से और दूसरा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा। प्रथम स्रोत के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो कि अध्ययन विषय या समस्या के सम्बन्ध में ज्ञान रखते हैं

अथवा दीर्घ समय से उसके घनिष्ठ सम्पर्क में हैं। श्री पामर (Palmer) के अनुसार ऐसे व्यक्ति न केवल एक विषय की विद्यमान अवस्थाओं को बताने की योग्यता रखते हैं अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्वपूर्ण चरण व निरीक्षण योग्य झुकावों (trends) के सम्बन्ध में भी संकेत कर सकते हैं। यदि इन व्यक्तियों के चुनाव में सावधानी बरती जाए और विभिन्न पेशों व व्यापार में लगे व्यक्तियों, उस क्षेत्र के पुराने निवासियों, सामुदायिक नेताओं आदि से सूचनाएँ एकत्रित की जाएँ तो वे अध्ययन–कार्य के महत्वपूर्ण अंग बन सकते हैं। प्राथमिक तथ्यों का दूसरा स्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण है। इस प्रकार के निरीक्षणों के द्वारा एक समुदाय या समूह के जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को एकत्रित किया जा सकता है यदि निरीक्षण के दौरान अनुसन्धानकर्त्ता ने पक्षपात या मिथ्या–झुकाव (Bias) का कोई चश्मा न पहन रखा हो। व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों को एकत्रित करने के लिए प्रत्यक्ष निरीक्षण एक अति उत्तम स्रोत है। सहभागी निरीक्षण के द्वारा तो सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित अति आन्तरिक व गुप्त बातों को भी जाना जा सकता है। इस स्रोतों के विषय में हम आगे विस्तारपूर्वक विवेचना करेंगे।

द्वितीयक तथ्य (Secondary Data) :

द्वितीयक तथ्य वे सूचनाएँ और/अथवा आँकड़े हैं जो अनुसन्धानकर्त्ता को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों (Ducuments), रिपोर्ट, सांख्यिकी (Statistics), पाण्डुलिपि, पत्र–डायरी आदि से प्राप्त होते हैं। द्वितीयक तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि ये तथ्य, सूचनाएँ या आँकड़े स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता अपने कार्य में उपयोग करने के लिए एकत्रित कर लेता है। द्वितीयक तथ्यों के भी दो प्रमुख स्रोत होते हैं – एक तो व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Documents) जैसे आत्मकथा, डायरी, पत्र आदि और दूसरा सार्वजनिक प्रलेख (Public Documents) जैसे रिकार्ड, पुस्तकें, जनगणना रिपोर्ट विशिष्ट कमेटियों की रिपोर्ट, समाचारपत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित सूचनाएँ आदि। श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) के अनुसार शिलालेख, स्तूप विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थिपिंजर, भौतिक वस्तु आदि ऐतिहासिक स्रोत से प्राप्त तथ्य या सूचनाएँ भी द्वितीयक तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं। इन समस्त स्रोतों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित विवेचना से स्वतः ही हो सकेगा।

2.6 प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अन्तर

(Difference Between Primary & Secondary Data)

प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों की प्रकृति के विवेचन से स्पष्ट होता है कि इनके बीच कुछ मौलिक भिन्नताएँ हैं। इन भिन्नताओं को संक्षेप में निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. प्राथमिक आँकड़े एक कच्चे माल की तरह हैं जिसके आधार पर अध्ययन को एक स्वरूप दिया जा सकता है। दूसरी ओर द्वितीयक आँकड़े एक तैयार माल के समान हैं, जिसका उपयोग तो किया जा सकता है लेकिन आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

2. प्राथमिक आँकड़े मौलिक आँकड़े हैं। इसका कारण यह है कि अध्ययनकर्त्ता द्वारा इनका संकलन स्वयं करने के कारण उसकी प्रमाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत द्वितीयक आँकड़ों में मौलिकता का अभाव इस कारण होता है कि इसका पहले से ही विश्लेषण और निर्वचन किया जा चुका होता है। किसी विशेष तथ्य की जिस रूप में विवेचना की गयी होती है, अध्ययनकर्त्ता को उनका प्रयोग उसी अर्थ में करना पड़ता है।

3. प्राथमिक आँकड़ों के संकलन में अधिक समय, धन और श्रम की आवश्यकता होती है जबकि द्वितीयक सामग्री को सीमित साधनों के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि द्वितीयक सामग्री तुलनात्मक रूप से मितव्ययी होती है।

4. प्राथमिक आँकड़ों के संकलन के लिए जिन अध्ययन प्रविधियों का उपयोग करना आवश्यक होता है, उन प्रविधियों के द्वारा द्वितीयक सामग्री एकत्रित नहीं की जा सकती।

5. प्राथमिक आँकड़ों में द्वितीयक आँकड़ों की तुलना में सत्यापन का गुण अधिक होता है। इसका कारण यह है कि यदि एक बार संकलित किये गये प्राथमिक आँकड़े अध्ययन के दौरान दोषपूर्ण दिखायी देते हैं तो क्षेत्र में जाकर उनका पुनः संकलन किया जा सकता है। द्वितीयक आँकड़े जिस रूप में हैं, उनका उसी रूप में उपयोग करना आवश्यक होता है।

6. प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़ों का मुख्य अन्तर समय–कारक से सम्बन्धित है। इसका तात्पर्य है कि कोई विशेष तथ्य एक समय में एक व्यक्ति के लिए प्राथमिक हो सकता है, जबकि कुछ समय के बाद वही तथ्य दूसरे अध्ययनकर्त्ता के लिए द्वितीयक बन जाता है। उदाहरण के लिए, सन् 1981 में जनगणना सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त आँकड़े भारत के रजिस्ट्रार

जनरल के लिए प्राथमिक आँकड़ों के रूप में होंगे जबकि अन्य अध्ययनकर्त्ताओं के लिए यही आँकड़े कुछ समय पश्चात् द्वितीयक आँकड़े बन जायेंगे।

2.7 सूचना या आँकड़ों के स्रोत

(Sources of Information Data)

आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए अनेक अलग–अलग स्रोतों का प्रयोग किया जाता है। आँकड़े एकत्रित करने के लिए साधन को आँकड़ों के संकलन का स्रोत माना जाता है। सामान्यतः यह अनुसन्धानकर्त्ता पर निर्भर है कि वह किन–किन स्रोतों से अपनी समस्या से सम्बन्धित सामग्री का संकलन करे। अनुसन्धान की आवश्यकता एवं अनुसन्धान के उद्देश्यों पर भी यह निर्भर करता है कि कौन से स्रोत आँकड़ों के संकलन के लिए आवश्यक हैं? आँकड़ों के संकलन के स्रोत जितने अधिक विश्वसनीय एवं सुलभ होंगे, सामग्री के संकलन में उतनी ही अधिक सफलता मिलेगी। मुख्यतः आँकड़ों के संकलन के दो प्रमुख स्रोत माने जाते हैं :

1. क्षेत्रीय स्रोत (Field Sources),
2. प्रलेखीय या दस्तावेजी स्रोत (Document Sources).

1. क्षेत्रीय स्रोत : इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अध्ययन–क्षेत्र में कार्य करना पड़ता है और उसी दौरान अवलोकन, प्रश्नावली, प्रश्न–अनुसूची एवं साक्षात्कार आदि प्रविधियों के माध्यम से अपने अध्ययन–विषय से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना होता है। इसके अन्तर्गत जीवित व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जिन्हें लम्बी अवधि के दौरान सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों के विषय में पर्याप्त ज्ञान होता है एवं जिनका सामाजिक परिस्थितियों से घनिष्ट सम्पर्क रह चुका होता है। ये व्यक्ति न केवल वर्तमान परिस्थितियों का यथार्थ विवरण प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं वरन् ये अवलोकन योग्य प्रवृत्तियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं का समुचित वर्णन प्रस्तुत करने की भी क्षमता रखते हैं। पी.वी. यंग ने क्षेत्रीय स्रोत की इकाइयों–व्यक्तियों को वैयक्तिक स्रोत या प्रत्यक्ष स्रोत के नाम से व्यक्त किया है।

2. प्रलेखीय या दस्तावेजी स्रोत : आँकड़ों के संग्रह में प्रलेखीय या दस्तावेजी स्रोत वे हैं जो प्रकाशित एवं अप्रकाशित दस्तावेजों का प्रतिवेदनों, सांख्यिकी, हस्तलेखों, पत्रों, रपटों, दैनन्दिनियों इत्यादि के रूप में उपलब्ध होते हैं। प्रलेखीय स्रोतों का विभाजन प्राथमिक एवं द्वितीयक की श्रेणियों में भी किया जाता है। प्राथमिक प्रलेखीय स्रोत वे हैं जो प्रथम बार

एकत्रित किये गये आँकड़ों को प्रदान करते हैं तथा जिनके संकलन एवं प्रचारण का उत्तरदायित्व उसी व्यक्ति के अधिकार में होता है जिसने इन्हें मौलिक रूप से एकत्रित किया था। द्वितीयक प्रलेखीय स्रोत वे हैं जो हमें मौलिक स्रोतों से संकलन किये गये आँकड़ों को प्रदान करते हैं तथा जिनके प्रचारण के लिए अधिकार रखने वाला व्यक्ति पहली बार आँकड़ों के संग्रह को नियन्त्रित करने वाले व्यक्ति से भिन्न होता है। श्रीमती पी. वी. यंग के अनुसार भी "सामान्यतः स्रोतों को क्षेत्रीय एवं प्रलेखीय स्रोतों में विभाजित किया जा सकता है।" जार्ज लुण्डबर्ग ने आँकड़ों के दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया है जो निम्नांकित हैं :

1. **ऐतिहासिक स्रोत (Historical Sources) :** इनमें प्रलेख, शिलालेख, खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ एवं भूतत्वीय स्तर इत्यादि सम्मिलित हैं।

2. **क्षेत्रीय स्रोत (Field Sources) :** इसमें जीवित व्यक्तियों से प्राप्त सूचनायें एवं क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन शामिल है।

प्रोफेसर बेगले (Prof. Begley) के अनुसार दो प्रमुख स्रोत ये हैं :

1. **प्राथमिक स्रोत (Primary Sources) :** इनके अन्तर्गत समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति व प्रत्यक्ष निरीक्षण आते हैं।

2. **द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources) :** इनके अन्तर्गत सरकारी व गैर–सरकारी, संस्थाओं या अप्रकाशित प्रलेखों आदि को सम्मिलित किया जाता है। यदि हम उपर्युक्त आँकड़ों के स्रोतों को अच्छी प्रकार वैज्ञानिक रूप से विभाजित करें तो केवल तीन ही ऐसे तरीके हैं जिनसे हम सामाजिक अन्वेषण के लिए आँकड़ों को संकलित कर सकते हैं। यहाँ यह याद रहे कि सामाजिक अन्वेषण का मुख्य विषय मानव या मानव समूह है। इसलिए मानव को हम अपनी सुविधा या आवश्यकता के अनुसार नियन्त्रित नहीं कर सकते हैं। इसलिए हमें उसके बारे में सूचना केवल तीन प्रकार से ही प्राप्त हो सकती है –

(1) हम उससे सीधे प्रश्न करें, बातचीत करें और विभिन्न समस्याओं व विषयों पर उसकी प्रतिक्रियायें जानें।

(2) हम व्यक्ति समूह या संगठन के आचार–व्यवहारों का निरीक्षण करें और उन आचार–व्यवहारों से जो प्रभाव पड़ रहा है उसका अवलोकन कर उसका आँकड़ों के रूप में संकलन करें।

(3) हम अन्वेषण कार्य के समय उस दस्तावेज या आँकड़ों का जो किसी अन्य कार्य या लक्ष्य के लिए एकत्रित किये गये थे, उपयोग अपने अन्वेषण कार्य की आवश्यकता अनुसार करें।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों बातों का ध्यान में रखकर मौटे तौर पर आँकड़ों के दो प्रमुख स्रोत हमें दिखाई देते हैं जो निम्नाकित हैं :

1. प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)
2. द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

इन दोनों स्रोतों को मोटे तौर पर दिये गये चार्ट द्वारा समझा जा सकता है। यहाँ हम दोनों स्रोतों की विस्तार से विवेचना करेंगे –

2.7.1 प्राथमिक स्रोत

(Primary Sources)

प्राथमिक स्रोत सामान्यतः उन्हें कहा जाता है कि जिनसे अध्ययनकर्त्ता प्रथम बार तथ्यों अथवा विभिन्न जानकारी को संकलित करता है। इन्हें ही सामान्यतः क्षेत्रीय स्रोत भी कह दिया जाता है। प्राथमिक स्रोत मुख्यतः प्राथमिक आँकड़ों के एकत्रीकरण की विधि है। पी.वी. यंग ने लिखा है "प्राथमिक सामग्री का तात्पर्य उन सभी मौलिक सूचनाओं अथवा आँकड़ों से है जिन्हें स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राप्त करता है।" यही कारण है कि प्राथमिक सामग्री को हम आधार सामग्री प्रथम स्तरीय सामग्री तथा क्षेत्रीय सामग्री आदि नामों से भी सम्बोधित करते हैं प्राथमिक स्रोत को परिभाषित करते हुए पी.एच. मान (P.H. Mann) ने 'मैथ्ड्स ऑफ सोशियोलॉजिकल एन्क्वायरी' में लिखा है कि "प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम– स्तर पर संकलन की गयी सामग्री प्रदान करते हैं, अर्थात् जिन लोगों ने उन्हें एकत्रित किया है उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री का मौलिक स्वरूप है।" हमारे दैनिक जीवन की सामान्य घटनाएँ, सम्बन्धित व्यक्ति, उनके द्वारा बताये गये विवरण इत्यादि तथा उनसे इन सूचनाओं को प्राप्त करने हेतु विभिन्न विधियों के अन्तर्गत आयोजित कार्यक्रम, प्राथमिक स्रोतों में सम्मिलित किये जाते हैं।

आर. ई. चढ़ढ़ाक ने 'प्रिंसिपल्स एण्ड मैथ्ड्स ऑफ स्टेटिस्क्सि' में लिखा है कि प्राथमिक स्रोत वे होते हैं जो प्रथम बार एकत्रित किये गये आँकड़ों को प्रदान करते हैं तथा जिनके संकलन एवं प्रचारण का उत्तरदायित्व उसी व्यक्ति के अधिकार में होता है जिसने इसे मौलिक रूप से एकत्रित किया है।"

इस प्रकार प्राथमिक तथ्य सामग्री या स्रोत यह है जिसे शोधकर्त्ता अपने विशिष्ट उद्देश्य से अन्वेषण समस्या के समाधान के आगे प्राथमिक रूप से संकलित करता है।

प्राथमिक स्रोतों के प्रकार (Types of Primary Sources) प्राथमिक स्रोत सामान्यतः दो प्रकार के हो सकते हैं –

1. प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत (Direct Primary Sources).
2. अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत (Indirect Primary Sources).

1. प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत या तो अध्ययनकर्त्ता और सामाजिक घटना दोनों एक–दूसरे के सामने उपस्थित होते हैं, या अध्ययनकर्त्ता तथा सूचनादाता आमने–सामने की स्थिति में होते हैं।

2. अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत यद्यपि सूचनाएँ तो प्रथम स्तर पर ही संकलित होती हैं तथापि अध्ययनकर्त्ता एवं सूचनादाता भौतिक रूप से एक–दूसरे के आमने–सामने की स्थिति में नहीं होते।

यहाँ हम इन दोनों प्रकार के स्रोतों की विस्तार से विवेचना करेंगे :

1. प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत : प्रत्यक्ष स्रोत सामान्यतः वे होते हैं जिनमें अनुसन्धानकर्त्ता या तो मूर्त घटनाओं को स्वयं अपने सम्मुख घटित होते हुए देखते हैं अथवा अध्ययनकर्त्ता एवं सूचनादाता की आमने–सामने की स्थिति होती है। अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं घटनास्थल पर जाकर अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित जानकारी को अवलोकित एवं एकत्रित करता है। पी.एच. मान के अनुसार, "सामाजिक अन्तःक्रिया में अध्ययनकर्त्ता के लिए देखना और सुनना, दो प्रमुख कार्य हैं।"

प्रत्येक प्राथमिक स्रोत को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. अवलोकन (Observation),
2. साक्षात्कार या मौखिक छानबीन (Interview or Oral Inquiry).

1. अवलोकन : इसमें आँखों का प्रत्यक्ष प्रयोग किया जाता है तथा अध्ययनकर्त्ता स्वयं ही घटनास्थल पर उपस्थित रहता है। यह घटनाओं अथवा कार्यक्रमों में किसी सीमा तक स्वयं भाग भी ले सकता है, अथवा केवल एक दर्शक मात्र के रूप में भी बना रह सकता है। यह अवलोकन तीन प्रकार का होता है –

(अ) **सहभागी अवलोकन (Participant Observation) :** इसमें अध्ययनकर्त्ता स्वयं उस घटना में सम्मिलित होकर पूर्णतया भाग लेता है तथा उस स्थिति में अपने अन्य साथियों जैसा ही आचरण एवं व्यवहार करता है, वहाँ वह अन्य भागीदारों के ही समान होता है।

(ब) **अर्द्ध–सहभागी अवलोकन (Quasi-Participant Observation) :** इसमें अवलोकनकर्त्ता पूर्णतया भागीदार न बनकर, आवश्यकतानुसार कुछ सीमा तक स्वयं भी सम्मिलित हो जाता है तथा कुछ दशाओं में वह अपने को पृथक् रखता है ताकि वह अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को समझ सके।

(स) **असहभागी अवलोकन (Non-Participant Observation) :** इसमें सर्वेक्षणकर्त्ता घटनाओं अथवा कार्यक्रमों में स्वयं किसी भी स्तर पर अथवा किसी भी सीमा तक सम्मिलित नहीं होता है, बल्कि उसकी केवल एक परिचित अथवा अज्ञात दर्शक की ही स्थिति बनी रहती है।

2. साक्षात्कार एवं मौखिक छानबीन : ऐसी प्रघटनाओं के अध्ययन में जहाँ अवलोकन पद्धति भी उपयुक्त नहीं होती है वहाँ ऐसी समस्याओं के प्रति प्राथमिक सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता एवं उत्तरदाता के आमने–सामने के सम्बन्धों पर आधारित विधि द्वारा बातचीत करके जानकारी एकत्रित की जाती है एवं अनेक प्रकार के आँकड़ों का एकत्रीकरण होता है। यह सूचना सामान्यतः साक्षात्कार एवं अनुसूची दो विधियों से प्राप्त की जाती है।

(क) **साक्षात्कार (Interview) :** यह प्राथमिक सूचना प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत है। इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं स्थानीय लोगों से सम्पर्क स्थापित करके बातचीत द्वारा सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त करता है। चूँकि स्थानीय लोगों का स्थानीय समस्याओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है तथा समस्या से सम्बन्धित अन्य स्रोतों का भी ज्ञान होता है, अतः उनसे निजी स्तर पर वार्तालाप द्वारा विश्वसनीय व लाभप्रद सामग्री प्राप्त की जा सकती है। यदि किसी ऐतिहासिक स्थल के बारे में जानकारी प्राप्त करनी हो तो अनुसन्धानकर्त्ता बुजुर्गों, स्थानीय–जानकारों, सम्बन्धित पुजारियों, व भोपों या मठाधीशों से साक्षात्कार द्वारा प्रथम स्तर की जानकारी प्राप्त कर सकता है। हाँ, अनुसन्धानकर्त्ता को यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि यदि व्यक्ति साक्षात्कार स्वीकार करने से इंकार करता है तो उस पर इस सम्बन्ध में दबाव नहीं डालना चाहिए क्योंकि वह बिना दिलचस्पी के परेशान होकर

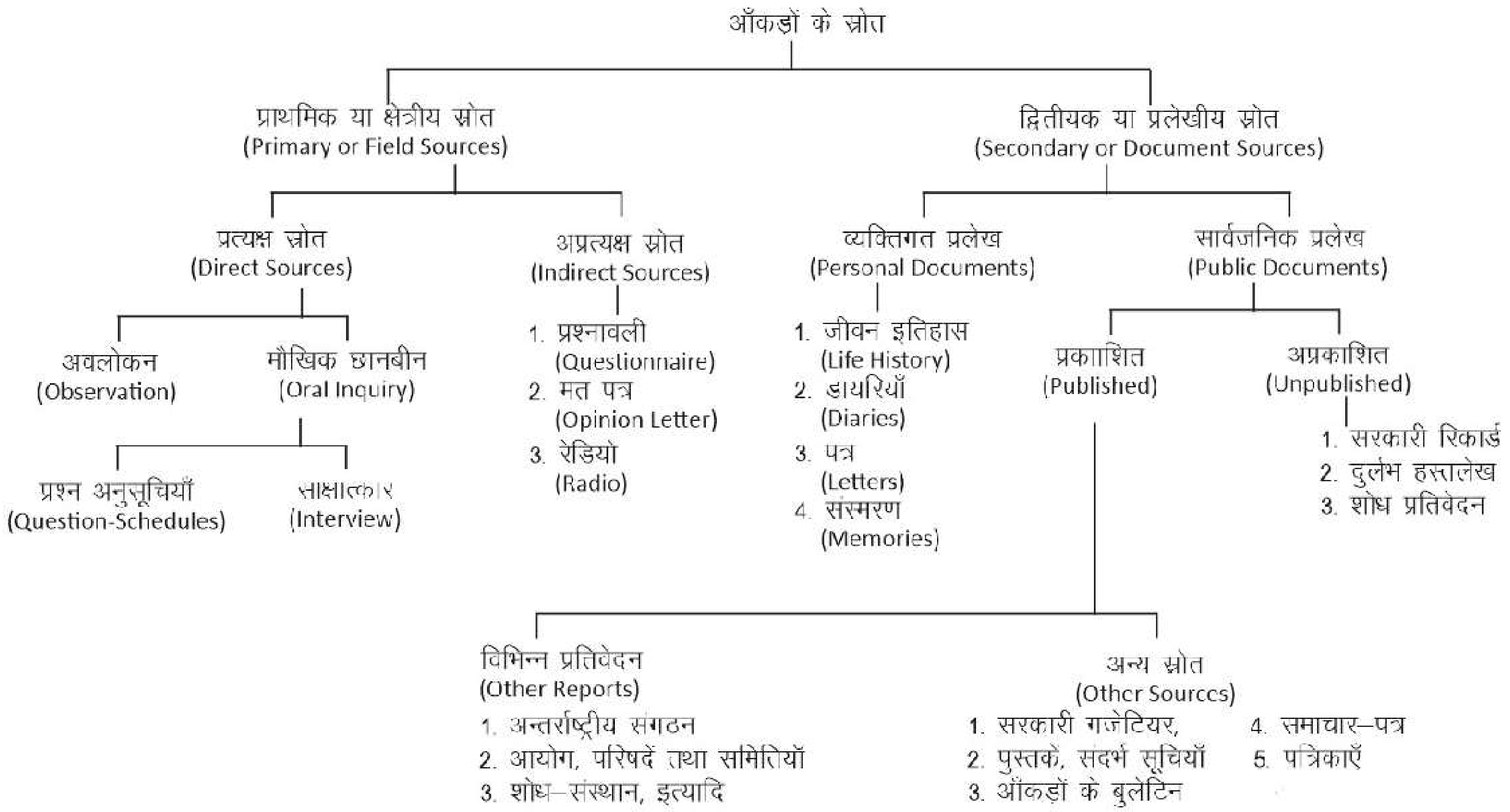
आँकड़ों के स्रोत
प्राथमिक या क्षेत्रीय स्रोत
(Primary or Field Sources)
द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत
(Secondary or Document Sources)
प्रत्यक्ष स्रोत
(Direct Sources)
अप्रत्यक्ष स्रोत
(Indirect Sources)
व्यक्तिगत प्रलेख
(Personal Documents)
सार्वजनिक प्रलेख
(Public Documents)
अवलोकन
(Observation)
मौखिक छानबीन
(Oral Inquiry)
प्रश्न अनुसूचियाँ
(Question-Schedules)
साक्षात्कार
(Interview)
1. प्रश्नावली
(Questionnaire)
2. मत पत्र
(Opinion Letter)
3. रेडियो
(Radio)
1. जीवन इतिहास
(Life History)
2. डायरियाँ
(Diaries)
3. पत्र
(Letters)
4. संस्मरण
(Memories)
प्रकाशित
(Published)
अप्रकाशित
(Unpublished)
1. सरकारी रिकार्ड
2. दुर्लभ हस्तलेख
3. शोध प्रतिवेदन
विभिन्न प्रतिवेदन
(Other Reports)
1. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन
2. आयोग, परिषदें तथा समितियॉं
3. शोध–संस्थान, इत्यादि
अन्य स्रोत
(Other Sources)
1. सरकारी गजेटियर,
2. पुस्तके, संदर्भ सूचियॉं
3. ऑंकड़ों के बुलेटिन
4. समाचार–पत्र
5. पत्रिकाएँ

व संगतपूर्ण जानकारी नहीं देगा। अतः स्थान, परिस्थितियाँ, समुदाय के लोगों की प्रकृति इत्यादि को ध्यान में रखते हुए ही उसे इस पद्धति को अपनाना चाहिए।

(ख) प्रश्न अनुसूचियाँ (Interview Schedules) : अनुसूची में प्रश्न तथा खाली सारणियाँ दी हुई होती हैं। अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं सूचनादाताओं के पास जाकर उनसे प्रश्न पूछकर उत्तर अनुसूचियों में भर देता है। अनुसूची का उद्देश्य सूचनादाताओं से उत्तर पाकर, अनुसन्धान में वैषयिकता लाना है। यह पद्धति बड़ी ही लाभप्रद व उपयोगी है। इसमें प्रश्नों को तोड़–मरोड़कर नहीं पूछा जा सकता। प्रश्नों का क्रम एकसा रहता है। प्रश्नों के लिखित रूप में होने के कारण अनुसन्धानकर्त्ता को आवश्यक रूप से इन्हें याद नहीं करना पड़ता है, अन्यथा वह कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना भूल भी सकता है। साक्षात्कार की विधि बड़ी जटिल–सी लगती है। उत्तरदाता प्रत्यक्ष रूप में पूछे गये प्रश्नों का जवाब देने से इन्कार कर सकता है या वह मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित हो जाता है। इस प्रकार के दोष अनुसूची पद्धति में नहीं पाए जाते हैं। अनुसूचियों से प्राप्त सूचना निष्पक्ष होने के कारण बड़ी उपयोगी रहती है। वह स्रोत तभी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जब अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत न हो। इस स्रोत द्वारा अनुसन्धानकर्त्ताओं ने बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की है। यह स्रोत काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। इसके द्वारा अशिक्षित लोगों से भी सूचना प्राप्त करने में कठिनाई नहीं रहती है, कुछ स्थानीय भाषा के कारण थोड़ी कठिनाई अवश्य आ सकती है जिसका निवारण वहाँ के स्थानीय पढ़े–लिखे लोगों के द्वारा किया जा सकता है।

2. अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत : प्राथमिक अप्रत्यक्ष स्रोत मुख्यतः वे होते हैं जिनमें सूचनाएं तो प्राथमिक स्तर पर प्राथमिक रूप से ही प्राप्त की जाती हैं लेकिन इसमें अध्ययनकर्त्ता का सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता। अप्रत्यक्ष स्रोतों में प्रमुखतः प्रश्नावलियाँ, दूरभाष, साक्षात्कार, पैनल पद्धति, रेडियो अपील, आदि सम्मिलित होती हैं। मेलड्रिड पार्टिन ने अप्रत्यक्ष स्रोत के अन्तर्गत तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया है –

1. रेडियो अपील (Radio Appeal),
2. दूरभाष साक्षात्कार (Telephone Interview),
3. दलीय पद्धति (Panel Technique),

यहाँ हम प्रमुख अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोतों की विवेचना करेंगे।

(क) प्रश्नावली (Questionnaire) : अनुसन्धानकर्त्ता विषय से सम्बन्धित जानकारी प्रश्नावली द्वारा सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। जब अनुसन्धान का क्षेत्र व्यापक होता है अथवा सूचनादाता दूर–दूर बिखरे होते हैं, ऐसी स्थिति में प्रश्नों की एक सूची डाक द्वारा उनके पास पहुँचा दी जाती है। सूचनादाता उस प्रश्नावली को भरकर अभीष्ट जानकारी अनुसन्धानकर्त्ता को देता है। यह विधि उन अनुसन्धानों में तो और भी लाभदायक है, जहाँ सूचना को बार–बार प्राप्त करना होता है। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचना में डाक–खर्च व पहले की गई छपाई के अतिरिक्त कोई अधिक व्यय नहीं होता है। यह स्रोत तभी लाभप्रद हो सकता है जबकि उत्तरदाता पढ़े–लिखे हों व उनमें सहयोग की भावना हो, अन्यथा प्रश्नों के जवाब उनसे न तो दिए जा सकते हैं और न समय पर प्रश्नों के उत्तर ही मिल पाते हैं। इसका प्रयोग गम्भीर व महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानों में नहीं किया जाता है क्योंकि प्रश्नावलियों द्वारा सूचना भ्रमपूर्ण व असत्य हो सकती है। हमारे देश में यह स्रोत अधिक प्रमाणिक सिद्ध नहीं हो पाया है।

(ख) दूरभाष साक्षात्कार (Telephone Interview) : सूचना संकलन का यह नवीन अप्रत्यक्ष स्रोत व्यक्तिगत साक्षात्कार के विपरीत तथा प्रकृति में उससे पर्याप्त रूप से भिन्न है। इन साक्षात्कारों को अधिकाँशतः व्यापारिक विज्ञापनों के विषय में, उपभोक्ताओं से उनकी विचारधारा सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इनमें अध्ययनकर्त्ता केवल दूरभाष के ही माध्यम से अपने सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करता है। यह स्रोत क्षेत्रीय भ्रमण तथा व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न व्यक्तियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने की अपेक्षा अधिक सरल माना जाता है। यह विधि रेडियो अपील से इस प्रकार भिन्न है कि इसमें रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रमों के श्रोताओं से दूरभाष या पत्र–व्यवहार द्वारा सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं।

(ग) दलीय पद्धति (Panel Technique) : किसी सर्वेक्षण के लिए विशाल समूह से कम सम्पर्क स्थापित कर पाने के दोष को दूर करने के लिए आजकल इने–गिने सूचनादाताओं के विशेष दल स्थापित कर दिए जाते हैं, इनमें सम्मिलित किए व्यक्ति सामान्य सूचनादाताओं के प्रतिनिधि के रूप में माने जा सकते हैं जो विशेष प्रकृति की जनता की विचारधारा, मनोवृत्ति अथवा रुचि इत्यादि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं। ये सूचनादाता उस समूह में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अध्ययनकर्त्ता समय–समय पर उनसे ही अनेक बार सम्पर्क स्थापित करके समूह की सामान्य प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है।

उपभोक्ता समूह से प्रायः डायरी लेख रखने को कहा जाता है। प्रायः स्त्रियों तथा बालकों के दल बनाए जाते हैं क्योंकि वे नवीन प्रचलित वस्तुओं के विषयों में अपनी विचारधाराओं से अधिक सन्तोषजनक रीति से सूचित कर सकते हैं। यह पद्धति व्यक्तिगत सम्पर्क की अपेक्षा दलीय सम्पर्क पर अधिक बल देती है। इसे शीघ्र घटित होने वाली परिवर्तन प्रवृत्तियों को समझने तथा समूह की समय–समय पर होने वाली प्रतिक्रिया को समझने हेतु प्रयोग किया जाता है।

(घ) रेडियो अपील (Radio Appeal) : सूचना प्रसारण का एक अच्छा साधन रेडियो है। इसके द्वारा कई प्रकार के कार्यक्रम समय–समय पर प्रसारित किए जाते हैं जो श्रोताओं एवं दिलचस्पी लेने वाले विभिन्न व्यवसाय के लोगों को आकर्षित करते हैं। इससे रेडियो श्रोता अध्ययनकर्त्ता को सम्बन्धित जानकारी दे सकते हैं। परन्तु यह स्रोत विश्वसनीय नहीं है क्योंकि श्रोता जो अपनी राय पत्रों द्वारा भेजते हैं, उनमें कई अनर्गल बातें होती हैं।

प्राथमिक स्रोतों के गुण (Merits of Primary Sources) : प्राथमिक स्रोत अनेक दृष्टिकोणों से सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण के क्षेत्र में अत्यधिक उपयोगी माने जाते हैं। वे निम्नांकित कारण हैं जिनके होने से प्राथमिक स्रोत अधिक उपयुक्त माने जाते हैं :

1. विश्वसनीयता (Realiability) : प्राथमिक स्रोतों में अधिकाँश आँकड़े निकट सम्बन्ध स्थापित करके प्राप्त किए जाते हैं, वे काफी विश्वसनीय होते हैं। अनुसन्धानकर्त्ता को स्वयं पर भी विश्वास होता है कि उसने जो जानकारी प्राप्त की है वह अपने स्वाभाविक रूप में है न कि किसी दबाव के फलस्वरूप प्राप्त की हुई। बहुत नजदीक से किए हुए अध्ययन में असत्य की गुंजाइश नहीं के बराबर रहती है।

2. स्वाभाविकता (Naturalness) : इन स्रोतों के अन्तर्गत, अनुसन्धानकर्त्ता उत्तरदाताओं से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर सकता है अतः जो जानकारी लोगों से उसे व्यक्तिगत सम्पर्क से प्राप्त होगी, उसमें कृत्रिमता का समावेश नहीं होगा। उदाहरण के लिए, जब अनुसन्धानकर्त्ता सहयोगी निरीक्षणकर्त्ता के रूप में समुदाय के कार्यक्रमों में भाग लेकर जो सामग्री प्राप्त करता है वह निष्पक्ष होगी क्योंकि समुदाय के लोग स्वाभाविक रूप में अपने कार्यक्रमों को प्रस्तुत करते हैं।

3. वैषयिकता (Subjectivity) : प्राथमिक स्रोतों में वैषयिकता का पाया जाना एक बड़ा गुण है। इसके अन्तर्गत सूचना प्राप्त करने की जो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, वे भी वैषयिकता लाने में सहायक हैं। उदाहरण के लिए, अनुसूची पद्धति द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता लिखित प्रश्नों

के उत्तर उत्तरदाता से प्राप्त करता है। इसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि उत्तरदाता पक्षपातपूर्ण होकर उनका उत्तर देना उचित समझे। सिर्फ सावधानी यह बरतनी पड़ती है कि प्रश्न अस्पष्ट, टेढ़े–मेढ़े व भ्रामक नहीं होने चाहिएँ।

4. कम खर्चीला (Less Expensive) : इस स्रोत से सामग्री प्राप्त करने में अधिक व्यय नहीं होता। अनुसूचियों के द्वारा दूर–दूर स्थानों पर निवास करने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित कर अनुसंधानकर्त्ता सामग्री को प्राप्त कर सकता है। जब बार–बार सूचना को प्राप्त करना होता है तो प्रश्नावली–पद्धति श्रेष्ठ होती है। इसमें अनुसन्धानकर्त्ता को घटना स्थल पर जाने या व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती है तथा इससे समय की भी बचत होती है।

प्राथमिक स्रोतों के दोष

(Demerits of Primary Sources)

इस प्रविधि के कुछ दोष भी हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं :

1. इसमें सूचनादाताओं से सही सूचनायें प्राप्त हो रही हैं इसकी कोई गारन्टी नहीं है।
2. अनुसन्धानकर्त्ता को यह पता नहीं चल पाता है कि उसके सूचनादाता कहाँ–कहाँ फैले हुए हैं।
3. पत्र द्वारा सूचना भेजने से उत्तरदाता कभी–कभी गलत व अनावश्यक बातें भी लिखकर भेज देते हैं।
4. प्राथमिक स्रोतों के उपयोग में सदैव ही वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना बनी रहती है।
5. इसमें वस्तुनिष्ठता का अभाव हो जाता है।
6. प्राथमिक स्रोत अध्ययनकर्त्ता को केवल वर्तमान तथ्यों और घटनाओं की ही जानकारी प्रदान करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अध्ययनकर्त्ता अतीत की घटनाओं की अधिक जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता व उसका अध्ययन इन घटनाओं के विश्लेषण का लाभ नहीं उठा पाता।
7. सामग्री संकलन के लिए प्राथमिक स्रोतों का सफलतापूर्वक उपयोग केवल तभी किया जा सकता है जब अध्ययनकर्त्ता समुचित रूप से प्रशिक्षित हों और अध्ययन कार्य के लिए पूरी तरह से कुशल हों।

2.7.2 द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत

(Secondary or Documentary Sources)

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत वे होते हैं जो कि प्रकाशित या अप्रकाशित समस्त लिखित सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसके माध्यम से अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ, आँकड़े आदि प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जनगणना–रिपोर्ट से हमें देश की जनसंख्या आदि विषयों के सम्बन्ध में जो गणनात्मक (Quantitative) तथा वैषयिक आँकड़े व सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं, उन्हें एकत्रित करना किसी भी व्यक्तिगत या सामूहिक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सम्भव नहीं है। उसी प्रकार एक विषय से सम्बन्धित एक व्यक्ति के पत्रों तथा डायरी से उस व्यक्ति के आन्तरिक जीवन, मनोभाव तथा अन्य अनेक बातों का जिस रूप में हमें पता लगता है वह अन्य किसी भी प्राथमिक स्रोत से हमें कदापि नहीं मिल सकता। साथ ही द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ अध्ययन–विषय के सम्बन्ध में अनेक ऐसी प्राथमिक व गहन जानकारी को प्रस्तुत करती हैं तथा उस विषय की एक ऐसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं कि उसे जाने बिना नवीन शोधकार्य को सफलतापूर्वक उसके लक्ष्य तक पहुँचाना अत्यधिक कठिन होता है। इसीलिए श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) का सुझाव है कि प्रस्ताविक अनुसन्धान को आरम्भ करने से पूर्व उससे सम्बन्धित समस्त प्रलेखीय स्रोतों का सदैव सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण कर लेना चाहिए। एक ही कार्य को दोबारा करने की गलती करने, अध्ययन–पद्धति के सम्बन्ध में सुझाव प्राप्त करने, त्रुटियों से बचने, कठिनाइयों से अवगत होने आदि के लिए यह काम महत्वपूर्ण है। साथ ही, यदि हम अपने परिणामों की तुलना अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओं के परिणामों के साथ करना चाहते हैं तो भी हमें प्रलेखीय स्रोतों के माध्यम से उनके द्वारा अपनाई गई पद्धतियों से परिचित होना आवश्यक होगा। द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों के अन्तर्गत विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थ, सर्वेक्षण रिपोर्ट, संस्मरण, यात्रा–वर्णन, पत्र डायरी, ऐतिहासिक प्रलेख, सरकारी आँकड़े तथा रिकार्ड, अन्य अप्रकाशित रिकार्ड आदि सम्मिलित हैं। इन सभी स्रोतों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – प्रथम व्यक्तिगत प्रलेखीय स्रोत तथा दूसरा सार्वजनिक प्रलेखीय स्रोत। इन दोनों की विस्तार में विवेचना कर लेना उचित होगा।

1. व्यक्तिगत प्रलेख

(Personal Documents)

व्यक्तिगत प्रलेखों में वह समस्त लिखित सामग्री सम्मिलित है जो कि एक व्यक्ति के द्वारा स्वयं अपने विषय में अथवा सामाजिक घटनाओं के विषय में उसके अपने दृष्टिकोण से लिखी गई हो। यह जरूरी नहीं है कि उन्हें लिखते समय लिखने वाले का दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो अथवा सामाजिक शोध या अनुसन्धान सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही उसे उसने लिखा हो। अधिकांशतया ऐसा नहीं होता है और इन व्यक्तिगत प्रलेखों में लेखक के अपने दृष्टिकोण, मनोभाव, विचार व आदर्श ही मूर्त होते हैं। फिर भी यदि उसके द्वारा लेखक के अपने मनोभाव या आन्तरिक जीवन अथवा किसी सामाजिक संस्था या घटना के वर्णन पर प्रकाश पड़ता है तो वह स्वतः ही अपितु उस समाज या सामाजिक जीवन व प्रक्रियाओं का भी स्पष्टीकरण होता है जिसका कि लेखक भी एक अंग है।

श्री आलपोर्ट (Allport) के अनुसार व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के 13 सम्भावित कारण होते हैं जो कि इस प्रकार हैं –

(1) अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए, (2) अपने दोषों की स्वीकृति के लिए, (3) घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा को चरितार्थ करने के लिए, (4) साहित्यिकता का आनन्द लेने के लिए अर्थात् व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्यिक रूप देने के लिए, (5) व्यक्तिगत प्रलेखों में अनुसन्धान के लिए, (6) मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए, (7) धन प्राप्ति के लिए, (8) किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति के लिए (कभी–कभी इस प्रकार के प्रलेख दूसरों की आज्ञानुसार लिखे जाते हैं), (9) चिकित्सा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने के लिए जैसे मानसिक चिकित्सा के लिए पिछली घटनाओं तथा अनुभवों का वर्णन, (10) अपनी योग्यताओं को प्रदर्शित करने के लिए, (11) किसी सिद्धान्त या 'वाद' (ism) को लोकप्रिय बनाने के लिए, (12) जनसेवा तथा कल्याण के लिए और (13) अमरत्व प्राप्त करने के लिए।

व्यक्तिगत प्रलेखों को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

1. जीवन–इतिहास (Life History) : प्रोफेसर मैज (Madge) के विचारानुसार वास्तविक अर्थ में जीवन इतिहास का अभिप्रायः विस्तृत आत्मकथा से है। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग पर्याप्त ढीले–ढाले तौर पर होता है और किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिए 'जीवन–इतिहास' वाक्यांश का प्रयोग कर लिया जाता है। कुछ भी हो, जीवनी अथवा

आत्मकथाएँ प्रायः प्रख्यात व्यक्तियों अथवा महापुरुषों के द्वारा लिखी जाती हैं या तैयारी की जाती हैं। कुछ भी हो, इन आत्मकथाओं से केवल लेखक के व्यक्तिगत जीवन की ही नहीं बल्कि उसके समाज तथा समूह के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं तथा परिस्थितियों की झाँकी देखने को मिलती है। सबसे उल्लेखनीय बात तो यह है कि इन जीवनियों में ऐसी अनेक आन्तरिक या गुप्त बातों का भी उल्लेख रहता है जिसे कि हम अन्य किसी भी रूप में जान नहीं सकते हैं। उदाहरणार्थ, श्री चर्चिल की जीवनी द्वितीय महायुद्ध की एक ज्वलन्त झाँकी है, महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथाएँ वास्तव में भारत में स्वतन्त्रता संग्राम की आत्मकथाएँ, भारतीय संस्कृति, समस्या के दर्शन की आत्मकथाएँ हैं। इनका अध्ययन करने पर तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों व घटनाओं के सम्बन्ध में असंख्य महत्वपूर्ण सूचनाएँ व तथ्य प्राप्त होते हैं।

जीवन–इतिहास तीन प्रकार के होते हैं : **(i) स्वतः लिखित आत्मकथा (Spontaneous Autobiography)** वह आत्मचरित है जो कि एक व्यक्ति स्वतः अपनी इच्छा से अपने जीवन की घटनाओं का रिकार्ड रखने के लिए लिखता है। अनेक दिन बाद भी पुरानी बातों को याद करके दुःख–सुख को अनुभव करने और आत्म–विश्लेषण करने के लिए ही इस प्रकार की जीवनी लिखी जाती है और इसीलिए यह अधिकतर निष्पक्ष होती है। **(ii) ऐच्छिक आत्मकथा (Voluntered Self-record)** वे आत्मकथाएँ हैं जो कि किसी प्रकाशक या अन्य व्यक्ति के कहने से एक व्यक्ति ऐच्छिक तौर पर लिखता है। **(iii) संकलित जीवन–इतिहास (Compiled Life History)** वे जीवनियाँ हैं जो कि किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा लिखी जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मूल व्यक्ति स्वयं अपनी जीवन–कथा नहीं लिखता है बल्कि उसके द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिया गया व्याख्यान, लिखित रचनाएँ, साक्षात्कार के समय कही गई बातें, पत्र आदि के माध्यम से प्राप्त सामग्री को संकलित करके कोई दूसरा व्यक्ति उसकी जीवनी को तैयार करता है।

जीवन–इतिहास चाहे वह किसी प्रकार का भी क्यों न हो सामाजिक शोध या अनुसन्धान में उसका अत्यधिक महत्व होता है। इसका कारण यह है कि जीवनियों में व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी नीरस घटनाओं का ही वर्णन नहीं होता अपितु उनके माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं, संस्थाओं तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का भी पता चलता है। इतना ही नहीं, अपनी आत्मकथा लिखने वाला व्यक्ति तत्कालीन अनेक

सामाजिक समस्याओं का अति रोचक व महत्वपूर्ण वर्णन करने के साथ–साथ अनेक रचनात्मक व व्यावहारिक सुझावों को भी प्रस्तुत करता है। तत्कालीन सामाजिक घटनाओं, समस्याओं तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में लेखक के व्यक्तिगत मनोभाव व दृष्टिकोण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का एक अति उत्तम साधन आत्मकथाएँ होती हैं जिनका कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व होता है। जीवनियाँ इतिहास की अपेक्षा सरल, रोचक तथा स्पष्ट होती हैं।

उपरोक्त महत्व होते हुए भी जीवनियों की अपनी कुछ सीमाएँ व दोष भी होते हैं। आत्मकथाओं में प्रायः लेखक केवल अपने व्यक्तित्व को ही बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत नहीं करते अपितु विभिन्न सामाजिक घटनाओं को भी अपने ढंग से पर्याप्त रंग चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं। जब वे इस सम्बन्ध में सचेत रहते हैं कि उनकी जीवन–कथा प्रकाशित होगी तो वे स्वभावतः ही ऐसे तथ्यों को छुपा जाते हैं जो कि उनके व्यक्तित्व को जनता की निगाह में गिरा देने वाले होते हैं। उसी प्रकार सामाजिक व राजनैतिक नेता अपनी आत्मकथा में अपनी ही पार्टी के या समूह में व्याप्त भ्रष्टाचार को बहुत कम महत्व देते हैं और पार्टी के सिद्धान्तों को सर्वोत्तम प्रमाणित करने के लिए गलत तथ्यों को भी प्रस्तुत करने में संकोच नहीं करते। कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि अपने व्यक्तित्व तथा पार्टी के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए ही आत्मकथा लिखी गई है। ऐसा भी होता है कि प्रशासक धन कमाने के लिए जीवन की रोचक तथा आकर्षक घटनाओं को ही अत्यधिक महत्व देता है या लेखक स्वयं केवल ऐसी घटनाओं को ही जीवनी में सम्मिलित करता है जो कि उसके दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। ऐसी दशाओं में वास्तविकताओं से परिचित होने के सौभाग्य से हम वंचित ही रह जाते हैं।

2. डायरी (Diary) : बहुत से लोगों को डायरी लिखने का शौक होता है जिसमें कि वे प्रतिदिन या विभिन्न अवसरों पर अपनी जीवन सम्बन्धी घटनाओं को तथा उनके प्रति अपनी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं को लिखते हैं। इन डायरियों में न केवल वह अपने जीवन के सम्बन्ध में लिखता है बल्कि उनके विषय में भी लिखता है जिनके कि सम्पर्क में वह रहता है या केवल कुछ समय के लिए ही सम्पर्क में आने का अवसर उसे प्राप्त होता है। डायरी उसकी अपनी चीज होती है इसलिए वह अत्यन्त गोपनीय बातों को भी उसमें सच्चाई के साथ लिपिबद्ध कर देता है। एक घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में वह जो कुछ दिल से अनुभव करता है उसी की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति उसकी डायरी में मिलती है। इसीलिए

अत्यन्त गोपनीय तथा अति आन्तरिक तथ्यों, विचारों तथा भावनाओं को जानने का डायरी से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। क्रमबद्ध रूप में लिखी हुई डायरी जीवन – इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय आधार है।

सामाजिक शोध या अनुसन्धान के क्षेत्र में डायरियों का अपना महत्व है। इसका कारण यह है कि डायरियाँ आत्मकथाओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती हैं क्योंकि बहुधा डायरियों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से नहीं लिखा जाता है। इसीलिए अत्यन्त गोपनीय विषयों को भी सच्चाई से लिख लिया जाता है क्योंकि लेखक को जनता के जान लेने का भय नहीं होता है। दूसरों की निगाहों में गिरने का भय न रहने के कारण घटनाओं के वर्णन में किसी भी प्रकार का तोड़–मोड़ करने अथवा अपने विचारों को आकर्षक बनाने का मिथ्या प्रयत्न लेखक नहीं करता है। कभी–कभी तो डायरियाँ इसलिए भी लिखी जाती हैं कि बहुत–सी भावनाएँ व विचार, जिन्हें हम दूसरों के सामने कहने में संकोच करते हैं, डायरी में लिखकर अपने मन का भार हल्का कर लेते हैं। इसीलिए डायरियाँ व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अनेक रहस्यों को उद्घाटित करती हैं और अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में विश्वसनीय तथ्यों को प्रस्तुत करके शोधकार्य में सहायक सिद्ध होती हैं।

उपरोक्त महत्व के होते हुए भी डायरियों की अपनी कुछ सीमाएँ अथवा दोष भी होते हैं। इनका पहला दोष यह है कि वे जीवन के नाटकीय तथा संघर्षात्मक अंशों को बढ़ा–चढ़ाकर प्रकट करती हैं जबकि जीवन के शान्तिपूर्ण व स्वाभाविक पक्षों को उनमें स्थान नहीं मिलता है। दूसरी बात यह है कि डायरियों को रोज थोड़ा–थोड़ा करके लिखा जाता है इसलिए उसमें क्रमबद्धता का अभाव होता है। एक घटना को दूसरी घटना से जोड़ना अथवा दो विभिन्न समयों में घटित होने वाली एक ही प्रकार की घटना की तुलनात्मक विशेषता को दर्शाना डायरी में उल्लेखित विवरणों के आधार पर अत्यन्त कठिन होता है। डायरियों का तीसरा दोष यह है कि इनमें घटनाओं का संकेत मात्र मिलता है क्योंकि डायरी स्वयं अपने लिए लिखी जाती है और इसीलिए घटनाओं को विस्तार में समझाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती है। अतः उसको समझने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अनुमानों पर निर्भर रहना पड़ता है। चौथी कमी यह है कि डायरी के अनेक लेखक डायरी में कल्पना व साहित्यिक भाषा की सहायता लेते हैं जिससे कि घटनाओं की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। डायरियों की पाँचवीं कमी यह होती है कि डायरियाँ प्रायः लगातार नहीं लिखी जाती हैं, कुछ समय तक लिखने के पश्चात् बन्द कर

दिया जाता है या बीच–बीच में लिखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि घटनाओं के वर्णन में क्रमबद्धता नष्ट हो जाती है। इन दोषों के होते हुए भी इतना मानना ही पड़ेगा कि डायरियों के माध्यम से हमें व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित अनेक आन्तरिक तथा गोपनीय तथ्य व सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। इस स्रोत द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अन्य प्रलेखों की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय होती हैं।

3. पत्र (Letters) : पत्र व्यक्तिगत होते हैं और इसीलिए इनके माध्यम से हमें एक व्यक्ति के आन्तरिक विचारों, भावनाओं तथा दृष्टिकोणों का पता चलता है। अपने पत्रों में लेखक प्रायः अकपट रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत करता है इसीलिए उसमें व्यक्त उसके कथन पर्याप्त विश्वसनीय होते हैं। तलाक, पारिवारिक तनाव, प्रेम, मित्रता, वैवाहिक सम्बन्ध, यौन जीवन (Sex Life) आदि महत्वपूर्ण कोमल सामाजिक सम्बन्धों की वास्तविकताओं पर पत्र पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। पर पत्रों की अपनी कुछ सीमाएँ व दोष भी होते हैं और उनमें से सर्वप्रथम यह कि व्यक्तिगत (Personal) पत्रों को प्राप्त करना बहुत कठिन होता है। अपने आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित पत्रों को, विशेषकर उन पत्रों को जिनमें कि वैवाहिक जीवन व यौन जीवन का विवरण होता है, लोग नष्ट कर डालते हैं अथवा रहते हुए भी उन्हें देने से इन्कार कर देते हैं। पत्रों का दूसरा दोष यह है कि उनमें घटनाओं का विस्तृत विवरण नहीं मिलता है, उसके लिए कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। तीसरा दोष यह है कि घटना की क्रमबद्धता को एक पक्ष के पत्रों से मालूम नहीं किया जा सकता। इसके लिए पत्र और उनके उत्तर दोनों का ही होना आवश्यक है जो कि प्रायः मिल नहीं पाता है। पत्रों का चौथा व अन्तिम दोष यह है कि पत्रों में व्यक्त विचार या वर्णन केवल तभी विश्वसनीय होता है जब कि पत्र पाने और पत्र लिखने वाले का पारस्परिक सम्बन्ध आन्तरिक व घनिष्ठ हो। यदि ऐसा नहीं है तो पत्रों में बनावटीपन व औपचारिकता आ ही जाती है।

4. संस्मरण (Memories) : मनुष्यों के द्वारा यात्राओं, जीवन–घटनाओं अथवा महत्वपूर्ण परिस्थितियों के विषय में लिखे गए संस्मरण भी सामाजिक अनुसन्धान में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं। प्राचीनकाल में इस प्रकार के यात्रा–वर्णनों तथा संस्मरणों ने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करके तत्कालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाओं का विवरण प्रस्तुत करने में अत्यधिक सहायता की है। सर्वश्री मेगास्थनीज़, ह्यूनसाँग, फाहियान, इब्नबतूता के वर्णन अब भी भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि हैं। इनके वर्णनों से उस समय के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन के सम्बन्ध में हमें जो

जानकारी प्राप्त होती है वह वास्तव में महत्वपूर्ण है। परन्तु संस्मरण की अपनी कुछ ऐसी सीमाएँ व दोष हैं जिनके कारण सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता को इनसे अधिक लाभ नहीं होता है। उन दोषों में सबसे उल्लेखनीय दोष यह है कि इन संस्मरणों में लेखक के व्यक्तिगत विचारों तथा कल्पनाओं का इतना अधिक पुट होता है कि वह वास्तविक घटनाओं का उचित प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है। इन संस्मरणों को लिखने वाले प्रायः अधिक रोचक, रोमांचकार व आकर्षक घटनाओं को ही अपने विवरण के लिए चुन लेते हैं और साथ ही उसमें अपना रंग चढ़ाकर उन्हें प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्व (Importance of Personal Documents) : उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान व शोधकार्य में व्यक्तिगत प्रलेखों का अपना महत्व है। व्यक्तिगत जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं को भी समझने में इनकी सहायता अत्यावश्यक है। इन प्रलेखों द्वारा विचारों तथा मनोवृत्तियों का जितना स्पष्टीकरण सम्भव होता है उतना अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं। व्यक्तिगत मनोभाव व दृष्टिकोणों को ठीक से जान लेने से सामाजिक अनुसन्धान में घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में अत्यन्त सहायता मिलती है। व्यक्तिगत प्रलेखों का एक और उल्लेखनीय महत्व यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाएँ व तथ्य तुलनात्मक रूप में अधिक विश्वसनीय होते हैं, विशेषकर उन अवस्थाओं में जब कि लेखक का उद्देश्य अपने लेखों को प्रकाशित करना नहीं होता है। वास्तविक तथ्यों का ज्ञान उनके मूलरूप में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा हमें जितनी सरलता से प्राप्त हो जाता है, उतना और किसी स्रोत से नहीं हो पाता।

व्यक्तिगत प्रलेखों की सीमाएँ (Limitations of Personal Documents) : उपरोक्त महत्व के होते हुए भी व्यक्तिगत प्रलेख दोषरहित नहीं होते हैं। इनकी भी अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं जिन्हें कि हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं –

(1) व्यक्तिगत प्रलेखों के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय कठिनाई यह है कि इन्हें सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत प्रलेख निजी जीवन (Personal Life) से सम्बन्धित होने के कारण उसमें ऐसी अनेक गोपनीय सूचनाएँ होती हैं जिन्हें कि लेखक दूसरों को देने में हिचकिचाते हैं क्योंकि उन्हें यह डर रहता है कि शायद उससे वे दूसरों की निगाहों में गिर जाएँगे।

(2) इस सम्बन्ध में एक और दोष या सीमा का भी उल्लेख किया जा सकता है और वह यह है कि व्यक्तिगत प्रलेखों में जो कुछ लिखा है वह सच है अथवा नहीं इस बात की जाँच करना कठिन होता है क्योंकि ये सभी पिछली घटनाएँ होती हैं और साथ ही लेखक के आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित भी। इनमें वर्णित तथ्य बहुधा केवल प्रकाशन या प्रदर्शन के लिए नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त इस लिखित सामग्री में जो साहित्यिक, काल्पनिक व आदर्शात्मक पुट रहता है उसके कारण भी तथ्य की यथार्थता घट जाती है।

(3) व्यक्तिगत प्रलेखों से प्राप्त तथ्य या सूचनाएँ प्रायः विकृत भी हो जाती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि कोई लेखक इन प्रलेखों को प्रस्तुत करते समय पक्षपात की भावना व मिथ्या–झुकाव (Bias) से अपने को पूर्णतया विमुक्त नहीं रख पाता है। वह अपने आदर्श, सिद्धान्त, मूल्य या 'वाद' (ism) को ही सर्वोत्तम मान बैठने की गलती करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यक्तिगत प्रलेखों में वैज्ञानिक अलगाव (Scientific Detachment) का नितान्त अभाव होता है। श्री गोट्सचाक (Gottschalk) के मतानुसार यदि हम इस सम्बन्ध में निःसन्देह हो जाएँ कि –

(अ) घटना के वर्णन में लेखक का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ निहित नहीं है,

(ब) घटना को किसी भी रूप में विकृत करने से उसका हित होने के बजाय अहित होने की सम्भावना है,

(स) लेखक यह जानता है कि जिस घटना का वह वर्णन कर रहा है उसकी वास्तविकताओं को इतने लोग जानते हैं कि यदि उसने घटना को तनिक भी विकृत किया तो उसका भण्डाफोड़ हो जाएगा और

(द) लेखक ऐसा कुछ वर्णन कर रहा है जो कि सामान्य स्थिति में उसके लिए सम्भव नहीं है तो हम व्यक्तिगत प्रलेखों में वर्णित सूचनाओं व तथ्यों को विश्वसनीय मान सकते हैं।

(4) व्यक्तिगत प्रलेखों की और उल्लेखनीय सीमा यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाएँ सम्बन्धित समाज या समुदाय का उचित प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती हैं क्योंकि इनका आधार मौलिक रूप में व्यक्तिगत ही होता है। ये सूचनाएँ व्यक्तिगत जीवन व घटनाओं की, न कि सामाजिक या सामुदायिक जीवन व घटनाओं की, झाँकी प्रस्तुत करती हैं और इसीलिए सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने में इन्हें कहाँ तक उपयोग किया जा सकता है यह गम्भीरतापूर्वक सोचने का विषय है।

2. सार्वजनिक प्रलेख

(Public Documents)

तथ्य या सूचना प्राप्त करने का जो प्रलेखीय स्रोत (Documentary Source) है उसका दूसरा प्रकार/भेद सार्वजनिक प्रलेख है। सार्वजनिक प्रलेख वास्तव में वे रिकार्ड होते हैं जिन्हें कि कोई सरकारी या गैर–सरकारी संस्था तैयार करती है। ये दो प्रकार के होते हैं : एक तो अप्रकाशित सार्वजनिक प्रलेख जैसे विभिन्न कम्पनियों, सरकारी विभागों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा तैयार रिकार्ड जो कि आम जनता के लिए नहीं होता है और प्रायः उन्हें गोपनीय (Confidential) रखा जाता है। दूसरे, प्रकाशित सार्वजनिक रिकार्ड जैसे किसी कमेटी द्वारा सार्वजनिक हित से सम्बन्धित किसी विषय के सम्बन्ध में तैयार की गई रिपोर्ट जो कि हर आम–खास के लिए उपलब्ध हो सकती है। इन दोनों प्रकार के प्रलेखों को निम्नलिखित उपभागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. **रिकार्ड (Record) :** विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाओं को अपने प्रतिदिन के कामकाज के लिए अथवा प्रशासकीय (Administrative) आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक आँकड़ों तथा सूचनाओं का रिकार्ड रखना पड़ता है। इसके अध्ययन से अनेक सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रोबेशन दफ्तर (Probation Office) में प्रोबेशन पर छोड़े गए अपराधियों का जो रिकार्ड रहता है उससे इन अपराधियों के सम्बन्ध में अनेक उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं जो कि उनके विषय में किसी भी शोधकार्य का आधार बन सकती हैं। इस प्रकार के रिकार्डों के अतिरिक्त दस्तावेज, बहीखाता, सभाओं, समितियों व कान्फ्रेंसों की रिपोर्ट, लोकसभा तथा अन्य समितियों की कार्यवाही के रिकार्ड भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं और सामाजिक अनुसन्धानकार्य में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि इनसे प्राप्त सूचनाएँ विश्वसनीय होती हैं। पर कठिनाई यह होती है कि ये रिकार्ड प्रायः मिल नहीं पाते हैं।

2. **प्रकाशित आँकड़े (Published Statistics) :** सरकार तथा गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा अनेक प्रकार के आँकड़े संकलित तथा प्रकाशित किए जाते हैं। भारत सरकार के सूचना मंत्रालय द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित 'भारत 2002, 2004 आदि में अनेक महत्वपूर्ण आँकड़ों का संकलन देखने को मिलता है। इसी प्रकार विभिन्न Chamber of Commerce आदि अपने–अपने क्षेत्र से सम्बन्धित आँकड़ों को प्रकाशित करते रहते हैं। प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाले Year Books में भी विविध विषयों पर आँकड़ों का उत्तम संकलन देखने को मिलता है।

3. पत्र–पत्रिकाओं की रिपोर्टे (Report of the Newspapers etc.) : समाचार पत्र व पत्रिकाओं में समय–समय पर सामाजिक जीवन व घटनाओं से सम्बन्धित अनेक प्रकार की रिपोर्ट तथा सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं जिनका उपयोग आवश्यकतानुसार सामाजिक शोधकार्य में किया जा सकता है। पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादकीय लेख जनमत के झुकाव को जानने का एक अति उत्तम साधन है।

4. अन्य सामग्री (Other Materials) : अन्य बहुत–से प्रकाशित प्रलेख भी तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा घटनाओं को समझने में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ कहानी, उपन्यास, ग्राम्य गीत, चित्र आदि की सहायता से हम जनजीवन सम्बन्धी अनेक वास्तविकताओं को जान सकते हैं क्योंकि इन सबके रचियता किसी न किसी सामाजिक घटना या समस्या को अपने प्रलेख का आधार बनाते हैं।

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों का उपयोग

(Utilization of Secondary or Documentary Sources)

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों से प्राप्त तथ्यों (Data) या सूचनाओं को बिना समझे–बूझे काम में लाना अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकता है। अतः इन स्रोतों से उपलब्ध तथ्यों को उपयोग में लाने से पूर्व उनकी विश्वसनीयता (Realiability) के सम्बन्ध में निःसन्देह हो लेना आवश्यक है। सरकारी विभागों द्वारा प्रकाशित आँकड़े भी काल्पनिक हो सकते हैं। लेखक ने एक विभागीय अधिकारी को यह कहते हुए सुना है कि "पिछले कुछ वर्षों के आँकड़ों के आधार पर ही वर्तमान आँकड़ों को, बिना वास्तविक सूचनाओं को प्राप्त किए, प्रस्तुत करना कोई कठिन काम नहीं है क्योंकि वे आँकड़े गलत हैं यह प्रमाणित करने के लिए कम–से–कम एक साल का समय चाहिए और उस दौरान आँकड़ों में और आगे परिवर्तन हो चुके होते हैं।" अतः इन स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं या आँकड़ों की हर सम्भावित उपायों से पुनर्परीक्षा कर लेना आवश्यक होता है। इस पुनर्परीक्षा का एक उपाय तथ्यों का आलोचनात्मक विवेचन है। प्रो. चैपिन (Chapin) ने समालोचना के सिद्धान्तों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है :

1. सर्वप्रथम प्रलेखों (Documents) की उनके बाह्य या वैषयिक विशेषताओं के सन्दर्भ में समालोचना करनी चाहिए :

(अ) लेखक की आलोचनात्मक परीक्षा होनी चाहिए।

(ब) स्रोतों का आलोचनात्मक वर्गीकरण कर लेना चाहिए।

(स) अनुसन्धानकर्त्ता को अतिछिद्रान्वेषण से बचना चाहिए, नहीं तो वह उसी भर का हो जाएगा और सूचनाओं को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के साधन के रूप में उपयोग नहीं कर पाएगा।

2. इसके पश्चात् प्रलेखों की उनकी आन्तरिक या व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) विशेषताओं के सन्दर्भ में समालोचना करनी चाहिये। इस प्रकार की आलोचना अधिक महत्वपूर्ण है। वह विश्लेषणात्मक समालोचना है।

(क) एक कथन (Statement) से लेखक का क्या तात्पर्य है? उस कथन का साहित्यिक अर्थ नहीं, वास्तविक अर्थ क्या है?

(ख) क्या वह कथन सत्यनिष्ठा के साथ (in good faith) कहा गया है?

(i) क्या पाठक को धोखा देने में लेखक का कोई स्वार्थ था?

(ii) क्या असत्य कहने के सम्बन्ध में लेखक पर दबाव डाला गया?

(iii) क्या असत्य कहने के सम्बन्ध में लेखक सहानुभूति अथवा विरोधभाव द्वारा प्रभावित था?

(iv) क्या झूठे–अभिमान (Vanity) ने लेखक को प्रभावित किया?

(v) क्या वह जनमत द्वारा प्रभावित था?

(vi) क्या सत्य को विकृत करने का कोई साहित्यिक या नाटकीय (Dramatic) इरादे का कोई प्रमाण है?

(ग) क्या कथन यथार्थ (Accurate) अथवा ठीक है? या और भी विशिष्ट रूप में –

(i) क्या अपने मानसिक दोष या अस्वाभाविकता के कारण लेखक एक तुच्छ निरीक्षक (Poor Observer) था?

(ii) क्या समय तथा स्थान के विषय में लेखक की स्थिति खराब होने के कारण वह ठीक से निरीक्षण न कर सका?

(iii) क्या वह लापरवाह या उदासीन था?

(iv) क्या तथ्य इस प्रकार का था कि उसका प्रत्यक्ष निरीक्षण सम्भव न था?

(v) क्या लेखक एक मूक–दर्शक या एक प्रशिक्षित निरीक्षक (Trained Observer) था?

(घ) जब यह प्रतीत हो कि लेखक कोई मूल निरीक्षक नहीं था, तब उसके सूचना के स्रोतों की सत्यता व यथार्थता की जाँच कर लेना आवश्यक है।

3. विशिष्ट तथ्यों की जाँच तुलनात्मक विधि द्वारा कर लेनी चाहिए जो कि सहमति और असहमति (Contradictions) दोनों को ही ध्यान में रखता है और हर सम्भावित आधारों पर निष्कर्ष निकालता है।

उपरोक्त आधारों पर परीक्षणात्मक जाँच (Test Checking) कर लेने से द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं व आँकड़ों की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में निश्चित हुआ जा सकता है और अनुसन्धान–कार्य में अधिकाधिक परिशुद्धता व यथार्थता पनपने की सम्भावना रहती है।

2.8 जनगणना का महत्व

(Importance of Census)

भारत जैसे देशों में जहाँ की सांख्यिकीय सामग्री को प्राप्त करने के स्रोत या साधन सीमित व दोषपूर्ण हैं वहाँ जनगणना के महत्व को शायद ही कम किया जा सकता है। जनगणना के द्वारा सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों के विषय में विश्वसनीय आँकड़े व सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। जनगणना की रिपोर्ट का अध्ययन करने पर हमें अपने देश के परिवार के आकार, गाँव व शहर में जनसंख्या का वितरण, स्त्री–पुरुष का अनुपात, विभिन्न भाषा बोलने वालों की संख्या, विभिन्न धर्मों के समर्थकों की संख्या, विभिन्न पेशों में लगी हुई श्रमशक्ति, शिक्षा का स्तर, आयु का वितरण, जन्म तथा मृत्युदर, वैवाहिक स्थिति, जनसंख्या की वृद्धि की दर, औसत आयु आदि के विषय में बहुत–कुछ यथार्थ जानकारी प्राप्त हो सकती है। परोक्ष रूप में जनगणना से हमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं का भी आभास होता है। इन सब दृष्टिकोणों से जनगणना का अत्यधिक महत्त्व है और इसीलिए यह कहा गया है कि जनगणना नियोजना विकास की कुंजी है।

2.9. आँकड़ों के संकलन की प्रविधियाँ :

आँकड़ों को एकत्रित करना आँकड़ा संकलन कहलाता है। शोधकर्त्ता को अपना शोध पूरा करने के लिए तथ्यों का संकलन वैज्ञानिक पद्धति से करना होता है क्योंकि शोधकर्त्ता द्वारा संकलित किए गए आँकड़े जितना अधिक शुद्ध एवं विश्वसनीय होंगे, शोध उतना ही अधिक वैज्ञानिक व उपयोगी निष्कर्ष देता है। इस दृष्टिकोण से प्रत्येक शोधकर्त्ता न केवल प्रविधियों व उपकरणों की सहायता से विभिन्न प्रकार के तथ्यों से एकत्रित करता है बल्कि उन स्रोतों और प्रविधियों को भी जानने का प्रयत्न करता है जिनके द्वारा उपयोगी तथ्यों

को एकत्रित किया जा सके। आँकड़ों के संकलन की प्रविधियां साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली तथा सहभागी व असहभागी अवलोकन प्रविधि है।

2.10 साक्षात्कार

(Interview)

किसी भी विज्ञान का विकास इस बात पर निर्भर होता है कि उसके अनुसन्धान की विधियाँ तथा तथ्य संकलन के साधन कितने विकसित हैं। प्राकृतिक विज्ञानों में अनुसन्धान की विधियाँ तथा उपकरण अत्यन्त विकसित हो चुके हैं। सामाजिक विज्ञान जैसे समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, लोक–प्रशासन आदि विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा इस क्षेत्र में काफी पीछे हैं। गुडे एवं हॉट ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि "सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन की वस्तु मानव है, मानव स्वयं एक जटिल प्राणी है जिसका स्वभाव निरन्तर बदलता रहता है, अध्ययन वस्तु (Subject Matter) एवं वैज्ञानिक (Scientist) दोनों मानव होने के कारण पक्षपात आदि की सम्भावना रहती है।"

मानव में क्षमता है कि स्वयं के सम्बन्ध में मानव वैज्ञानिक द्वारा की गई भविष्यवाणी को गलत सिद्ध कर सके। इन सीमाओं के होते हुए भी कुछ और ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनकी वजह से सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान में कुछ विशिष्ट तथ्य संकलन की पद्धतियों का प्रयोग करता है। वैज्ञानिक अध्ययन की वस्तु के आमने–सामने के सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। अध्ययन की वस्तु से बात कर सकता है व पत्र–व्यवहार के द्वारा सामग्री एकत्र कर सकता है।

सामाजिक अनुसन्धान में अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है जैसे अवलोकन, अनुसूची, प्रश्नावली, पुस्तकालीय पद्धति, अनुमाप, समाजमिति, साक्षात्कार इत्यादि। साक्षात्कार विधि के अनेकों गुणों एवं प्रकारों के कारण इसे सामाजिक अनुसन्धान में एक विशेष स्थान प्राप्त है। इस विधि के द्वारा उन तथ्यों को एकत्र किया जाता है जो अन्य विधियों–अवलोकन, प्रश्नावली एवं अनुसूची से सामान्यतया सम्भव नहीं है। यंग ने इस गुण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि साक्षात्कार पद्धति के द्वारा व्यक्तियों के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करके जानकारी एकत्रित की जाती है। सूचनादाताओं के आन्तरिक जीवन में प्रवेश की सम्भावना के कारण साक्षात्कार पद्धति व्यक्तियों की भावना, आन्तरिक विचारों और मनोवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए विशेष उपयोगी प्रणाली है।

2.10.1 साक्षात्कार : अर्थ एवं परिभाषा (Interview: Meaning & Defination) : साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री–संग्रह की एक प्रत्यक्ष एवं मौलिक प्रणाली है। इस तरह साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा ही सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं इस सम्बन्ध में Sri M. N. Basu का कथन है कि, "साक्षात्कार को कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने–सामने का मिलन कहा जा सकता है।" साक्षात्कार प्रणाली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता अपने अध्ययन–वस्तु 'मानव' जिससे सूचना प्राप्त करनी है, आमने–सामने बैठाकर, कुछ प्रश्न पूछकर अध्ययन विषय से सम्बन्धित साक्षात्कार सूचनाएँ एकत्रित करने का प्रयत्न करता है। विभिन्न विद्वानों ने साक्षात्कार को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। Dr. P. V. Young ने लिखा है कि, "साक्षात्कार एक व्यवस्थित प्रणाली मानी जा सकती है जिसके द्वारा एक व्यक्ति इसके आन्तरिक जीवन में अधिक अथवा कम कल्पनात्मक रूप में प्रवेश करता है जो उसके लिए साधारणतया तुलनात्मक रूप से अपरिचित हैं।"

Professor Goode & Hatt के शब्दों मे, "मौलिक रूप में साक्षात्कार सामाजिक आन्तरिक क्रिया की एक प्रक्रिया है।"

Sri V. M. Palmer ने साक्षात्कार को उचित रूप से परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "साक्षात्कार दो व्यक्तियों में एक सामाजिक स्थिति का निर्माण करता है, जिसमें निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि दोनों व्यक्ति परस्पर प्रत्युत्तर करें, यद्यपि साक्षात्कार के सामाजिक अनुसंधानिक उद्देश्य से सम्बन्धित दोनों पार्टियों में बहुत भिन्न प्रत्युत्तर होते हैं।"

Hader & Lindman ने साक्षात्कार की मुख्य प्रक्रिया को समझाते हुए लिखा है कि, "साक्षात्कार के अन्तर्गत दो व्यक्तियों के मध्य संवाद, मौखिक प्रत्युत्तर होते हैं, ये प्रत्युत्तर जब एक कर्म विषयक अर्थ में मौखिक होते हैं तो कई अन्य कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं जिसमें से कुछ वैषयिक होते हैं एवं कुछ कर्म विषयक।"

Hsin Pao Young ने साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की ऐसी प्रविधि है, जो कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार की निगरानी करने, कथनों को अंकित करने व सामाजिक या सामूहिक अन्तः क्रिया के वास्तविक परिणामों का निरीक्षण करने के लिए प्रयोग में ली जाती है।"

Moser ने साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "औपचारिक साक्षात्कार, जिसमें कि पूर्व निर्मित प्रश्नों को पूछा जाता है तथा उत्तरों को प्रमाणीकृति स्वरूप में लेखबद्ध किया जाता है, बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण में निश्चित रूप से सामान्य है, लेकिन हमें कम औपचारिक स्वरूपों को भी समझना चाहिए जिसमें साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्नों के क्रम को बदलने, उनके अर्थ कि व्यवस्था करने किसी अतिरिक्त प्रश्न को जोड़ने एवं यहाँ तक कि शब्दावली मे परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं, कि साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी मुख्य उद्देश्य को सामने रख कर परस्पर आमने–सामने होकर संवाद, वार्तालाप एवं उत्तर–प्रयुत्तर करते हैं। साक्षात्कार में दो या अधिक व्यक्ति आमने–सामने मिलते हैं। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में आधुनिक युग में, साक्षात्कार का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग बढ़ रहा है।

2.10.2 साक्षात्कार पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Interview Technique) :

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार–प्रविधि की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है जो कि इस प्रकार हैं :

1. दो या दो से अधिक व्यक्ति (Two or more persons) : साक्षात्कार–प्रविधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों का निकटतम सम्पर्क एवं वार्तालाप होता है, और यह एक आवश्यक शर्त भी है।

2. आमने–सामने के प्राथमिक सम्बन्ध (Face to face relations) : इस प्रविधि की दूसरी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें आमने–सामने के प्राथमिक सम्बन्ध (Primary Relations) स्थापित किए जाते हैं।

3. विशिष्ट उद्देश्य (Specific Object) : तीसरी मुख्य विशेषता 'विशिष्ट उद्देश्य' है। अर्थात् दो या दो से अधिक व्यक्तियों के आमने–सामने के सम्बन्ध किसी विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही स्थापित किए जाते हैं।

4. सामग्री संकलन (Collection of Data) : साक्षात्कार–प्रविधि का चतुर्थ उद्देश्य जो कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, यह है कि इस प्रविधि द्वारा सामाजिक अनुसन्धानों एवं सामाजिक अध्ययन हेतु सामग्री का संकलन किया जाता है।

2.10.3 साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य (Main Objects of Interview) : साक्षात्कार–प्रविधि का अर्थ व विशेषता समझने के उपरान्त यह आवश्यक हो जाता है कि उसके उद्देश्यों को समझा जाए। ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. प्राकल्पनाओं का प्रमुख साधन (Main Source of Hypothesis) : साक्षात्कार का एक उद्देश्य प्राकल्पनाओं के निर्माण के लिए अवश्यक सामग्री को एकत्रित करना है। साक्षात्कार करने से अनुसन्धानकर्त्ता को भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की भावनाएँ, विचार, मनोवृत्तियों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिलता है। साथ ही, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में भी बहुमूल्य अनुभव होते हैं। शायद कहने की आवश्यकता नहीं कि सामाजिक क्रियाओं एवं व्यक्तिगत अन्तः क्रियाओं के बारे में प्राकल्पना निर्माण करने के लिए साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य कोई प्रविधि अधिक सहायक नहीं हो सकती।

2. प्रत्यक्ष सम्पर्क एवं आमने–सामने के सम्पर्क द्वारा सूचना (Information through direct and face to face contact) : साक्षात्कार का दूसरा प्रमुख उद्देश्य आमने–सामने के सम्पर्क स्थापना द्वारा सूचना का संकलन करना है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि इस प्रविधि में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का प्रत्यक्ष अथवा आमने–सामने के सम्पर्क स्थापित किया जाता है। वास्तव में इस प्रकार के प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा व्यक्ति से उसकी अनेक आन्तरिक बातें, भावनाओं, उद्वेगों, मनोवृत्तियों आदि का भी अध्ययन सम्भव है जो कि सामाजिक अनुसन्धान–कार्यों मे अति महत्त्पूर्ण है।

3. निरीक्षण का अवसर पाना (To seek opportunity for observation) : साक्षात्कार का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य यह है कि इससे निरीक्षण का एक अच्छा अवसर प्राप्त होता है। यदि कोई व्यक्ति अजनवी–सा आपके घर पर आपके परिवार का निरीक्षण करने पहुँच जाए तो शायद आपकों बुरा महसूस हो। परन्तु साक्षात्कार करने के बहाने अनुसंधानकर्त्ता आपके पास जाता है और साक्षात्कार करने के साथ–साथ आपके घर का वातावरण, पास पड़ोस, घर के सदस्यों का व्यवहार आदि सब–कुछ निरीक्षण कर लेता हैं इस प्रकार साक्षात्कारकर्त्ता का निरीक्षण एवं साक्षात्कार दोनों ही पद्धतियों के लाभ प्राप्त होने का सुन्दर सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

4. आन्तरिक एवं व्यक्तिगत सूचना (Internal and Personal Information) : साक्षात्कार –प्रविधि द्वारा हमें अनेकों व्यक्तिगत एवं आन्तरिक तथ्यों को अध्ययन करने में भी सहायता प्राप्त होती है। अनेक गुणात्मक तथ्य जैसे व्यक्तिगत विचार, भावनाएँ, लोकविश्वास,

व्यक्तिगत निरीक्षण या अवलोकन उद्वेग, मनोवृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ, जो कि मानव के आन्तरिक जगत् में विद्यमान रहते हैं, साक्षात्कार प्रविधि द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं।

2.10.4 साक्षात्कार के प्रकार (Types of Interview) :

अनेक विद्वानों ने साक्षात्कार को विभिन्न आधारों पर अलग–अलग वर्गीकृत किया है। यहाँ हम सामाजिक विद्वानों के द्वारा सामान्यतः जो वर्गीकरण किया जाता है उसका उल्लेख कर रहे हैं :

साक्षात्कारों को अनेक प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यदि हम साक्षात्कार को कुछ आधारों पर वर्गीकृत करने का प्रयत्न करें तो अधिक उत्तम रहेगा। यह वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

(अ) **कार्यों के आधार पर वर्गीकरण (Classification According to Functions) :** कार्यों के आधार पर साक्षात्कार निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं :

1. कारक परीक्षक साक्षात्कार (Diagnostic Interview) : कारक परीक्षक साक्षात्कार का उद्देश्य किसी गम्भीर सामाजिक घटना या समस्या के कारकों की खोज करना होता है। इस प्रकार का साक्षात्कार समस्या के कारणों की खोज के लिए किया जाता है।

2. उपचार साक्षात्कार (Treatment Interview) : जब किसी साक्षात्कार का उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या को दूर करने के उपचार से सम्बन्धित सुझावों की खोज करना होता है तो उसे उपचार साक्षात्कार कहा जा सकता है।

3. शोध सम्बन्धी साक्षात्कार (Research Interview) : शोध सम्बन्धी साक्षात्कार में भी विभिन्न सामाजिक विषयों एवं घटनाओं से सम्बन्धित कारकों की खोज करने का प्रयत्न किया जाता है।

(ब) **औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण (Classification According to Formality) :**

औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार को निम्नलिखित प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview) : औपचारिक साक्षात्कार को नियन्त्रित साक्षात्कार (Structured Interview) भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के साक्षात्कारकर्त्ता में साक्षात्कार अनुसूची, जो कि पूर्वनिर्मित होती है, में दिए गए प्रश्नों को ही पूछता है और साक्षात्कारदाता द्वारा दिए गए उत्तरों को नोट कर लेता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में प्रमुख बात यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता के ऊपर विशेष नियन्त्रण होता है, उसको अनुसूची

के अतिरिक्त और प्रश्न पूछने की न तो स्वतन्त्रता होती है और न ही वह अनुसूची की शब्दावली की भाषा आदि में परिवर्तन करने को स्वतन्त्र है। उसे तो एक पूर्व योजना के अन्तर्गत ही कार्य करना पड़ता है। इसीलिए इसको नियोजित साक्षात्कार भी कहा जाता है।

2. अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview) : इस साक्षात्कार को अनियन्त्रित या स्वतन्त्र साक्षात्कार भी कहा जा सकता है इस प्रकार के साक्षात्कार में किसी भी विशेष अनुसूची की सहायता नहीं ली जाती है। साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से कुछ मुख्य प्रश्न या किसी विषय पर उसके विचार पूछता है और उत्तरदाता एक वर्णन या कहानी के रूप में अपने विचारों का वर्णन करता है। साक्षात्कारकर्त्ता इसी वर्णन अथवा विवेचन के आधार पर ही निष्कर्ष निकालता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग विशेषकर पूर्वगामी अध्ययनों एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए किया जाता है।

(स) **सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण (Classification According to Number to Infomants) :** प्रत्येक साक्षात्कार में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दो या दो से अधिक व्यक्तियों का भाग लेना आवश्यक होता है। अतः सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर भी साक्षात्कार को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है –

1. व्यक्तिगत साक्षात्कार (Personal Interview) : व्यक्तिगत साक्षात्कार में, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, साक्षात्कारकर्त्ता एक समय में एक ही व्यक्ति से साक्षात्कार करता है। श्री सिन पायो यांग के अनुसार "व्यक्तिगत साक्षात्कार एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ मिलाता है।" इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से प्रश्न पूछता चला जाता है; साक्षात्कारदाता उसका उत्तर देता चला जाता है। कभी–कभी दोनों ही प्रश्नोत्तर करने लगते हैं। प्रायः व्यक्तिगत साक्षात्कार से अनेक लाभ होने की सम्भावना रहती है। प्रथम तो अन्य पद्धतियों की तुलना में इस पद्धति से कहीं अधिक सत्य सूचनाएँ प्राप्त करने की सम्भावना रहती है, क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता के अनेक गलत उत्तरों को उसी समय ठीक कर सकता है। दूसरे, इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा अनुसूची में दिए गए प्रायः सभी प्रश्नों के उत्तर सम्भव होते हैं, क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता स्वयं प्रश्न पूछता है। इसके अतिरिक्त, अनुसूची में यदि किसी प्रश्न की भाषा कठिन हो, तो साक्षात्कारकर्त्ता उसे सरल करके समझा भी सकता है। इतना ही नहीं, व्यक्तिगत साक्षात्कार से अनेक भावुक एवं

संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर भी प्राप्त होने की सम्भावना होती है क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता उन प्रश्नों को उत्तरदाता के समक्ष अति कोमल रूप में प्रस्तुत करता है।

उपरोक्त लाभों के साथ–साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार की कुछ सीमाएँ भी हैं। प्रथम, व्यक्तिगत साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता का व्यक्तिगत पक्षपात समाविष्ट हो जाता है। साथ ही यह अत्यधिक खर्चीली एवं समय नष्ट करने वाली प्रविधि है। फिर भी व्यक्तिगत साक्षात्कार ही अत्यधिक प्रचलित प्रविधि है।

2. सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview) : व्यक्तिगत साक्षात्कार के विपरीत, सामूहिक साक्षात्कार में एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता व्यक्तियों के समूह से कुछ प्रश्न बारी–बारी से करता है – समूह के सभी व्यक्ति या कुछ व्यक्ति उसका उत्तर देते हैं। कभी–कभी इसीलिए इसे वाद–विवाद सभा भी कहा जाता है। इस प्रविधि के कई लाभ है। प्रथम तो यह बड़ी जनसंख्या में सामग्री संकलन का सर्वोत्तम ढंग है। दूसरे, इसमें कम कुशलता से भी काम चल सकता है। इसमें कम खर्च और कम समय तो लगता ही है, साथ ही व्यक्तिगत पक्षपात आने की भी सम्भावना बहुत कम रहती है। यद्यपि यह बात अवश्य है कि सामूहिक रूप में प्रश्नोत्तर करने के कारण न तो सभी प्रश्नों के उत्तर सही मिल पाते हैं और न ही विशाल जनसमूह के सभी व्यक्ति प्रश्न समझ पाते हैं।

(द) अध्ययन–पद्धति के आधार पर वर्गीकरण (Classification According to Methodology) :

अध्ययन–पद्धति के आधार पर साक्षात्कार को निम्नलिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. निर्देशित साक्षात्कार (Directive Interview) :

साधारणतया यह साक्षात्कार प्रश्नावली का रूप ले लेता है। सैलटिज, जहोडा, ड्वाइंश और कुक के अनुसार निर्देशित साक्षात्कार बहुत अधिक नियन्त्रित और व्यवस्थित होता है। इसमें प्रश्नों के प्रकार, क्रम और शब्दावली निश्चित होती है। प्रत्येक उत्तरदाता से प्रश्न एक ही क्रम में पूछे जाते हैं। साक्षात्कारकर्त्ता को प्रश्नों का क्रम और शब्दावली बदलने की स्वतन्त्रता नहीं होती है। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिकों ने निर्देशित साक्षात्कार का उल्लेख प्रश्नावली प्रणाली के साथ–साथ किया है। गुडे और हॉट, यंग, सैलटिज तथा अन्यों के अनुसार इस साक्षात्कार का उपयोग तब किया जाता है जब

प्रश्नावलियाँ लौटकर नहीं आती हैं और वैज्ञानिक स्वयं सूचनादाताओं के पास जाता है तथा उनसे आमने–सामने के सम्बन्ध स्थापित करके प्रश्नोत्तरों की प्रक्रिया के द्वारा प्रश्नावलियाँ भरता है।

निर्देशित साक्षात्कार में दो प्रकार के प्रश्नों का उपयोग किया जाता है –

(क) बन्द प्रश्न (Closed Questions) एवं

(ख) खुले प्रश्न (Open Questions).

बन्द प्रश्नों में प्रश्नों से सम्भावित उत्तर, उत्तरदाताओं की सुविधा के लिए प्रश्नों के नीचे दिए होते हैं तथा खुले प्रश्नों को इसलिए पूछा जाता है कि उत्तरदाता स्वतन्त्र होकर प्रश्नों से सम्बन्धित अपनी जानकारी दे। खुले प्रश्नों के नीचे सम्भावित उत्तर नहीं दिए जाते हैं। बन्द प्रश्नों के नीचे उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में हो सकते हैं या क्रमों में सम्भावित उत्तर दिए होते हैं। उत्तरदाता अपनी जानकारी के अनुसार उत्तर के आगे सही (√) का चिह्न लगा देता है। खुले प्रश्न उत्तरदाताओं को अपने विचार व्यक्त करने के लिए पूर्ण छूट देते हैं न कि किसी सीमा में बाँधते हैं। खुले प्रश्न केवल किसी बात से सम्बन्धित प्रश्न उठाते हैं और उत्तरदाता उनसे सम्बन्धित उत्तर देते हैं जो सूचनादाता के अपने दृष्टिकोणों, विचार तथा ज्ञान पर आधारित होते हैं।

2. अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview) :

अधिकतर साक्षात्कारों में साक्षात्कारकर्त्ता को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह दिए हुए विषय से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछे। लेकिन वह प्रश्न पूछते समय उत्तरदाता के उत्तरों को अपने प्रश्नों द्वारा पक्षपातपूर्ण न होने दे। इसकी उसे हिदायत तथा चेतावनी दी जाती हैं, अनिर्देशित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता है। वह पूर्व–निर्देशित, व्यवस्थित तथा संगठित प्रश्न नहीं पूछता है। इसलिए यह साक्षात्कार अव्यवस्थित और अनियन्त्रित साक्षात्कार भी कहलाता है। इस साक्षात्कार में उत्तरदाता को स्वतन्त्रता से और बिना किसी झिझक के अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता थोड़ी देर में ऐसी बात कहता रहता है या टिप्पणी करता रहता है जिससे कि उत्तरदाता अधिक जानकारी देने के लिए उत्साहित होता रहे। ये टिप्पणियाँ अथवा प्रश्न हो सकते हैं जैसे – आपने मुझे नई जानकारी दी, या आप मुझे और बताइए या क्यों या क्या यह रुचिकर बात नहीं है, इत्यादि। साक्षात्कारकर्त्ता को ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिससे उत्तरदाता अपने आपको बिना किसी डर या झिझक के व्यक्त कर सके।

साक्षत्कारकर्त्ता को किसी प्रकार का सुझाव नहीं देना चाहिए, पक्ष या विपक्ष में भी अपने विचार व्यक्त नहीं करने चाहिएँ। वैज्ञानिकों ने कहा है कि साक्षात्कारकर्त्ता को उत्तरदाताओं को सोचने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और इसलिए अनिर्देशित साक्षात्कार व्यक्तियों के विचार, दृष्टिकोण और भावना को मालूम करने के लिए तथ्य संकलन की अच्छी प्रणाली है।

निर्देशित और अनिर्देशित साक्षात्कारों के लाभ तथा हानियाँ : इन दोनों साक्षात्कारों के लाभ तथा हानियाँ एक–दूसरे से भिन्न हैं। निर्देशित साक्षात्कार साधारणतया प्रश्नावली व्यवस्थित तथा नियन्त्रित होता है। इसमें दो प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं–बन्द तथा खुले प्रश्न। निर्देशित साक्षात्कार में बन्द प्रश्न तथा अनिर्देशित साक्षात्कार में खुले प्रश्न अधिक पूछे जाते हैं। बन्द और खुले प्रश्नों की अपनी लाभ–हानियाँ एवं सीमाएँ हैं, जो निर्देशित और अनिर्देशित साक्षात्कारों के लाभ और हानियों को भी प्रभावित करती हैं। बन्द प्रश्नों को आसानी से पूछा जा सकता है और इनका विश्लेषण भी कम खर्चीला होता है। खुले प्रश्नों के विश्लेषण, वर्गीकरण, सारणीयन इत्यादि समय, धन और श्रम अधिक चाहता है। बन्द प्रश्न में सम्भावित उत्तर प्रश्न के नीचे दिए होते हैं जो उत्तरदाताओं को प्रश्नों को समझने में भी सहायता देते हैं जबकि खुले प्रश्नों मे इसकी व्यवस्था नहीं होती है। जहाँ निर्देशित साक्षात्कार के लाभ हैं वहाँ इसमें कमियाँ भी हैं। इसमें बन्द प्रश्नों के अधिक उपयोग के कारण उत्तरदाता प्रश्नो के उत्तर देने के लिए बँध जाता है और वह नहीं जानता, या मालूम नहीं, या कह नहीं सकता उत्तर नहीं देता है क्योंकि ये उत्तरों के क्रम में सबसे अन्त में होते हैं उत्तरदाता प्रश्नों से सम्भावित उत्तरों में से कुछ के आगे सही (√) को चिह्न लगा देता है।

इसके समानान्तर अनिर्देशित साक्षात्कार में खुले प्रश्न पूछे जाते हैं जिसमें उत्तरदाता से और अधिक पूछने की सम्भावना रहती है जिससे कि वह प्रश्न से सम्बन्धित अपनी जानकारी और विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। अतः बन्द प्रश्न जहाँ पक्षपातपूर्ण उत्तर देने के लिए प्रभावित करते हैं वहाँ खुले प्रश्नों में यह बात नहीं होती है। निर्देशित साक्षात्कारों में प्रश्नों की शब्दावली सभी उत्तरदाताओं के लिए समान होती है और भिन्न–भिन्न उत्तरदाता उनके अर्थ अलग–अलग लगाते हैं जिससे उनके उत्तरों में भी भिन्नता आ जाती है। बन्द प्रश्न कुछ वास्तविकताओं से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित करने के लिए अधिक उपयोगी होते हैं, जैसे आयु, शिक्षा, व्यवसाय, मकान का किराया इत्यादि।

निर्देशित साक्षात्कार अधिक खर्चीली प्रणाली है। पहले प्रश्नावलियाँ भेजी जाती हैं और जब प्रश्नावलियाँ केवल 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत ही लौटकर आती हैं तब निर्देशित साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक सूचनादाता के पास जाना होता है। इसलिए यह प्रणाली अधिक खर्चीली हो जाती है।

अनिर्देशित साक्षात्कार मे एक साक्षात्कार की तुलना दूसरे साक्षात्कार से करना बहुत कठिन है। इस साक्षात्कार के अन्तर्गत (केन्द्रित पुनरावृत्ति और गहन) खुले प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्नों को पूछने, क्रम को बदलने तथा शब्दावली को बदलने के लिए स्वतन्त्र होता है। यह स्वतन्त्रता जहाँ एक ओर अच्छी जानकारी, (विचार, दृष्टिकोण, भावना, विश्वास आदि) प्राप्त करने के लिए है वहाँ इसकी कुछ कमियाँ भी हैं। अनिर्देशित साक्षात्कार खुले प्रश्नों पर आधारित है इसलिए यह अधिक खर्चीली प्रणाली है। निर्देशित साक्षात्कार अच्छे साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा ही लिया जा सकता है जो प्रशिक्षित तथा अनुभवी होते हैं अन्यथा इस प्रकार के साक्षात्कार किसी भी उपयोगिता के नहीं होते हैं। इस साक्षात्कार विधि से उपकल्पनाओं की जाँच भी नहीं की जा सकती है। ये साक्षात्कार निर्देशित, व्यवस्थित और नियन्त्रित साक्षात्कारों से कम निपूर्ण विधियाँ हैं।

3. केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview) :

यह साक्षात्कार मर्टन और उनके साथियों द्वारा प्रयुक्त एवं परिभाषित किया गया है। उन्होंने अपने लेख मे इस पर काफी विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार केन्द्रित साक्षात्कारों में साक्षात्कारकर्त्ता का मुख्य कार्य किसी विशेष अनुभव से सम्बन्धित सूचनादाता का ध्यान केन्द्रित करना है, जिसके लिए साक्षात्कारकर्त्ता पहले से विषय से सम्बन्धित प्रश्न और उसके विभिन्न पहलुओं की अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेता है। मर्टन और केण्डल ने केन्द्रित साक्षात्कार को अन्य साक्षात्कारों के निम्न लक्षणों के आधार पर अलग किया है :

(1) केन्द्रित साक्षात्कार केवल उन व्यक्तियों से किया जाता है जो किसी विशेष घटना में भाग ले चुके हैं,

(2) यह उन घटनाओं का परिस्थितियों से सम्बन्धित साक्षात्कार होता है। जिनका पहले से अध्ययन किया जा चुका है।

(3) यह साक्षात्कार निर्देशिका के आगे बढ़ता है। साक्षात्कार निर्देशिका में अध्ययन से सम्बन्धित मुख्य–मुख्य पहलुओं और प्रश्नों को निर्धारित कर लिया जाता है और उपकल्पना से सम्बन्धित तथ्य एकत्र किए जाते हैं।

(4) यह साक्षात्कार सूचनादाता के अनुभव पर केन्द्रित होता है जैसे उनके दृष्टिकोण, भावना, प्रतिक्रियाएँ इत्यादि। यंग का कहना है कि केन्द्रित साक्षात्कार अर्द्धनिर्देशित साक्षात्कार है। केन्द्रित साक्षात्कार के द्वारा उन सूचनाओं को एकत्र करना सम्भव है जो कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ, भावनाएँ इत्यादि से पहले ही परिस्थिति से सम्बन्धित पहलुओं का विश्लेषण कर चुका होता है और उसके बाद साक्षात्कार लेने जाता है। यह साक्षात्कार बहुत अधिक सतर्कता, तैयार और कुशलता चाहता है।

4. पुनरावृत्ति–साक्षात्कार (Repeated Interview) :

यंग ने इस साक्षात्कार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि यह साक्षात्कार विशेष रूप से ऐसे अध्ययनों के लिए लाभकारी है जिसमें हम किसी विशिष्ट सामाजिक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के विकास का अध्ययन करना चाहते हैं। जैसे प्रगतिशील क्रिया, कारक, दृष्टिकोण जो किसी निश्चित दिए हुए व्यवहार के प्रतिमान या सामाजिक परिस्थिति का निर्णय करते हैं। इस साक्षात्कार के द्वारा हम दृष्टिकोण, क्रिया या प्रगतिशील विचारों के विकास का अध्ययन कर सकते हैं। पुनरावृत्ति साक्षात्कार समय, धन तथा श्रम के दृष्टिकोण से अधिक खर्चीली प्रणाली है। यह साक्षात्कार केन्द्रिय साक्षात्कार की तरह एक विशिष्ट घटना और विशिष्ट तथ्यो के संकलन के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा एकत्र तथ्यों का सारणीयन कर सकते हैं, माप सकते हैं। इसमें साँख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग कर सकते हैं।

5. गहन साक्षात्कार (Depth Interview) :

एफ. कार्फ के अनुसार गहन साक्षात्कार वह है जिसका उद्देश्य अचेतन तथा दूसरे प्रकार की वह सामग्री जो विशेष रूप से व्यक्तित्व की गतिशीलता और संप्रेषण से सम्बन्धित होती है, को मालूम करना है। गहन साक्षात्कार सामान्यतया एक दीर्घ विधि है जिसका निर्माण स्वतन्त्र रूप से प्रभावित सूचना को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इसका उपयोग विशेष उपकरणों के साथ जैसे स्वतन्त्र सम्पर्क तथा अन्य तकनीकी के साथ कर सकते हैं। जब इसका उपयोग बुद्धिमत्तापूर्ण और सतर्कतापूर्ण, विशेष प्रशिक्षण प्राप्त साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किया जाता है। तब गहन साक्षात्कार सामाजिक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करता है। इसके बिना तुरन्त उत्तर प्राप्त नहीं हो सकते अवलोकित व्यवहार और कहे गए या बताए गए विचार तथा दृष्टिकोणों को

समझने के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। यंग का कहना है कि अगर अनुसन्धानकर्त्ता विशेष प्रशिक्षित नहीं है तो उत्तम यही है कि गहन साक्षात्कार का उपयोग नहीं किया जाए।

2.10.5. साक्षात्कार प्रविधि के प्रमुख चरण

(Main Steps of Interview Technique)

साक्षात्कार–प्रविधि संचालित किस प्रकार की जाए, एवं इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाए, इस पर काफी चिन्तन–मनन हुआ है; साथ ही इस पर अथाह साहित्य भी लिखा जा चुका है। इस विषय पर लिखने वालों में हरबर्ट और हाईमैन (Herbert and Hyman), बिन्धम, वाल्टर व मूर (Binghom, Walter & Moore), ओल्डफील्ड (Oldfield), वेनलैंड व ग्रौस (Weinland D. & Gross M.U.) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वास्तव में साक्षात्कार–प्रविधि का प्रयोग भी इतना सरल नहीं है जितना कि प्रायः समझा जाता है। अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से साक्षात्कार की प्रक्रिया को सुगमतापूर्वक और नियमानुसार चलाने के लिए उसके कुछ प्रमुख चरण होते हैं। ये प्रमुख चरण निम्नलिखित हो सकते हैं –

(क) साक्षात्कार की तैयारी

(Preparation of Interview)

साक्षात्कार करने से पूर्व (अर्थात् किसी व्यक्ति या समूह, जिसका कि अध्ययन किया जा रहा है, से साक्षात्कार करने से पूर्व) उसकी तैयारी कर लेना अति आवश्यक है, क्योंकि बिना प्राथमिक तैयारियों के साक्षात्कार उचित रूप से संचालित नहीं हो पाता। साक्षात्कार की तैयारी में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें अति आवश्यक होती हैं –

1. समस्या की पूर्ण जानकारी (Full Knowledge of the Problem) : साक्षात्कार–प्रविधि के प्रथम चरण की पहली मुख्य बात यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अध्ययन–विषय की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में साक्षात्कारकर्त्ता अथवा अनुसन्धानकर्त्ता को अध्ययन–समस्या के सभी पहलुओं का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। उसका मुख्य कारण यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को 'साक्षात्कार–निर्देशिका' एवं अनुसूची का निर्माण करना पड़ता है। इतना ही नहीं, क्षेत्र में उसको साक्षात्कारदाता के अनेक प्रश्नों एवं वाद–विवादों का भी सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अध्ययन–विषय का पर्याप्त ज्ञान नहीं है तो वह साक्षात्कारदाता के प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देने में असमर्थ

रहेगा जो कि अनुसन्धान की सफलता के लिए घातक है। अतः सर्वप्रथम साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अध्ययन–विषय के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

2. साक्षात्कार–निर्देशिका की रचना करना (Construction of Interview Guide) : जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि साक्षात्कार–प्रविधि में साक्षात्कार–निर्देशिका का अपना पृथक् ही महत्व है। इसकी रचना करना एक आवश्यक शर्त है। साक्षात्कार की तैयारी करते समय इसका निर्माण किया जाता है। साक्षात्कार–निर्देशिका एक लिखित प्रलेख होती है जिसमें अध्ययन–समस्या के विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध रूप में निर्देश दिया होता है। इसमें अनुसूची की भाँति निश्चित प्रश्न नहीं दिए होते हैं, वरन् साक्षात्कार करने की संक्षिप्त रूप में पद्धति, समस्या के विभिन्न पहलू एवं अन्य आवश्यक निर्देश दिए रहते हैं और ये सभी बिन्दुओं (Points) के रूप में दिए रहते हैं – प्रश्नों के रूप में नहीं। इतना ही नहीं, नीचे फुटनोट में समस्या से सम्बन्धित विभिन्न इकाइयों एवं कठिन शब्दों की उचित परिभाषा भी दी हुई होती है ताकि कार्यकर्त्ता उनको सूचनादाताओं को सरलता के साथ समझा सके। यदि हम संक्षेप में यह कहें कि "साक्षात्कार–निर्देशिका अध्ययन–समस्या की योजना का क्रमबद्ध एवं संक्षिप्त वर्णन है" तो अनुचित न होगा। **साक्षात्कार–निर्देशिका की उपयोगिता (Utility of Interview Guide) :** इस बात पर दो मत नहीं हो सकते कि साक्षात्कार–प्रविधि के संदर्भ में साक्षात्कार–निर्देशिका का अत्यधिक महत्व है। इसकी उपयोगिता को निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट किया जा सकता है –

साक्षात्कार–निर्देशिका का प्रथम लाभ यह है कि इसकी पूर्व रचना करने से अध्ययन में एकरूपता आ जाती है। यदि अध्ययन समस्या जटिल है तो विशाल जनसमूह का अध्ययन करना होगा और उस अवस्था में साक्षात्कार भी अधिक करने होंगे जिसको कि केवल एक ही व्यक्ति संचालित नहीं कर पाएगा अर्थात् अनेक कार्यकर्त्ताओं के द्वारा साक्षात्कार किए जाएँगे और इस अवस्था में साक्षात्कार–निर्देशिका के द्वारा सभी कार्यकर्त्ताओं के साक्षात्कार में एकरूपता आ सकेगी।

साक्षात्कार–निर्देशिका का दूसरा लाभ यह है कि इससे समस्या के सभी पहलुओं का विस्तृत अध्ययन सम्भव हो जाता है, क्योंकि साक्षात्कार–निर्देशिका में इन सभी पहलुओं को नोट कर लिया जाता है। अतः कार्यकर्त्ता द्वारा उनके भूल जाने की सम्भावना नहीं रहती।

इसका तीसरा लाभ यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को अपनी स्मरणशक्ति पर विशेष दबाव नहीं डालना पड़ता। जब साक्षात्कारकर्त्ता स्वतन्त्र साक्षात्कार कर रहा होता है तो अक्सर वह भावात्मक वातावरण में बह जाता है और उसके लिए मूल विषय से बाहर चले जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कार–निर्देशिका उसको ऐसा करने से रोकती है।

अन्त में, साक्षात्कार–निर्देशिका अध्ययन में क्रमबद्धता आने में मदद करती है और साक्षात्कार की सफलता के लिए क्रमबद्धता एक आवश्यक शर्त है। कभी–कभी प्रश्नों में क्रमबद्धता न होने से साक्षात्कारदाता हड़बड़ा उठता है और गलत सूचनाएँ देने लगता है या साक्षात्कार समाप्त कर देता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए साक्षात्कार–निर्देशिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह ठीक है कि साक्षात्कार–निर्देशिका साक्षात्कार के संचालन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यह पूरे साक्षात्कार को ही संचालित करती है, यद्यपि साक्षात्कार को कुछ आवश्यक निर्देश अवश्य देती है। इसका प्रयोग उसी सीमा तक करना चाहिए कि वार्तालाप में विघ्न न पड़े।

3. साक्षात्कारदाताओं का चुनाव (Selection of Interviewers) : साक्षात्कार–निर्देशिका तैयार करने के बाद साक्षात्कारदाताओं का चुनाव होता है। साक्षात्कारदाताओं का चुनाव वास्तव में अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं पर अध्ययन निर्भर करता है क्योंकि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं के स्रोत यही साक्षात्कारदाता ही होते हैं। साक्षात्कारदाताओं का चुनाव किसी भी प्रकार की निदर्शन प्रविधि (Sampling Technique) द्वारा किया जा सकता है। यह अध्ययन–समस्या पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की निदर्शन–प्रविधि को अपनाया जाए। कभी–कभी साक्षात्कारदाताओं की खोज भी करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ, यदि सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर व नर्सों की स्थिति का अध्ययन करना है तो अस्पताल–अधिकारियों से डॉक्टर व नर्सों के पते आदि आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

4. साक्षात्कारदाताओं के सम्बन्ध में ज्ञान (To know About the Interviewers) : साक्षात्कारदाताओं के चयन के उपरान्त उनके बारे में थोड़ा ज्ञान भी प्राप्त करना आवश्यक है। अध्ययन अथवा अनुसन्धान की सफलता, सफल साक्षात्कार पर निर्भर करती है क्योंकि यदि साक्षात्कार सफल नहीं होता तो इसका तात्पर्य यह है कि सूचनाएँ भी सही प्राप्त नहीं हुई हैं। इस अवस्था से बचने के लिए यह आवश्यक है कि साक्षात्कारदाताओं के सम्बन्ध में

थोड़ा ज्ञान प्राप्त किया जाए। कौन व्यक्ति किस प्रकृति का है, किस विचार का है? उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि क्या है? ये सब बातें जान लेने से साक्षात्कार में सफलता की अधिक आशा रहती है।

5. साक्षात्कार के लिए उचित समय एवं स्थान का निर्धारण (To Determine Proper Time and Place for Interview) : साक्षात्कार की तैयारी के सम्बन्ध में अन्तिम बात जो कम महत्वपूर्ण नहीं है, यह है कि साक्षात्कार के लिए उचित समय एवं स्थान का निर्धारण कर लेना चाहिये। इसमें एक बात, उल्लेखनीय यह है कि समय एवं स्थान का निर्धारण साक्षात्कारदाता की सलाह से ही करना चाहिए उसके लिए साक्षात्कारदाता से पत्र, टेलीफोन या व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। साथ ही, प्रथम सम्पर्क स्थापित करते समय परिचय पत्र भी भेजना चाहिए ताकि साक्षात्कारदाता को किसी प्रकार का सन्देह न हो। स्थान का चुनाव भी पहले ही होना चाहिए, इस सम्बन्ध में यदि गोपनीयता रहे तो अधिक अच्छा रहेगा। वास्तव में समय एवं स्थान के पूर्व निर्धारण से साक्षात्कारकर्त्ता का काफी समय एवं धन बच जाता है। उसे बेकार ही अनेकों बार सूचनादाता के पास नहीं जाना पड़ता।

(ख) साक्षात्कार की संचालन प्रक्रिया (Piloting Process of Interview) :

साक्षात्कार की तैयारी करने के उपरान्त मुख्य साक्षात्कार की ओर अग्रसर होना पड़ता है। इस स्तर पर सूचनादाता और अनुसन्धानकर्त्ता आमने–सामने होता है और उनमें अन्तःक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है। इसलिए गुडे एवं हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि वास्तव मे मूल रूप से साक्षात्कार सामाजिक अन्तःक्रिया की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के निम्नलिखित सामाजिक–मनोवैज्ञानिक पहलू हैं :

1. सम्पर्क की स्थापना (Establishment of Contact) : साक्षात्कार में सामाजिक अन्तःक्रिया की प्रथम सीढ़ी सम्पर्क की स्थापना है। पूर्वनिर्धारित स्थान एवं समय पर साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारदाता से सम्पर्क स्थापित करता है। सबसे प्रथम साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कारदाता से उचित अभिवादन के साथ मिलना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखनी आवश्यक है कि साक्षात्कारदाता से मिलने जाते समय साक्षात्कारकर्त्ता को सौम्य एवं गम्भीर पोशाक में होना चाहिए। चेहरा खिला हुआ एवं हँसमुख व्यक्तित्व होना चाहिए। उसे अपने गले में रेशमी रूमाल या आँख पर काला चश्मा या इत्र लगाकर नहीं जाना चाहिए। साक्षात्कारदाता से मिलते ही तुरन्त अपना परिचय–पत्र देना चाहिए। यदि

परिचय–पत्र छपा हुआ हो तो और भी अच्छा है क्योंकि इससे साक्षात्कारदाता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

2. साक्षात्कार का प्रारम्भ – उद्देश्य का स्पष्टीकरण एवं सहयोग की प्रार्थना (Beginning of Interview Clarification of Object and Request for Co-operation) :

साक्षात्कारदाता से मिलने के उपरान्त अपना परिचय–पत्र देकर अपने उद्देश्य का चतुरता से स्पष्टीकरण कर देना चाहिए कि मैं अमुक संस्था के अनुसन्धान कार्य में लगा हुआ हूँ अथवा मैं अमुक विषय पर शोध कार्य कर रहा हूँ।। यदि साक्षात्कारदाता यह पूछे कि वह उसके पास ही क्यों आए हैं, तो इसका रहस्य भी अर्थात् जिन निदर्शन–प्रविधि के द्वारा उसका नाम चुना गया, बता देना चाहिए; साथ ही कुछ अन्य व्यक्तियों का नाम भी, जो कि निदर्शन में हों, बता देना चाहिए। इससे साक्षात्कारदाता को आपके सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास हो जाएगा जिसका कि साक्षात्कार पर भी अधिक अच्छा असर पड़ेगा।

उद्देश्य स्पष्ट करने के उपरान्त साक्षात्कारकर्त्ता को उससे सहयोग की प्रार्थना करनी चाहिए। उससे यह कहना चाहिए कि उसका सहयोग अनुसन्धान के लिए कितना आवश्यक है। साथ ही, उससे यह भी कहना चाहिए कि बिना उसके सहयोग के समाज की 'यह' जटिल समस्या हल न हो पाएगी। इसके उपरान्त साक्षात्कारदाता को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई सभी सूचनाएँ अत्यन्त गोपनीय रखी जाएँगी, क्योंकि उनका उद्देश्य विशुद्ध वैज्ञानिक अनुसन्धान या शोध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

3. प्रमुख साक्षात्कार का प्रारम्भ (Beginning of Main Interview) : साक्षात्कार के उद्देश्य को स्पष्ट करने एवं सहयोग की याचना के उपरान्त प्रमुख साक्षात्कार का प्रारम्भ करना चाहिये। इस स्तर पर साक्षात्कारकर्त्ता को पहले प्राथमिक प्रश्न पूछने चाहिएँ, जैसे आपका नाम क्या है क्या आप अपने परिवार के सदस्यों की संख्या बताएंगे, आपकी आयु क्या है, आदि–आदि। इसके पश्चात् अध्ययन–विषय से सम्बन्धित प्रश्न पूछना चाहिए। इसमें से पहले सरल एवं सामान्य प्रश्न पूछना चाहिए। हाँ, बाद में व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में पूछा जा सकता है। साथ ही, आरम्भ में साक्षात्कारकर्त्ता को बड़ा ही सतर्क, गम्भीर तथा तटस्थ रहना चाहिए। साक्षात्कारदाता को बोलने का अधिक अवसर देना चाहिए। स्वयं बहुत कम बोलना चाहिए, क्योंकि यदि साक्षात्कारकर्त्ता अधिक बोलता है तो कभी–कभी अनुभवों पर वाद–विवाद भी छिड़ जाता है, साथ ही साक्षात्कारदाता को अधिक कहने का अवसर भी प्राप्त नहीं होता। वास्तव में साक्षात्कारदाता से ही सूचनाएँ प्राप्त करना

साक्षात्कार का प्रमुख उद्देश्य होता है। अतः साक्षात्कारकर्त्ता को कम बोलना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कारदाता के पूछने पर भी किसी दशा में किसी दूसरे व्यक्ति का अनुभव नहीं बताना चाहिए। इससे साक्षात्कारदाता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

4. कुछ उत्साहवर्धक वाक्य दोहराना (To Repeat Some Encouraging Sentences) :

साक्षात्कार लेते समय यह आवश्यक हो जाता है कि साक्षात्कारकर्त्ता कुछ वाक्यों को बार–बार दोहराएं ताकि साक्षात्कारदाता का उत्साह बढ़े और वह साक्षात्कार में अधिक रुचि ले। ये वाक्य इस रूप में हो सकते हैं – "आपकी सूचना ने वास्तव में इस सामाजिक समस्या को हल करने में काफी सहायता की है।" "वाह! यह तो आपने एक नई बात, जो कि अत्यधिक महत्वपूर्ण है, सुनाई है।" "आपकी इस सूचना ने तो मुझे बिल्कुल अंधेरे से प्रकाश में ला दिया।" परन्तु ये वाक्य ऐसे समय पर और इस प्रकार कहने चाहिएं कि साक्षात्कारदाता को यह न लगे कि यह उसकी चापलूसी कर रहा है नहीं तो इसका प्रभाव उल्टा ही पड़ेगा।

5. क्षोभकर प्रश्नों को करने से बचना (To Avoid Irritating Points) : साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्त्ता को ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिएँ जिनसे कि साक्षात्कारदाता क्रोधित हो जाए, क्योंकि ऐसा होने से साक्षात्कार तुरन्त ही समाप्त कर देना पड़ेगा और अध्ययन भी अधूरा रह जाएगा। उदाहरण के लिये, किसी चोर से यह कहना कि 'चोरी करना बड़ा गंदा काम है, तुमने चोरी क्यों की – वायदा करो कि अब नहीं करोगे।' ऐसे प्रश्न पर साक्षात्कारदाता का क्रोधित होना स्वाभाविक ही है जो कि सफल साक्षात्कार के लिये हानिकारक सिद्ध होता है।

6. स्मरण कराना (Recall) : कभी–कभी ऐसा समय आता है कि साक्षात्कारदाता अपने अनुभवों का वर्णन करते–करते भावनाओं में डुबकी लगाने लगता है और मुख्य विषय से काफी दूर चला जाता है। ऐसे समय पर साक्षात्कारकर्त्ता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सावधानी से उसको मुख्य विषय की याद दिलाए। वह कह सकता है – "हाँ, अभी आप ... के बारे में कुछ कह रहे थे, कृपया उस बारे में कुछ और कहिए!" "हाँ, तो उसका फिर क्या हुआ – वह तो बड़ी अच्छी घटना सुनाई आपने, क्या इसे फिर से सुनाना पसन्द करेंगे।" स्मरण करने में साक्षात्कारकर्त्ता को अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है जिससे कि साक्षात्कारदाता को यह महसूस हो कि वास्तव में वह बात अत्यधिक महत्वपूर्ण

है। साथ ही, साक्षात्कारदाता को यह अनुभव न होने पाए कि यह उससे कोई भेद की बात उगलवाना चाहता है। अतः यह आवश्यक है कि यदि साक्षात्कारकर्त्ता यह अनुभव करे कि साक्षात्कारदाता अमुक बात बताने का इच्छुक नहीं है, तो उस पर अधिक दबाव डालना उचित न होगा। वास्तव में साक्षात्कारकर्त्ता को हर क्षण सतर्क रहना पड़ता है।

7. उचित एवं समयानुसार प्रश्न (Adequate and Timely Questions) : साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार लेते समय सदैव ही उचित प्रश्न पूछने चाहिए। उचित प्रश्नों का तात्पर्य यह है कि अत्यधिक व्यक्तिगत प्रश्न नहीं पूछने चाहियें। यदि किसी व्यक्ति से उसकी प्रेमिका के बारे में पूछा जायेगा या किसी व्यक्ति से उसके गुप्त सम्बन्धों में बारे में पूछा जायेगा तो वह इन प्रश्नों का उत्तर देने की अपेक्षा साक्षात्कार बन्द कर देगा। उचित प्रश्न पूछने के साथ–साथ प्रश्नों का समयानुसार होना भी अति आवश्यक है। अर्थात् एकाएक एक विषय छोड़कर दूसरे विषय पर प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। जैसे किसी के वैवाहिक जीवन पर प्रश्न पूछते–पूछते उसके राजनैतिक जीवन के बारे में प्रश्न पूछना ठीक नहीं होगा। ऐसा होने पर साक्षात्कारदाता क्रोधित भी हो सकता है।

8. कुछ अन्य सामान्य बातें (Some Other General Things) : उपरोक्त बातों के अतिरिक्त भी कुछ बातें हैं जिन्हें साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार लेते समय ध्यान में रखना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता को प्रश्न ऐसे पूछने चाहिएँ जो कि जटिल न हों। साथ ही, ऐसे प्रश्न भी नहीं पूछने चाहिएँ, जिनके कि अति संक्षिप्त उत्तर आने की सम्भावना हो क्योंकि वर्णनात्मक प्रश्नों से अधिक उचित एवं उपयुक्त सूचना प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। इतना ही नहीं, साक्षात्कारकर्त्ता को पथ–प्रदर्शन करने वाले प्रश्न, जैसे 'क्या आप सिनेमा देखना पसन्द करते हैं?' नहीं पूछने चाहिएँ। ऐसी दशा में साक्षात्कारदाता प्रश्न के अनुसार ही 'हाँ' में उत्तर देता है। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को 'विषय' पर रहने का प्रयास करना चाहिए। विषय से इधर–उधर भटकने से साक्षात्कारदाता का विश्वास भी उठ जाता है और वह भी इधर–उधर बहकने लगता है।

9. सूचना को नोट करना (Noting of Information) : साक्षात्कार के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात सूचना नोट करने की भी है। जब साक्षात्कार स्वतन्त्र वर्णन के रूप में होता है तो सूचना नोट करना एक और भी जटिल समस्या का रूप धारण कर लेता है क्योंकि बातचीत के समय अधिक लिखते रहने से वार्तालाप का प्रवाह रुक जाता है और साक्षात्कार समाप्त होने का डर रहता है। अतः संकेतलिपि या आशुलिपि (Shorthand) या

संकेत–शब्दों का, संक्षिप्त शब्दों (Abbreviations) का प्रयोग किया जा सकता है। टेपरिकार्ड आदि का प्रयोग भी अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होता है, परन्तु इससे साक्षात्कारदाता को सन्देह हो जाता है। फिर भी अपनी स्मरणशक्ति पर अत्यधिक विश्वास न करके किसी–न–किसी रूप में कुछ–न–कुछ नोट अवश्य करते रहना चाहिए। हाँ, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उससे वार्तालाप के प्रवाह में किसी प्रकार का विघ्न न पड़ने पाए, यही कुशल साक्षात्कारकर्त्ता की वास्तविक कसौटी है।

(ग) साक्षात्कार का नियन्त्रण, निर्देशन एवं प्रमाणीकरण

(Controlling, Directing and Validating of the Interview)

साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्त्ता का एक अति आवश्यक कर्त्तव्य साक्षात्कार को नियन्त्रित, निर्देशित एवं प्रमाणीकृत भी करना है। कभी–कभी ऐसा होता है कि साक्षात्कारदाता वर्णनात्मक प्रश्न का उत्तर देते–देते भावनाओं में खो जाता है और ऐसी बातें भी सुनाने लगता है जिनका कि जरा भी मतलब अनुसन्धान विषय से न हो। ऐसे समय में साक्षात्कारकर्त्ता को अत्यन्त सावधानी से कार्य करना पड़ता है क्योंकि यदि वह एकदम उसको अपना वर्णन करने के लिए मना करता है तो हो सकता है कि उसके अहम् भाव को चोट लगे और आगे वह साक्षात्कार न करे। इससे सूचनाएँ एवं अध्ययन अधूरा ही रह जाएगा। अतः ऐसे समय यह कहकर अच्छा हाँ, यह बात मैंने भी सुनी थी, वास्तव में अत्यन्त दुःखद है, इस प्रकार की बातों से यदि साक्षात्कारदाता मान जाए तो ठीक है, वरन् उसकी बात को उदारतापूर्वक सुन लेना ही उचित रहेगा – यही साक्षात्कार के नियन्त्रण एवं निर्देशन के सम्बन्ध में आवश्यक बात है। जहाँ तक प्रमाणीकरण का प्रश्न है इसमें निम्नलिखित बातें अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं :

1. साक्षात्कारदाता द्वारा जो सूचना दी गई हैं कहीं उसमें परस्पर विरोधीपन तो नहीं है, यदि ऐसा है तो उसका कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिए।
2. यदि यह आभास हो जाए कि साक्षात्कारदाता साक्षात्कारकर्त्ता को धोखा देने का प्रयत्न कर रहा है और झूठ बोल रहा है तो सदैव साक्षात्कारकर्त्ता को अपने को इस प्रकार दिखावा (Show) करने का प्रयत्न करना चाहिए कि जैसे यह तथ्य उसे पहले से ही मालूम है क्योंकि इससे साक्षात्कारदाता पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ेगा। इसके विपरीत यदि साक्षात्कारदाता से कहीं यह कह दिया जाए कि वह झूठ बोल रहा है तो शायद साक्षात्कार तुरन्त समाप्त हो जाएगा। ऐसी स्थिति से सदैव ही बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

3. इस स्थिति से बचने का एक उपाय यह भी है कि साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से क्रास प्रश्नों (Cross Questions) के द्वारा सही सूचना प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह उपाय कठिन है तथापि अत्यधिक वैज्ञानिक है।

(घ) साक्षात्कार की समाप्ति (Closing of Interview) :

जब साक्षात्कारदाता सब कुछ कह चुका है तथा उसके कहने की गति अति धीमी हो जाती है या वह बीच–बीच में रुकने लगता है तो समझना चाहिए कि अब साक्षात्कार समाप्ति की स्थिति है। कभी–कभी ऐसा होता है कि सारी बात कह चुकने के बाद साक्षात्कारदाता एकाएक भय एवं आत्मग्लानि की भावना से भर जाता है कि व्यर्थ ही उसने अपना गुप्त रहस्य एक अपरिचित व्यक्ति को बता दिया। वास्तव में इस प्रकार की भावना साक्षात्कार की सफलता की परिचायक है; हाँ, इस भावना को यथासम्भव दूर अवश्य कर देना चाहिए। यदि चल रहे साक्षात्कार के बाद और आगे भी साक्षात्कार करने की आवश्यकता महसूस हो, तब यह साक्षात्कार उस समय बन्द करना चाहिए जबकि किसी महत्वपूर्ण बात पर बातचीत करनी शेष रही हो ताकि आगे के साक्षात्कार में उसी बात से बातचीत शुरू हो सके। प्रायः प्रत्येक स्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कारदाता की कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। वह कह सकता है 'आपने हमें सहयोग देकर हमारा अत्यधिक उपकार किया है।' अन्त में उसके द्वारा प्रदान की गई सभी सूचनाओं को गुप्त रखने का आश्वासन दिया जाना चाहिए। तत्पश्चात् 'नमस्कार' कहकर, अथवा 'अच्छा फिर मिलेंगे' कहकर साक्षात्कार की समाप्ति कर देनी चाहिए।

(ङ) रिपोर्ट (Report) :

साक्षात्कार करने के बाद जब साक्षात्कारकर्त्ता घर लौटता है तो उसका सर्वप्रथम कार्य साक्षात्कार की रिपोर्ट को लिखना होता है। यह भी अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य है। किसी भी स्थिति में रिपोर्ट लिखने का कार्य टालना नहीं चाहिये क्योंकि अनुसन्धान के निष्कर्ष इसी रिपोर्ट पर आधारित होते हैं। अतः प्रत्येक दशा में साक्षात्कारकर्त्ता को पहले रिपोर्ट लिखने का कार्य करना चाहिये। रिपोर्ट लिखते समय साक्षात्कार लेते समय लिये गये संक्षिप्त नोटों की सहायता आवश्यक है। इसके अतिरिक्त साक्षात्कारकर्त्ता को अपनी स्मरणशक्ति पर विश्वास करना पड़ता है। कुछ भी हो, साक्षात्कारकर्त्ता को रिपोर्ट लिखते समय सदैव यह प्रयत्न करना चाहिये कि रिपोर्ट सत्य एवं अत्यधिक पक्षपात रहित हो।

2.10.6 एक अच्छे साक्षात्कारकर्त्ता के कार्य तथा गुण (लक्षण)

(Role and Qualities of a Good Interviewer)

साक्षात्कार की सफलता में साक्षात्कारकर्त्ता का वास्तव में अत्यधिक महत्व है। वास्तव में सफल साक्षात्कार का रहस्य कुशल साक्षात्कारकर्त्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक बार साक्षात्कारदाता साक्षात्कार की अनुमति प्रदान कर दे, फिर तो सारी बात साक्षात्कारकर्त्ता पर ही निर्भर करती है; बल्कि साक्षात्कार की अनुमति देना भी बहुत–कुछ साक्षात्कारकर्त्ता के प्रथम व्यवहार व कुशलता पर निर्भर करता है। साक्षात्कारकर्त्ता में निश्चित ही वे सभी गुण होने अवश्यम्भावी हैं जो कि एक कुशल अनुसन्धानकर्त्ता में होते हैं क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता एक कुशल अनुसन्धानकर्त्ता भी होना चाहिये। साक्षात्कारकर्त्ता में अन्य अनेक विशेष गुण जैसे कुशलता, चतुरता, बौद्धिक ईमानदारी, निष्पक्षता, विनम्रता, प्रेम की भावना आदि गुण होने चाहिएं क्योंकि कुछ सूचनादाता अत्यधिक चतुर एवं मक्कार होते हैं। हो सकता है वे साक्षात्कारकर्त्ता को बेवकूफ बनाने का प्रयत्न करते हैं। कोई साक्षात्कारदाता अत्यधिक मन्द बुद्धि का होता है, तो कोई डरपोक एवं आत्मगत। कोई साक्षात्कारदाता केवल अपनी ही बात कहने का आदी होता है। तो कोई साक्षात्कारकर्त्ता से ही नई–नई बातें सुनने का इच्छुक होता है। कोई साक्षात्कारदाता अधिक बढ़ा–चढ़ाकर बातें करता है, तो कोई आदर्शवादिता के पीछे पड़ा रहता है, कोई साक्षात्कारदाता तो अत्यधिक झूठ बोलने का प्रयत्न करता है, एवं बड़ी मुश्किल से अपने मन की बात कहता है, साक्षात्कारकर्त्ता को इन सभी प्रकार के व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर, उनको प्रसन्न कर, अपने मतलब की बात निकालनी पड़ती है। साक्षात्कारदाता जब अपनी कोई बात लम्बे रूप में सुना रहा होता है तो अनेक बातें गप्पों के रूप में सुना जाता है या फिर कुछ व्यक्ति तो अधिकतर 'हाँ' या 'नहीं' में ही प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। यह साक्षात्कारकर्त्ता की कुशलता पर निर्भर है कि वह कहाँ तक साक्षात्कारदाता को अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करे। इस रूप में उसको साक्षात्कारदाता के भावों एवं मुद्राओं पर विशेष ध्यान रखना होता है और इसके लिए उसको यदि मनोविज्ञान का अच्छा अध्ययन हो तब तो सोने पर सुहागा ही है।

इन सब बातों के अतिरिक्त साक्षात्कारकर्त्ता को बौद्धिक रूप से ईमानदार एवं पक्षपातरहित होना चाहिए; क्योंकि इसके बिना निष्कर्षों में भी वैषयिकता नहीं आने पाएगी, जो कि सामाजिक अनुसन्धानों की एक आवश्यक शर्त है। साक्षात्कारकर्त्ता एक

अनुसन्धानकर्त्ता ही होता है। अतः उसमें भी अनुसन्धानकर्त्ता के सभी गुण होने चाहिएँ तभी वह सफल साक्षात्कारकर्त्ता बन सकता है। उन सभी गुणों का साक्षात्कारकर्त्ता के गुणों का वर्णन करते समय उल्लेख करना चाहिए।

2.10.7 साक्षात्कार की उपयोगिता (Utility of Interview) : सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में साक्षात्कार हर प्रकार से उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में प्रो. गुडे एवं हॉट ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "समकालीन खोज में साक्षात्कार का अधिक महत्व हो गया है क्योंकि वह गुणात्मक साक्षात्कार का पुनर्निर्धारण है।" इसकी उपयोगिता निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होती है –

1. प्रत्येक स्तर के लोगों से सूचना एकत्रित करना (To Collect the Information all Level of Persons) : इस पद्धति का प्रमुख लाभ यह है कि इससे लगभग सभी प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। यदि शैक्षिक सूचना प्राप्त करनी है तो शिक्षा विभाग के सदस्यों, यदि अपराधियों का अध्ययन करना है तो अपराधियों व जेल अधिकारियों से साक्षात्कार के द्वारा समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस तरह यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

2. अमूर्त घटनाओं का अध्ययन (Study of Abstraction) : साक्षात्कार एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा धारणाओं, भावनाओं, संवेगों, विचारों आदि अनेक अमूर्त एवं अदृश्य घटनाओं का भी अध्ययन सम्भव है। इन घटनाओं का निरीक्षण नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर नहीं हैं। इन अमूर्त घटनाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को केवल उत्तरदाता ही जानता है। लेकिन साक्षात्कार के दौरान योग्य एवं कुशल साक्षात्कारकर्त्ता अपने उत्तरदाताओं से इस प्रकार की सभी सूचनाएँ मालूम कर लेता है।

3. पारस्परिक प्रेरणा (Mutual Co-operation) : साक्षात्कार के अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्ति अध्ययन विषय के बारे में वार्तालाप करते हैं। इस तरह साक्षात्कारकर्त्ता व साक्षात्कारदाता दोनों में विचारों का आदान–प्रदान होता रहता है। ऐसी स्थिति में एक की उपस्थिति से दूसरा उत्साहित व प्रेरित होता है। ज्यों–ज्यों बातचीत का क्रम आगे बढ़ता है त्यों–त्यों सम्बन्धित बातें प्रकट होती रहती हैं। यह सब पारस्परिक प्रेरणा का ही परिणाम है और साथ ही प्रेरणा साक्षात्कार के बिना सम्भव भी नहीं है।

4. भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन सम्भव (Possibility of Past Events) : साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा भूतकालीन घटनाओं का भी अध्ययन किया जा सकता है। ऐसा अनुमान

लगाया जाता है कि साक्षात्कारदाता जो भी पूर्वक घटना के बारे में बतला रहा है, अपने अनुभव का परिचय दे रहा है। उसमें अधिक से अधिक प्रमाणिक तथ्य होने की सम्भावना हैं। लेकिन इस प्रकार की परिस्थितियाँ अवलोकन प्रणाली में सम्भव नहीं हैं उसमें केवल उन्हीं घटनाओं का ज्ञान हो सकता है जिनको मानव स्वयं अपनी इंद्रियों से देख रहा है।

5. मनोवैज्ञानिक अध्ययन सम्भव (Possibility of Psychological Study) : साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा साक्षात्कार की उपयोगिता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसके द्वारा व्यक्ति के उद्देश्यों, धारणाओं एवं भावनात्मक प्रत्युतरों के बारे में सही सूचना प्राप्त की जा सकती है। साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारदाताओं के मानसिक भावों के उतार–चढ़ाव का भी अध्ययन करता रहता है। यहाँ तक कि कुशल साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारकर्त्ताओं के दिल की भी बातें जान लेता है। वह धीरे–धीरे इस प्रकार के प्रश्न उत्तरदाताओं से करते चला जाता है जिससे धीरे–धीरे वे अनजाने में अपने दिल की न कहने वाली बात भी कह डालते हैं। इस तरह साक्षात्कार पद्धति द्वारा वैज्ञानिक ढंग से इन सबका अध्ययन आसानी से कर सकते हैं और साथ ही उसमें सफलता भी प्राप्त कर सकते हैं।

6. प्राप्त उत्तरों का सत्यापन सम्भव (Possibility of Verification) : साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा प्राप्त उत्तरों की जाँच सम्भव है। इस सत्यापन का मुख्य कारण है साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्त्ता व साक्षात्कारदाता के बीच खुलकर व स्वतन्त्र रूप से विचारों को स्पष्ट करना। इसलिए एक बार कही गई बात की सत्यता उसके स्पष्टीकरण में प्रकट हो जाती है। साक्षात्कार में केवल किए गए प्रश्नों का उत्तर ही नहीं मिलता बल्कि उसके विस्तार में प्रमाण भी प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए प्राप्त सामग्री अधिक उपयुक्त समझी जाती है।

2.10.8 साक्षात्कार पद्धति की सीमाएँ अथवा दोष (Limitations or Demerits of Interview): साक्षात्कार पद्धति के लाभ के साथ–साथ इस पद्धति की कुछ सीमाएं अथवा दोष भी हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है :

1. स्मरण शक्ति का नितान्त अभाव (Lack of Memory) : साक्षात्कार में सबसे बड़ा दोष यह पाया जाता है कि इसमें प्राप्त सूचनाओं को समयाभाव के कारण तुरन्त उत्तरदाता के सामने अंकित नहीं किया जा सकता है। उसको जो कुछ भी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, इन सबको याद रखना पड़ता है। ये सब निर्भर करता है एक कुशल अध्ययनकर्त्ता पर।

2. योग्य एवं अनुभवी साक्षात्कारकर्त्ता की समस्या (Problem of Experienced Interviewer) : यह सही है कि साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्त्ता की योग्यता पर निर्भर करती है। जब तक साक्षात्कारकर्त्ता का व्यवहार कुशल, मृदुभाषी एवं अनुभवी नहीं होगा तब तक सही व कुशल साक्षात्कारकर्त्ता नहीं कहलायेगा, अब अध्ययन विषय से संबंधित अधिकतर यह समस्या उत्पन्न होती है कि योग्य व अनुभवी साक्षात्कारकर्त्ता का चयन कैसे किया जाए। यही कारण है कि अध्ययन–विषय से संबंधित योग्य अध्ययनकर्त्ता नहीं मिल पाता है। इससे वार्तालाप के दौरान दिए गये प्रश्नों के उत्तर ही अप्रमाणिक एवं अविश्वसनीय हो सकते हैं जिससे सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमी हो सकती है और इस कमी के साथ ही साथ लोगों का विश्वास भी सामाजिक विज्ञान की सत्यता से हट जायेगा। इस तरह ये सबसे बड़ी समस्या है।

3. महंगी (Costly Technique) : सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अन्य प्रविधियों की तुलना में साक्षात्कार के द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करने में अधिक धन, शक्ति व समय की आवश्यकता पड़ती है। प्रयोगशाला के अभाव में ये सारी समस्यायें सामने आती हैं। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में साक्षात्कारकर्त्ता को बार–बार साक्षात्कारदाता के पास जाना पड़ता है, व बड़ी मुश्किल से साक्षात्कार के लिये समय लेता है, इसके साथ ही साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्त्ता का चुनाव करना भी एक समस्या है। अलग–अलग उत्तरदाता से व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार करने में समय व धन काफी मात्रा में खर्च होता है। कभी–कभी तो समय व धन खर्च करने के पश्चात् भी उत्तरदाताओं से सम्पर्क नहीं हो पाता है।

4. उत्तरदाताओं द्वारा उत्पन्न समस्यायें (Problems Created by the Respondents) : अधिकतर अध्ययनों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि साधारणतया उत्तरदाताओं का व्यवहार अध्ययनकर्त्ता के प्रति सहयोगपूर्ण नहीं होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस तरह के अध्ययन विषय से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान से वे लोग समझते हैं कि कोई फायदा नहीं बल्कि हम लोग अध्ययनकर्त्ता के साथ अपना समय बर्बाद करते हैं, ये उत्तरदाताओं की धारणा होती है। इसीलिए अध्ययनकर्त्ता को अधिकतर उत्तरदाताओं की खुशामद करनी पड़ती है तब जा के कहीं उन्हें वास्तविक सूचना प्राप्त हो पाती है। इसके साथ ही साथ अध्ययनकर्त्ता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उसमें हीनता की भावना आने लगती है। उत्तरदाताओं के दोषों को स्पष्ट करते हुए पी.वी. यंग ने लिखा है कि, "समझदार होने के बाद भी उत्तरदाताओं में अक्सर घटनाओं के दोषपूर्ण स्मृति अन्तर्दृष्टि के

अभाव तथा अपनी बात को स्पष्ट रूप से कह सकने की अयोग्यता होती है"। इन सबके कारण साक्षात्कार की प्रविधि दोषपूर्ण हो जाती है। इस सम्बन्ध में पी.वी. यंग ने आगे और लिखा है कि, "साक्षात्कार मुख्य रूप से एक कला है, न कि एक विज्ञान।"

2.11 अनुसूची (Schedule)

सामाजिक अनुसन्धान के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता अध्ययन–विषय से सम्बन्धित सामाजिक तथ्यों का संकलन है। अनुसन्धानकर्त्ता इन तथ्यों को विभिन्न सूचना–स्रोतों (Sources of Information) से एकत्रित करता है। इन स्रोतों को हम मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर सकते हैं–प्रथम तो प्राथमिक स्रोत और दूसरा द्वितीयक स्रोत। प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन–विषय से सम्बन्धित घटनाओं को स्वयं देख–सुनकर अर्थात् निरीक्षण (Observation) कर और सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर उनसे बात–चीत कर एकत्रित करता है। द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन–विषय से सम्बन्धित लिखित प्रलेखों (Written Documents) का अध्ययन कर तथ्यों को एकत्रित करता है। पर इस द्वितीयक स्रोत से हम अध्ययन–विषय से सम्बन्धित बीती हुई (Past) घटनाओं के सम्बन्ध में ही जान सकते हैं। वर्तमान स्थिति का पता तो हमें स्वयं निरीक्षण करके और सम्बन्धित व्यक्तियों से सूचना एकत्रित करके ही लग सकता है। अध्ययन–विषय से काफी अरसे से सम्बन्धित व्यक्ति न केवल महत्वपूर्ण सूचनाओं को प्रदान करते हैं अपितु सामाजिक प्रक्रिया के धारा–प्रवाह से भी हमारा परिचय करवाते हैं। पर सम्बन्धित व्यक्तियों से इस प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाओं को मनमाने ढंग से एकत्रित नहीं किया जा सकता। इसके लिए कोई व्यवस्थित तरीका होना चाहिए जिससे कि केवल उन्हीं तथ्यों को एकत्रित करना सम्भव हो जो कि हमारे अध्ययन–विषय की वास्तविकताओं को सही और संक्षेप में व्यक्त कर सकें और व्यर्थ की सामग्री का ढेर इकट्ठा न होने पाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिन–जिन उपकरणों (Tools) का प्रयोग अनुसन्धानकर्त्ता करता है उनमें से अनुसूची (Schedule) एक है। अनुसूची वास्तव में प्रश्नों की एक लिखित सूची है जिसे कि अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन–विषय की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखकर तैयार करता है जिससे कि उन प्रश्नों का उत्तर सम्बन्धित व्यक्तियों से मालूम किया जा सके और इस प्रकार आवश्यक सूचना एकत्रित करने की प्रक्रिया को एक व्यवस्थित रूप मिले।

2.11.1 अनुसूची : अर्थ एवं परिभाषा (Schedule : Meaning & Definition) :

अनुसूची आँकड़े एवं सूचना संकलित करने का वह माध्यम है जिसमें अनुसन्धानकर्त्ता ऐसे प्रश्नों की सूचि (अनुसूची) तैयार करता है जो उसके अध्ययन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके पश्चात् अध्ययनकर्त्ता इस अनुसूची को लेकर स्वयं उत्तरदाताओं के पास जाता है तथा अनुसूची में लिखे गए प्रश्न पूछता है। आँकड़े एवं सूचनाएँ संकलित करने की इस विधि को ही अनुसूची विधि कहा जाता है।

गुडे तथा हॉट ने अनुसूची को परिभाषित करते हुए लिखा है :

"अनुसूची उन प्रश्नों के एक समूह का नाम है जो साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से आमने–सामने की स्थिति में पूछे और भरे जाते हैं।"

बोगार्डस ने अनुसूची को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "अनुसूची उन तथ्यों को प्राप्त करने की एक औपचारिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो वैषयिक रूप में तथा सरलता से प्राप्त करने योग्य है।"

मैककोर्मिक के शब्दों में, "अनुसूची उन प्रश्नों की एक सूची से अधिक कुछ नहीं है जिनका उत्तर देना प्राक्कल्पनाओं की जाँच के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।"

डॉ. गोपाल ने अनुसूची के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "अनुसूची एक अर्थ में विभिन्न मदों अथवा पक्षों की एक विस्तृत, वर्गीकृत, नियोजित और श्रेणीबद्ध सूची है जिस पर उत्तरदाताओं से सूचना प्राप्त की जाती है।"

अनुसूची की परिभाषा करते हुए मोजर ने लिखा है कि, "जब तक साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा संचालित होती है, यह स्पष्ट रूप से औपचारिक प्रलेख हो सकती है जिसमें आकर्षता की अपेक्षा कुशल क्षेत्र संचालन ही उद्देश्य में कार्यरत विचार है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अनुसूची एक प्रकार की सामग्री संग्रहण हेतु बनायी गई प्रश्नों की सूची है, जिनके उत्तर स्वयं अध्ययनकर्त्ता अपने क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं के आमने–सामने के सम्पर्क द्वारा प्राप्त करता है। इस दृष्टि से अनुसूची में प्रश्नावली से कुछ मौलिक भिन्नता दिखलाई देती है। इस तरह सामाजिक अनुसन्धान में अनुसूची की उपयोगिता बहुत अधिक है क्योकि यह एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा अध्ययनकर्त्ता की अवलोकन शक्ति में अधिकाधिक वृद्धि होती है।

2.11.2 अनुसूची की विशेषताएँ

(Characteristics of Schedule)

विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गई अनुसूची की परिभाषाओं के आधार पर हम इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं। अनुसूची की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

1. अनुसूची अध्ययन–विषय के विभन्न पक्षों से सम्बन्धित अनेक शीर्षकों और प्रश्नों की एक व्यवस्थित और वर्गीकृत सूची है।
2. इसका उपयोग स्वयं अध्ययनकर्त्ता द्वारा उत्तरदाता से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके इस प्रकार किया जाता है जिससे उत्तरदाता अध्ययन–विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ प्रदान कर सके।
3. अनुसूची में अवलोकन के गुणों का समावेश होता है। अध्ययनकर्त्ता केवल प्रश्नों के द्वारा ही सूचनाएँ प्राप्त नहीं करता बल्कि स्वयं भी घटनाओं का अवलोकन करके सूचनाओं की सत्यता को जानने का प्रयत्न करता है।
4. अनुसूची अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखने की भी एक प्रविधि है। इसका तात्पर्य है कि अनुसूची के द्वारा किए जाने वाले अवलोकन और साक्षात्कार में अध्ययनकर्त्ता अपने विषय से अलग नहीं हट पाता।
5. साधारणतया अनुसूची का प्रयोग अशिक्षित उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किया जाता है लेकिन यदि अध्ययन–विषय बहुत जटिल अथवा भावनात्मक प्रकृति का हो तो शिक्षित उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त करने में भी यह प्रविधि बहुत उपयोगी होती है।
6. अनुसूची एक छोटे क्षेत्र में किए जाने वाले अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त होती है लेकिन विशेष परिस्थितियों में एक बड़े क्षेत्र में फैले हुए सीमित संख्या वाले उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एकत्रित करने में भी इसका महत्त्व बहुत अधिक होता है।

2.11.3 अनुसूची के उद्देश्य

(Objects of Schedule)

अनुसूची प्रणाली के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. अनुसूची का उद्देश्य अध्ययन एवं अवलोकन को अधिकाधिक प्रमाणिक एवं वैषयिक बनाना है।

2. इसका उपयोग स्वयं अध्ययनकर्त्ता द्वारा उत्तरदाता से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करके इस प्रकार किया जाता है जिससे उत्तरदाता अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ प्राप्त कर सके।

3. अनुसूची पद्धति में उत्तरदाता को अपनी ही भाषा में उत्तर देने का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार इसमें सही स्थिति के स्पष्टीकरण की अधिक सम्भावना रहती है।

4. अनुसूची में अवलोकन के गुणों का समावेश होता है जो कुछ अध्ययनकर्त्ता प्रत्यक्ष देखता है या अनुभव करता है उसे वह अनुसूची में लिख देता है। इससे गलती की सम्भावना नहीं रहती है।

5. अनुसूची अनुसंधानकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखने की भी एक प्रणाली है, जिससे अनुसंधानकर्त्ता अध्ययन क्षेत्र में मनमाने ढंग से काम नहीं कर सकता है।

6. अनुसूची के प्रयोग से तथ्यों को व्यवस्थित रूप से संकलित किया जा सकता है जिसके द्वारा भविष्य में उनके वर्गीकरण एवं विश्लेषण में अधिक कठिनाई नहीं होती।

7. अनुसूची एक छोटे क्षेत्र में किए जाने वाले अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त होती है। इस प्रकार अनुसूची का प्रयोग विभिन्न उपयोगी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

2.11.4 अनुसूची के प्रकार (Types of Schedule) :

अनुसूची का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण से वर्गीकरण किया है। इनमें मुख्य रूप से लुण्डबर्ग एवं पी.वी. यंग हैं। इन्होंने निम्नलिखित प्रकार से अनुसूची को वर्गीकृत किया है–

1. लुण्डबर्ग का वर्गीकरण : इनके अनुसार अनुसूची को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) वस्तुनिष्ठ तथ्यों को लिपिबद्ध करने वाली अनुसूचियाँ (Schedules for the Recording of Objective Facts).

(ii) अभिवृतियाँ तथा मतों का निर्धारण और उनका परिमाप करने वाली अनुसूचियाँ (Schedules for the Determinations and Measurement of Attitude and Opinion).

(iii) सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की स्थिति और कार्यों को जानने से सम्बन्धित अनुसूचियाँ (Schedules for the Scoring of Status & Functions).

2. पी.वी. यंग का वर्गीकरण : प्रो. यंग ने अनुसूची को निम्न भागों में विभाजित किया है–

(i) अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule)

(ii) निश्चयीकरण अनुसूचियाँ (Rating Schedules)

(iii) संस्था सर्वेक्षण अनुसूचियाँ (Institution Survey Schedules)

(iv) प्रलेखीय अनुसूचियाँ (Document Schedules)

अनेक दूसरे विद्वानों ने भी अनुसूची के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट किया है। इन सभी विवेचनाओं के आधार पर अनुसूची के निम्नांकित पाँच प्रमुख प्रकारों को स्पष्ट किया जा सकता है–

1. अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule) : जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह अनुसूची का वह प्रकार है जिसमें साक्षात्कार के लिए किन्हीं निश्चित प्रश्नों का समावेश नहीं होता। ऐसी अनुसूची का उद्देश्य विभिन्न शीर्षकों अथवा अध्ययन–विषय से सम्बन्धित उन पक्षों को स्पष्ट करना होता है जिनके आधार पर अध्ययनकर्त्ता घटनाओं का स्वयं अवलोकन करके प्रमुख तथ्यों को संकलित कर सके। इस आधार पर अवलोकन अनुसूची को 'अवलोकन प्रदर्शिका' भी कहा जाता है। अध्ययनकर्त्ता ऐसी अनुसूची का दो प्रकार से सहयोग ले सकता है–प्रथम, इसमें अंकित बातें अध्ययनकर्त्ता को विभिन्न तथ्यों का अध्ययन करने के लिए मार्गनिर्देशन दे सकती हैं और दूसरी ओर इसकी सहायता से अध्ययनकर्त्ता अध्ययन–विषय से दूर नहीं हट पाता। इस दृष्टिकोण से अवलोकन अनुसूची का कार्य स्वयं अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण स्थापित करना है।

2. मूल्यांकन अनुसूची (Rating Schedule) : इस प्रकार की अनसूची का उपयोग सूचनादाताओं की मनोवृत्तियों, अभिरुचियों, राय अथवा पसन्द का मूल्याँकन करने के लिए किया जाता है। विभिन्न सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं का मूल्याँकन करने अथवा उनकी तुलनात्मक स्थिति का निर्धारण करने में भी ऐसी अनुसूचियाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। मूल्याँकन अनुसूची में विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों का महत्त्व संख्या में निर्धारित कर लिया जाता है और उत्तरदाता विभिन्न उत्तरों के क्रमिक महत्त्व को समझते हुए एक विशेष उत्तर देता है। इस प्रकार यह मालूम हो जाता है कि कोई व्यक्ति किसी घटना अथवा स्थिति के कितने पक्ष या विपक्ष में है।

3. प्रलेख अनुसूची (Document Schedule) : पी.वी. यंग के अनुसार "प्रलेख अनुसूचियों का उपयोग ऐसी सामग्री का आलेखन करने के लिए किया जाता है जिन्हें विभिन्न प्रकार के प्रलेखों, व्यक्तिगत जीवन इतिहासों तथा अन्य प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।" इसका

तात्पर्य है कि ऐसी अनुसूची उत्तरदाताओं की सहायता से द्वैतीयक सामग्री के स्रोतों को जानने के एक सरल माध्यम के रूप में कार्य करती है।

4. संस्था सर्वेक्षण अनुसूची (Institution Survey Schedule) : इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग किसी संस्था जैसे धर्म, परिवार, विवाह, शिक्षा आदि के विशिष्ट पहलू का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। कोई संस्था अपनी प्रकृति से जितनी अधिक जटिल होती है उसके अनुसार ऐसी अनुसूची का आकार भी अपेक्षाकृत अधिक बड़ा हो जाता है। इसका कारण यह है कि जटिल तथ्यों के अध्ययन के लिए निर्धारित प्रश्नों की संख्या अधिक होने से ही उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। ऐसी अनुसूची के कार्य–क्षेत्र और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए पी.वी. यंग ने लिखा है कि, "इन अनुसूचियों की रचना किसी संस्था के समक्ष उत्पन्न होने वाली अथवा उसमें विद्यमान समस्याओं की जानकारी करने के लिए की जाती है।" वर्तमान समय में सरकारी समितियों, पंचायतों की कार्य–पद्धति, शिक्षा संस्थाओं तथा पुलिस प्रशासन जैसे विषयों के अध्ययन में ऐसी अनुसूचियों का उपयोग करना अधिक उपयोगी समझा जाता है।

5. साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule) : यह अनुसूची किसी विशेष विषय पर कुछ व्यक्तियों का साक्षात्कार करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके अन्तर्गत अध्ययन–विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों का इस प्रकार समावेश किया जाता है, जिससे अध्ययनकर्त्ता किसी व्यक्ति का व्यवस्थित रूप से साक्षात्कार करके सूचनाओं का संकलन कर सके। ऐसी अनुसूची के द्वारा उत्तरदाता द्वारा दिये गए वर्णनात्मक उत्तरों का भी संक्षेप में आलेखन करके उनका सरलतापूर्वक वर्गीकरण और सारणीयन किया जाता है। साक्षात्कार अनुसूची में प्रश्नों का संयोजन जितना व्यवस्थित होता है, उनसे उतनी ही उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

अनुसूची का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि अध्ययन विषय से सम्बन्धित उपयुक्त तथ्यों की प्राप्ति हो सके। अनुसूची का निर्माण करने से पहले अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह विषय वस्तु के सम्बन्ध में हर तरह की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ले। अनुसूची में प्रश्न इस प्रकार से अंकित होने चाहिएँ कि उत्तरदाता आसानी से उनके अर्थ को समझ सके, जिससे कि उपयुक्त उत्तर अध्ययनकर्त्ता को दे सके। साथ ही साथ प्रश्न समयानुसार ही पूछे जाने चाहिएँ तभी सही तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। एक अच्छी अनुसूची के लिए निम्नांकित विशेषताओं का होना अति आवश्यक है :

(1) अनुसूची में प्रश्न सदैव सरल व स्पष्ट होने चाहिएँ। जिससे कि उत्तरदाताओं को किसी भी प्रकार की समस्या का सामना न करना पड़े।

(2) अध्ययनकर्त्ता को प्रश्नों का निर्माण करते समय ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिसका कि एक ही अर्थ निकलता हो। भ्रमित करने वाले वाक्यों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए जिससे गलती की सम्भावना रहती है। साथ ही साथ बहुअर्थक वाले शब्दों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे भी उत्तरदाता भ्रमित हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि अध्ययनकर्त्ता अनुसूची में ऐसे शब्दों का प्रयोग करे जिसका कि एक ही अर्थ निकलता हो।

(3) अध्ययनकर्त्ता को अनुसूची में खड़ी बोली का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। सदैव सीधे एवं साधारण शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

(4) अध्ययनकर्त्ता को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अनुसूची में प्रश्न छोटे से छोटे हों ताकि उत्तरदाता शीघ्र उनका उत्तर दे सके। साथ ही साथ उत्तर देते समय वह सुख की अनुभूति भी कर सके। जिससे आगामी प्रणाली भी ठीक चल सके। इससे उत्तरदाता एवं अध्ययनकर्त्ता दोनों की समय की भी बचत होगी।

(5) अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह इस प्रकार के प्रश्नों का निर्माण करे जिससे उत्तरदाताओं को किसी भी प्रकार से आघात एवं अपमानित न होना पड़े। प्रश्नों का निर्माण इस तरह से किया जाना चाहिए कि उत्तरदाता को उत्तर देने में किसी भी प्रकार का संकोच ना हो। कभी–कभी ऐसे प्रश्न भी अनुसूची में अंकित होते हैं जो उत्तरदाता को चोट पहुँचाते हैं। ऐसी परिस्थिति में अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह विकट शब्दों को ऐसे प्रयुक्त करे जिससे उत्तरदाताओं को इसका आभास ही न हो।

(6) अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह अनुसूची में ऐसे प्रश्नों का ही निर्माण करे जो विशिष्ट अनुसंधान के लिए आवश्यक हों।

(7) अनुसूची में इस प्रकार के प्रश्नों की रचना होनी चाहिए, जिसका सांख्यिकीय विवेचन सम्भव हो सके। एक अच्छी अनुसूची के बारे में प्रसिद्ध समाजशास्त्री पी. वी. यंग ने अग्रलिखित दो बातों पर विशेष ध्यान दिया है :

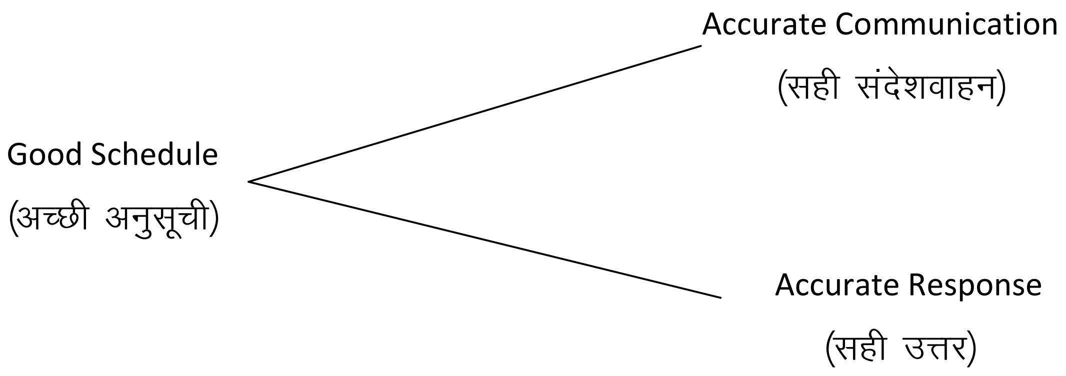

(i) सही संदेशवाहन (Accurate Communication) : सही संदेशवाहन का अर्थ है कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक अनुसूची का निर्माण किया गया है। उस उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। वह उद्देश्य तभी प्राप्त होगा जबकि सभी सूचनादाता प्रश्नों का एक समान अर्थ लगायें। सूचनादाता प्रश्नों का अर्थ तभी लगा पायेगा। जबकि अनुसूची की भाषा स्पष्ट, सरल, भावार्थ व वैषयिक मूल्यांकन से वंचित प्रश्नयुक्त हो। इन चीजों के आधार पर सही संदेश प्राप्त हो सकते हैं इससे ही एक अच्छी अनुसूची का महत्व बढ़ता है।

(ii) सही उत्तर (Accurate Response) : इसका तात्पर्य है सूचनादाता अनुसंधानकर्त्ता को सही उत्तर दे जो अध्ययन के दृष्टिकोण से उपयुक्त हो। अनुसूची की सफलता केवल प्रश्नों के निर्माण पर ही निर्भर नहीं है बल्कि इस बात पर भी निर्भर है कि उत्तरदाता अनुसूची के प्रति कहाँ तक सही अनुक्रिया करते हैं। अनुसूची की सफलता इस बात पर निर्भर होती है की इससे वही तथ्य प्राप्त हों जिसके लिए अध्ययनकर्त्ता ने अनुसूची का निर्माण किया है। इस प्रकार प्रश्न और उसके उत्तर परस्पर सम्बन्धित होने चाहिएं। इसके लिए यह आवश्यक है कि अनुसूची में सही संदेशवाहन का गुण हो। कभी–कभी उत्तरदाता प्रश्न को समझने के बावजूद भी उसका सही उत्तर नहीं देता। वह या तो उत्तर देने के प्रति लापरवाह होता है या जानबूझ कर गलत उत्तर देता है। ऐसी परिस्थिति में अनुसूची को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। अतः अध्ययनकर्त्ता अनुसूची में मिले उत्तरों की प्रमाणिकता की जाँच करने के बाद ही उनमें दी हुई सामग्री के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

2.11.5 अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया

(Process of Preparing a Schedule)

यह सच है कि अनुसूची कुछ प्रश्नों की एक सूची मात्र होती है; पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अनुसूची का निर्माण कोई सरल कार्य है। पर्याप्त सोच–विचार के बाद

अत्यन्त सावधानीपूर्वक इसका निर्माण अनुसन्धानकर्त्ता को करना पड़ता है। इसीलिए अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया कई स्तरों में से गुजरती है। वे चरण इस प्रकार हैं :

1. प्रथम चरण : प्रथम चरण में अनसूची निर्माण से सम्बन्धित पूर्ववर्त्ती विचार (Prior Consideration) आते हैं। अनुसूची निर्माण के पहले यह निश्चय करना आवश्यक है कि अनुसूची में अध्ययन–विषय से सम्बन्धित किन–किन पहलुओं और मदों (Items) का समावेश करना अध्ययन के उद्देश्य के दृष्टिकोण से आवश्यक है। यह काम सफलतापूर्वक तभी किया जा सकता है जबकि अनुसन्धानकर्त्ता को समस्या का प्रारम्भिक ज्ञान हो। इसके लिए समस्या या अध्ययन–विषय के सम्बन्ध में पूर्ववर्त्ती (Prior) विचार परमावश्यक है जिससे कि यह पता चल जाए कि विषय में कौन–कौन से पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हैं और कौन–कौन से कम महत्वपूर्ण पक्ष हैं क्योंकि उसी के अनुसार प्रश्न भी अधिक या कम पूछे जाएंगे। पहले से ऐसा कर लेने से अनुसूची में प्रश्नों का एक सन्तुलित अनुपात बनाए रखना सम्भव होता है और उसमें अनावश्यक प्रश्नों का एक जमाव नहीं हो पाता है। साथ ही, पूर्ववर्ती विचार और समस्या के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इसलिए भी आवश्यक होती है कि कभी–कभी अनुसन्धानकर्त्ता विषय के सम्बन्ध में एक सन्तुलित धारणा को पनपाए बिना ही अनुसूची में उन सभी मदों एवं पहलुओं को सम्मिलित करना चाहते हैं जो अपव्यय का कारण बनती है। अतः इस स्थिति से बचने के लिए एक सन्तुलित प्रश्न सूची को बनाना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना यह सम्भव है कि कुछ महत्वहीन पक्षों को अनुसूची में अधिक मान्यता मिल जाए जबकि कुछ महत्वपूर्ण पक्ष बिल्कुल ही छूट जाएं अतः सर्वप्रथम अनुसन्धान–विषय से सम्बन्धित पूर्वज्ञान के आधार पर उसे विभिन्न पहलुओं में इस प्रकार विभाजित कर लेना चाहिए कि कोई भी महत्वपूर्ण पक्ष छूट न जाए और कोई भी महत्वहीन पक्ष सम्मिलित होने का अवसर न पाए।

2. द्वितीय चरण : समस्या या अध्ययन–विषय को विभिन्न पहलुओं में विभाजित कर लेने के पश्चात् प्रत्येक पहलू को विभिन्न उपविभागों में विभाजित कर लेना होता है और साथ ही यह भी निश्चित करना होता है कि प्रत्येक उपविभाग के सम्बन्ध में किस–किस प्रकार की सूचनाएँ आवश्यक हैं ताकि उस उपविभाग से सम्बन्धित सभी विषय स्पष्ट हो जाएं अथवा उन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सके। ऐसा करने से पूर्व दो बातों का ध्यान हमें विशेष रूप से रखना होगा–पहला तो यह कि किस प्रकार के प्रश्नों को अनुसूची में सम्मिलित करने पर एक पहलू–विशेष पर अधिकतम प्रकाश पड़ सकेगा और दूसरा यह कि इस प्रकार के प्रश्नों

के उत्तर से प्राप्त सूचनाओं का अनुसन्धान के उद्देश्य की पूर्ति में किस सीमा तक उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार इस स्तर पर अध्ययन–विषय के विभिन्न पहलुओं के उपभागों तथा उनसे सम्बन्धित प्रश्नों के विस्तार, प्रकृति तथा उपयोगिता के सम्बन्ध में निश्चित कर लेना होता है।

3. तृतीय चरण : तीसरे स्तर पर प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। पर जल्दबाजी में प्रश्नों के निर्माण से सदा बचना चाहिए क्योंकि प्रश्नों की प्रकृति पर ही यह निर्भर करेगा कि उत्तरदाता उन प्रश्नों को सही अर्थ में समझकर सही उत्तर दे सकेगा या नहीं। अतः आवश्यक है कि प्रश्नों की भाषा किसी भी अवस्था में जटिल, अस्पष्ट, सन्देहयुक्त, बहुअर्थक और सूचनादाता की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली न हो। प्रश्न ऐसा भी न हो कि सूचनादाता के मन में झुँझलाहट, विरक्ति या क्रोध उत्पन्न हो अथवा प्रश्न ऐसा भी न हो कि उसका उत्तर देने में उसे संकोच या डर का अनुभव हो। सरल, स्पष्ट तथा ठीक ढंग से पूछे गए विनम्र प्रश्न उत्तरदाता से सही उत्तरों को स्वतः ही प्राप्त कर लेते हैं, जबकि गलत ढंग से पूछे गए प्रश्न उत्तरदाता के मन में झुँझलाहट उत्पन्न करते हैं और वह या तो इधर–उधर बातें कहकर प्रश्नों को यूँ ही औपचारिकता करता है अथवा सूचना देने से बिल्कुल ही इनकार कर देता है। अव्यवस्थित व बिखरे हुए प्रश्न न तो सही उत्तर प्राप्त कर सकते हैं और न ही उनके उत्तरों से अध्ययन–विषय की वास्तविकताएँ प्रकट हो पाती हैं। साथ ही जल्दबाजी में ऐसा भी हो सकता है कि अनुसूची में कई ऐसे प्रश्नों का समावेश हो जाए जिनका अध्ययन–विषय से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो। अनुसूची में सम्मिलित प्रश्नों की आधारभूत विशेषता यह होनी चाहिए कि प्रश्न इस प्रकार के हों कि सभी उत्तरदाता उन्हें एक ही अर्थ में समझें और उसी के अनुसार उत्तर दें और उन उत्तरों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अध्ययन के उद्देश्य से हो अर्थात् वे उत्तर समस्या या विषय को समझने में उपयोगी हों।

4. चतुर्थ चरण : इस चरण में बनाए गए प्रश्नों को एक सिलसिले से या क्रमबद्ध रूप में लगाया जाता है। इसकी कई उपयोगिताएँ हैं। सर्वप्रथम तो यह कि प्रश्नों को इस प्रकार क्रम से लगा लेने से उत्तरों के माध्यम से तथ्यों की प्राप्ति उसी सिलसिले से होती है जिस सिलसिले से हमें तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करना तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करना है। प्रश्नों को एक क्रम से लगा लेने से दूसरा फायदा यह होता है कि सूचनादाताओं से उत्तर मिलने में भी आसानी होती है। उत्तर देने के लिए भी एक मानसिक तैयारी की आवश्यकता होती

है और इसीलिए अगर आरम्भ में ही कुछ गम्भीर प्रश्न पूछे जाएँ तो उत्तरदाता घबरा जाता है और अनुसन्धानकर्त्ता से अपना पीछा छुड़ाने के लिए व्याकुल हो उठता है। ऐसी अवस्था में बहुत ही सरल, सीधे व संक्षिप्त प्रश्नों से आरम्भ करके यदि क्रमशः गम्भीर प्रश्नों की ओर आगे बढ़ा जाए तो उत्तरदाता को उत्तर देने के लिए आवश्यक मानसिक तैयारी कर लेने का अवसर मिल जाता है और वह स्वयं अध्ययन–विषय में रुचि लेने लगता है। इससे सही उत्तर प्राप्त हो जाते हैं। प्रश्नों को इस प्रकार एक क्रम से लगाते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसा प्रश्न तो सम्मिलित नहीं किया जा रहा है जिसका उत्तर नहीं मिल सकता; ऐसे प्रश्नों को निकाल देना चाहिए।

5. अन्तिम चरण : इस स्तर पर अनुसूची की वैधता (Validity) की जाँच की जाती है अर्थात् यह देखा जाता है कि जिस उद्देश्य से प्रश्नों का निर्माण किया गया है, उन प्रश्नों से वास्तव में उन उद्देश्यों की पूर्ति हो भी सकेगी या नहीं। इस प्रकार की जाँच कर लेना आवश्यक है क्योंकि व्यावहारिक रूप में यह देखा गया है कि प्रश्नों के निर्माण में कितनी ही सावधानी क्यों न बरती जाए, कुछ–न–कुछ ऐसी गलतियाँ या कमियाँ रह ही जाती हैं जिनके कारण सही उत्तर प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। अतः इस कठिनाई को पहले ही दूर कर लेना श्रेयस्कर होता है। इसी उद्देश्य से अनुसूची को अन्तिम रूप देने से पूर्व थोड़े से व्यक्तियों से अनुसूची के प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करके यह जाँच कर लेनी चाहिए कि लोग प्रश्नों को उनके यथार्थ अर्थ में और एक ही अर्थ में समझकर सही उत्तर देने में समर्थ हैं अथवा नहीं। यदि नहीं, तो आवश्यकतानुसार प्रश्नों में हेर–फेर कर लेना उचित होता है। इस प्रकार का हेर–फेर कुछ प्रश्नों को बिल्कुल हटाकर या उनकी भाषा बदलकर, उनके क्रम में परिवर्तन करके अथवा नए प्रश्नों को जोड़कर किया जा सकता है। इस प्रकार अनुसूची की कमियों को दूर कर लेने से आगे चलकर अनेक परेशानियों से बचा जा सकता है।

2.11.6 अनुसूची का भौतिक स्वरूप

(Physical Features of Schedule)

अनुसन्धानकर्त्ता को सूचनादाताओं से उत्तर प्राप्त करने के लिए उनके सम्मुख अनुसूची को प्रस्तुत करना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि अनुसूची का भौतिक स्वरूप आकर्षक हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है अर्थात् अनुसूची के भौतिक स्वरूप में निम्नलिखित बातों का समावेश हो :

1. कागज (Paper) : अनुसूची का कागज घटिया किस्म का नहीं होना चाहिए। अच्छे किस्म के कागज को प्रयोग में लाने से न केवल अनुसूची का 'शो' (Show) बढ़ जाता है अपितु लिखने में भी सुविधा होती है। अगर कागज घटिया किस्म का हुआ तो प्रश्नों का उत्तर लिखते समय या तो स्याही फैल जाती है या लिखाई अस्पष्ट होती है। दोनों ही स्थितियों में आगे चलकर उत्तरों का कुछ का कुछ समझने की गलती हो सकती है, विशेषकर संख्या में व्यक्त सूचना को गलत समझने पर उसका प्रभाव अध्ययन के निष्कर्ष पर भी पड़ेगा।

2. अनुसूची का आकार (Size of the Schedule) : प्रायः अनुसूची का आकार प्रश्नों की संख्या और अनुसूची में सम्मिलित की गई रिक्त (blank) सारणियों के आकार पर निर्भर करता है। फिर भी अनुसूची का आकार बहुत छोटा या बहुत बड़ा होना असुविधाजनक है। यदि अनुसूची का कागज बहुत लम्बा है तो लाने–ले जाने में असुविधा होती है और बार–बार मोड़ने से फट जाने का भी डर रहता है। उसी प्रकार कागज बहुत छोटा हुआ तो उत्तरों को लिखने में बहुत असुविधा होती है। इसलिए अनुसूची का प्रमाणिक आकार 8"×11" माना जाता है।

3. हाशिया (Margin) : अनुसूची के बायीं ओर कम–से–कम 8"/2' तथा दाहिनी ओर 1"/5 या 1''/3 का हाशिया अवश्य छोड़ देना चाहिए। इससे अनुसूची अधिक आकर्षक बन जाती है और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर टिप्पणी आदि भी हाशिया में लिखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त हाशिया रहने से कागजों को पंच (Punch) करके फाइल करने में भी आसानी रहती है।

4. जगह छोड़ना (Spacing) : प्रश्नों को छापते समय उचित जगह छोड़–छोड़कर छापना चाहिए। अक्षर बहुत सटे या मिले होने से पढ़ने में कठिनाई होती है। उसी प्रकार दो प्रश्नों के बीच पर्याप्त जगह छूटी होनी चाहिए और प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लिखने के लिए आवश्यक जगह छोड़ना जरूरी है।

5. छपाई (Printing) : जहाँ तक संभव हो अनुसूची को छपवा लेना चाहिए। छपाई साफ और सुन्दर 'टाइप' में हो यह भी जरूरी है। यदि धनाभाव के कारण छपवाना संभव न हो तो साफ–साफ 'साइक्लोस्टाइल' करवा लिया जा सकता है। किसी भी अवस्था में छपाई साफ–सुथरी ही होनी चाहिए।

6. चित्रों का उपयोग (Use of Pictures) : प्रश्नों को अधिक आकर्षक तथा बोधगम्य बनाने के लिए कभी–कभी प्रश्नों के साथ–साथ चित्रों का भी उपयोग किया जाता है। यदि ऐसा

किया गया तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चित्रों में किसी भी प्रकार की अश्लीलता को स्थान न मिले, जिससे कि उत्तरदाताओं की भावनाओं को ठेस पहुँचे। आकर्षक बनाने का अर्थ अश्लीलता का आश्रय लेना नहीं है। आजकल अनुसूची में चित्रों का उपयोग दिन—प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

2.11.7 अनुसूची की अन्तर्वस्तु

(The Content of Schedule)

अनुसूची की अन्तर्वस्तु से तात्पर्य यह है कि अनुसूची में आरम्भ से अन्त तक किन—किन बातों या विषयों का समावेश होता है। इन्हें हम निम्नलिखित तीन भागों में बाँट सकते हैं :

1. प्रारम्भिक सूचनाएँ (Introductory Informations) : इसके अन्तर्गत अनुसूची का वह शुरू का हिस्सा आता है जिसमें कि अनुसन्धान तथा उत्तरदाताओं के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी प्राप्त करने से सम्बन्धित प्रश्नों का समावेश होता है। अनुसूची का यह भाग लगभग सभी प्रकार की अनुसूचियों में समान ही होता है। इसके अन्तर्गत अध्ययन—विषय का नाम, अध्ययन करने वाले संगठन का नाम, क्रम संख्या, सूचनादाता का नाम, पता, आयु, लिंग, शिक्षा, जाति, साक्षात्कार का स्थान, तरीका तथा समय आदि से सम्बन्धित प्रश्न या खाने (Columns) होते हैं।

2. मुख्य प्रश्न व सारणियाँ (Main Questions and Tables) : यही अनुसूची की मुख्य अन्तर्वस्तु होती है क्योंकि इसी भाग में अनुसन्धान—विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित प्रश्न तथा रिक्त सारणियाँ (जिन्हें कि उत्तरदाता को भरना होता है अथवा उससे पूछकर अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं भरता है) होती हैं। ये प्रश्न तथा रिक्त सारणियाँ उन तथ्यों के संकलन में सहायक होती हैं जिनकी मदद से प्राक्कल्पना की जाँच की जाती है।

3. अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए निर्देश (Instructions for Investigators) : अनुसूची के अन्त में या पृथक् रूप से अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए कुछ ऐसे निर्देश दिए जाते हैं जिनकी सहायता से यथार्थ तथ्यों का संकलन सरल तथा एक तरह का हो सके। यद्यपि अनुसन्धानकर्त्ता प्रशिक्षित होते हैं फिर भी लिखित तौर पर दिए गए ये निर्देश उनका निरन्तर मार्ग प्रदर्शन करते रहते हैं।

2.11.8 अनुसूची के प्रश्न

(Questions of Schedule)

अनुसूची वास्तव में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की ही एक सूची होती है, पर इसमें सम्मिलित किए जाने वाले सभी प्रश्न एक प्रकार के नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों का समावेश एक अनुसूची में हो सकता है। जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं :

1. विमुक्त प्रश्न (Open end Questions) : इस प्रकार के प्रश्नों की विशेषता यह है कि उत्तरदाता को किसी भी तरह से अपने मत को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता होती है और इसलिए ऐसे प्रश्नों के उत्तरों में भाषा आदि की कोई समानता नहीं होती है। ऐसे प्रश्नों का प्रयोग प्रायः उत्तरदाता से सुझाव माँगने के लिए किया जाता है और इसीलिए इनके उत्तर काफी लम्बे तथा विविध प्रकार के हो सकते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों का उदाहरण निम्नवत है :

(अ) आप हरिजनों की स्थिति को उन्नत करने के लिए क्या सुझाव देंगे?

(ब) भारत में एक आदर्श पत्नी को कैसा होना चाहिए?

2. संयोजित प्रश्न (Structured Questions) : जब प्रश्नों के सम्भावित उत्तरों को भी एक सिलसिले से प्रश्न के सामने सजा दिया जाता है और उत्तरदाता को उन्हीं दिए हुए उत्तरों में से एक को अपने उत्तर के रूप में चुनना होता है तो उसे संयोजित प्रश्न कहते हैं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर या तो एक निश्चित संख्या होती है अथवा निश्चित वाक्यांश होता है। इस प्रकार के प्रश्नों की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि उनका सांख्यिकीय वर्गीकरण, सारणीयन आदि अत्यन्त सरलता से किया जा सकता है। उत्तर भी प्रश्नों के साथ रहने के कारण उत्तरदाता को उत्तर देने में काफी आसानी रहती है। इस प्रकार के प्रश्नों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :

(अ) आपके कितने बच्चे हैं? एक/दो/तीन/चार....

(ब) आपके बच्चे कहाँ पढ़ते हैं? नर्सरी/प्राइमरी स्कूल/उच्च माध्यमिक स्कूल/कॉलेज।

(स) आपके बच्चे किस प्रकार के परिवार के सदस्य हैं? एकाकी परिवार/संयुक्त परिवार।

3. दोहरे प्रश्न (Dichotomous Questions) : जब किसी प्रश्न के दो ही उत्तर हो सकते हैं और उन उत्तरों को भी अनुसूची में प्रश्नों के सामने लिख दिया जाता है तो उन्हें दोहरे प्रश्न कहते हैं। इन दोहरे प्रश्नों में एक का उत्तर प्रायः सकारात्मक होता है और दूसरे का

नकारात्मक। संयोजित प्रश्नों की भाँति इनका भी वर्गीकरण व सारणीयन सरलता से हो सकता है। दोहरे प्रश्नों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

(अ) क्या आप अनुसूचित जाति के सदस्य हैं? हाँ/नहीं।

(ब) क्या आप अखबार रोज पढ़ते हैं? हाँ/नहीं।

(स) आप कहाँ की बनी चीजों को इस्तेमाल करना पसन्द करते हैं? स्वदेशी/विदेशी।

4. बहुवैकल्पिक प्रश्न (Multiple Choice Questions) : इस प्रकार के प्रश्नों के साथ कई सम्भावित उत्तर दिये रहते हैं तथा उत्तरदाता को उनमें से कोई एक या एकाधिक उत्तर छाँटना पड़ता है। इस अर्थ में इस प्रकार का प्रश्न संयोजित प्रश्न से बहुत–कुछ मिलता–जुलता है, पर दोनों में अन्तर केवल इतना है कि संयोजित प्रश्नों में उत्तरदाता को दिए हुए उत्तरों में से केवल एक को चुनना पड़ता है जबकि बहुवैकल्पिक प्रश्नों में एकाधिक उत्तरों को भी चुना जा सकता है। इसीलिए बहुवैकल्पिक प्रश्नों के सभी सम्भावित उत्तरों को सावधानीपूर्वक लिख दिया जाता है और अन्त में एक उत्तर "अन्य कोई" के नाम से और जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार के प्रश्न का एक उदाहरण निम्नवत् है :

आप अपने वर्तमान पेशे को क्यों पसन्द करते हैं? आकर्षक वेतन/नौकरी की सुरक्षा/भविष्य में उन्नति की आशा/ऊपरी आमदनी/मालिक द्वारा दी गई सुविधाओं का आकर्षण/अन्य कोई।

5. निर्देशक प्रश्न (Leading Questions) : जब किसी प्रश्न में सूचनादाता को कोई निश्चित उत्तर प्रदान करने के लिए संकेत किया जाता है तो उसे निर्देशक प्रश्न कहते हैं। जहाँ तक सम्भव हो सके इस प्रकार के प्रश्नों से बचना चाहिए क्योंकि जब अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं ही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में उत्तर की ओर संकेत करता है तो सूचनादाता स्वभावतः उसी ओर झुक जाते हैं और उनसे वास्तविक सूचना प्राप्त नहीं हो पाती है। निर्देशक प्रश्न के उदाहरण इस प्रकार हैं :

(अ) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि लड़कियाँ कॉलेज में ही फैशन करना सीखती हैं?

(ब) क्या सरकार के लिए यह उचित न होगा कि अनाज के भाव को तेज होने से रोकने के लिए बड़े–बड़े गल्ला व्यापारियों पर कड़ी निगरानी रखे?

6. सन्देहपूर्ण प्रश्न (Ambiguous Questions) : जब प्रश्न की भाषा इस प्रकार की होती है कि प्रश्नों के सम्बन्ध में उत्तरदाता के मन में सन्देह उत्पन्न होता है या प्रत्येक सूचनादाता उसका अर्थ अपने–अपने ढंग से लगा सकता है तो उसे सन्देहपूर्ण प्रश्न कहते हैं। इस

प्रकार के प्रश्नों को अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। क्योंकि सन्देहजनक प्रश्न सन्देहजनक उत्तरों को एकत्रित करता है और सन्देहजनक उत्तरों से केवल सन्देहजनक निष्कर्ष ही निकल सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि केवल यह पूछा जाए कि "आपकी आयु क्या है?" तो यह प्रश्न सन्देहपूर्ण प्रश्न होगा क्योंकि इस प्रश्न को लोग सम्भावित रूपों में समझकर उसका उत्तर दे सकते हैं : (अ) वर्तमान वास्तविक आयु (ब) पिछले जन्म–दिन पर व्यक्ति की आयु (स) पिछले जन्म–दिन और वर्तमान समय के बीच एक अनुमानित आयु। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रश्नों से एक ही प्रकार के प्रमाणिक उत्तर प्राप्त नहीं होते हैं।

7. अस्पष्ट प्रश्न (Vague Questions) : जब कोई प्रश्न किसी निर्दिष्ट उत्तर को प्राप्त करने में असफल रहता है तो उसे अस्पष्ट प्रश्न कहते हैं। उदाहरणार्थ यह पूछना कि "क्या आप सुशिक्षित हैं;"–एक अस्पष्ट प्रश्न है। इसकी अपेक्षा यह पूछना अधिक उचित है कि "आपने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है?" इसी प्रकार यह पूछना कि "आपके मकान में हवा, रोशनी, बरामदा, आँगन, पाखाना, स्नानगृह आदि की व्यवस्था है अथवा नहीं?"

8. श्रेणीबद्ध प्रश्न (Ranking Items Questions) : जब उत्तरदाता को किसी प्रश्न के दिये हुए सम्भावित उत्तरों में से एक–दो उत्तरों को नहीं अपितु सभी उत्तरों को चुनना तथा उन्हें अपनी पसन्द के अनुसार एक क्रम से सजा देना होता है तो उसे श्रेणीबद्ध प्रश्न कहते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों में अनुसूची में छपे हुए उत्तरों के क्रम का बहुत प्रभाव पड़ता है।

किस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित करना चाहिए

(What Type of Questions are to be included)

एक अनुसूची में किस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाएगा यह बहुत कुछ निर्भर करता है अध्ययन की प्रकृति तथा उद्देश्य, उत्तरदाताओं के स्वभाव, कार्यकर्त्ताओं की योग्यता तथा सूचना की जाँच की सुविधाओं पर। पर सामान्य रूप से किसी भी प्रश्न को अनुसूची में स्थान देने से पूर्व यह सोच लेना चाहिए कि उससे अध्ययन के उद्देश्य के अनुकूल स्पष्ट, सांख्यिकीय विवेचना के योग्य तथा प्रमाणिक उत्तर ही प्राप्त हों। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिन प्रश्नों को अनुसूची में सम्मिलित किया जा रहा है उनमें निम्नलिखित विशेषताएँ भी हों :

1. प्रश्न छोटे, सरल तथा उत्तर देने में सहज हों। पर प्रश्न इतना छोटा न हो कि उससे कोई अर्थ ही न निकल सके।

2. प्रश्न सूचनादाता के ज्ञान–स्तर से सम्बन्धित होना चाहिए। उदाहरणार्थ, एक मिल के साधारण श्रमिक से मिल के आय–व्यय के सम्बन्ध में प्रश्न करना निरर्थक है।

3. प्रश्न सारणीयन के योग्य हो। इससे अध्ययन में अधिकाधिक वैषयिकता पनपती है और वर्णनात्मक विवरण से बचा जा सकता है।

4. अनुसन्धान के उद्देश्य से सम्बन्धित प्रश्नों को ही अनुसूची में सम्मिलित करना चाहिए। जो भी प्रश्न इस प्रकार का नहीं है उससे बचना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों से अनुसूची बोझिल हो जाती है और अनावश्यक सूचनाएँ एकत्रित हो जाती हैं।

5. यदि प्रत्यक्ष प्रश्नों से सही उत्तर पाने की आशा न हो तो अप्रत्यक्ष (Indirect) प्रश्नों को पूछना चाहिए। "क्या आप नास्तिक हैं।'' यह प्रश्न पूछने के स्थान पर अच्छा हो कि यह पूछा जाए–"क्या आप मन्दिर जाते हैं?"

6. प्रश्न एक–दूसरे से सम्बन्धित और सम्पूर्ण क्रम में एक–दूसरे के पूरक हों। उदाहरणार्थ, यदि हम एक स्थान पर मकान के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहे हैं तो अनुसूची के उस भाग में मकान से सम्बन्धित सभी प्रश्नों को ऐसे क्रम में रखना चाहिए कि उन सबके उत्तर एकसाथ मकान का एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित कर सकें।

7. ऐसे प्रश्न भी दिए जाने चाहिएँ जिनसे एक प्रश्न के उत्तर की, दूसरे प्रश्न या प्रश्नों के उत्तर की सहायता से, जाँच की जा सके। जैसे आय के साथ–साथ व्यय, बचत और ऋण सम्बन्धी सूचनाएँ भी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ।

8. जो प्रश्न व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित नहीं हैं तथा पक्षपातरहित हैं, ऐसे प्रश्नों को पूछना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे पक्ष होते हैं जहाँ पर कि वह किसी भी बाहर वाले का प्रवेश सहन नहीं करता। यदि ऐसे प्रश्न पूछे गए तो सूचनादाता यथार्थ स्थिति को छिपाने का प्रयत्न करेगा। इसलिए गुप्त जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए अप्रत्यक्ष प्रश्नों का प्रयोग करना चाहिए।

9. अनुसूची के प्रश्न ऐसे होने चाहिएँ जिनका उत्तर देने के लिए लिखने का काम कम से कम करना पड़े। अतः यदि उत्तरों में व्यवस्था व संक्षिप्तता लानी हो तो उत्तर चेकमार्क, क्रास मार्क अथवा संख्या में अथवा 'हाँ' या 'नहीं' में लिखने योग्य ही प्रश्न होने चाहिएँ।

10. जब विचारों अथवा भावनाओं से सम्बन्धित प्रश्न करना हो तो 'क्यों, क्या, कब, कैसे' वाला प्रश्न भी कर लेना चाहिए जिससे उन विचारों अथवा भावनाओं की पृष्ठभूमि का पता लग जाए।

किस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए

(Whats Type of Questions are not to be Included)

कुछ इस प्रकार के भी प्रश्न होते हैं जो कि गलत, अस्पष्ट या अधूरी सूचनाओं को ही एकत्रित करते हैं। ऐसी सूचनाओं से कोई लाभ नहीं होता अपितु भटक जाने की आशा होती है। अतः इस प्रकार के प्रश्नों से बचना चाहिए :

1. अनुसूची में सन्देहपूर्ण (Ambiguous) प्रश्नों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों के उत्तर भी भ्रम उत्पन्न करने वाले होते हैं और प्रत्येक उत्तरदाता का उत्तर भी अलग–अलग होता है।

2. उसी प्रकार अनिर्दिट या अस्पष्ट (Vague) प्रश्नों को भी अनुसूची में स्थान नहीं देना चाहिए। "अपने मोहल्ले में क्या आप अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं?"– एक अस्पष्ट प्रश्न है क्योंकि सुरक्षा की प्रकृति व सीमा के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है। अतः ऐसे प्रश्नों को और भी स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

3. निर्देशक (Leading) प्रश्नों से भी यथासम्भव बचना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों में उत्तर का संकेत भी होता है और सूचनादाता उसी संकेत के अनुसार उत्तर देते हैं। इससे वास्तविकता का पता नहीं चलता है।

4. बहुअर्थक प्रश्नों को भी अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों के उत्तर में कदापि प्रमाणिकता की आशा ही नहीं की जा सकती है।

5. प्राक्कल्पनात्मक प्रश्नों (Hypothetical Questions) से भी बचने की आवश्यकता होती है। जैसे कि यह पूछना अनुपयुक्त है, "क्या आप अपनी गिरी हुई आर्थिक स्थिति को उन्नत करना चाहेंगे?" ऐसा भला कौन होगा जो ऐसा करना नहीं चाहेगा, अतः यह प्रश्न व्यर्थ का ही है।

6. व्यक्ति के गुप्त जीवन सम्बन्धी प्रश्नों को प्रत्यक्ष तौर पर कभी न पूछना चाहिए। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से या तो सूचनादाता साफ इन्कार कर देगा अथवा वास्तविकता को छिपाकर उत्तर देगा। "क्या आप वैश्यागमन के आदी हैं?" "क्या आप घूस लेते हैं?" "क्या आपके परिवार में कोई अपराधी है?" आदि प्रश्नों से बचना चाहिए।

7. बहुत लम्बे तथा जटिल प्रश्नों को भी अनुसूची में स्थान नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों को उत्तरदाता सरलता से समझ नहीं पाता है और इसीलिए जैसा समझ में आता है उसी के अनुसार जो कुछ भी उत्तर वह देता है वह वास्तविक सूचना नहीं होती है।

8. उत्तरदाता को असमंजस में डालने वाले प्रश्नों से भी सदा बचना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि दफ्तर के एक कर्मचारी से यह पूछा जाए कि, "क्या आपने अपने अफसर को घूस लेते हुए देखा है?" तो प्रश्न उसे असमंजस में डाल देगा क्योंकि वह यह निश्चित नहीं कर पाएगा कि सच कहना उचित होगा अथवा नहीं।

9. यदि कोई सूचना अन्य निर्भर योग्य साधन से प्राप्त हो सकती है तो उससे सम्बन्धित प्रश्नों को भी अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए क्योंकि निरीक्षण आदि के द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अधिक निर्भरयोग्य होती हैं।

10. उन प्रश्नों को भी अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए जो कि अनुसन्धान के उद्देश्य से स्पष्टतः सम्बन्धित न हों क्योंकि इस प्रकार के उद्देश्यविहीन प्रश्नों से अध्ययन का तो कुछ भला नहीं होता, केवल धन, समय व परिश्रम का ही अपव्यय होता है।

11. समाज में सर्वमान्य या स्वीकृत आदर्शों से सम्बन्धित प्रश्नों से भी बचना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों के उत्तर में लोग प्रायः वही कहते हैं जो कि सर्वमान्य आदर्शों के अनुकूल है। उदाहरणार्थ, यदि आप यह पूछते हैं कि "वेश्यावृत्ति समाज के लिए अच्छी है या बुरी?" तो उसके उत्तर में अधिकतर लोग वेश्यावृत्ति को बुरा ही कहेंगे क्योंकि यही स्वीकृत आदर्श है।

2.11.9 अनुसूची की उपयोगिता या महत्त्व

(Importance or Utility of Schedule)

अनुसूची को इसके गुणों के कारण सामाजिक अनुसन्धान की एक अत्यन्त उपयोगी पद्धति माना जाता है। सामाजिक शोध में इस पद्धति की उपयोगिता या महत्त्व को हम निम्नांकित बिन्दुओं से अच्छी प्रकार समझ सकते हैं :

1. यथार्थ तथा ठोस सूचनाओं की प्राप्ति : अनुसूची के प्रयोग द्वारा अध्ययन–विषय से सम्बन्धित ठोस एवं यथार्थ सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। क्योंकि इसमें अनुसन्धानकर्त्ता सूचना को एकत्रित करने के साथ–साथ तथ्यों का वास्तविक निरीक्षण भी करता जाता है। अतः उसे सत्य को ढूँढने और असत्य को त्याग देने का अवसर मिलता है। इस प्रकार समग्र के बारे में अनुसन्धानकर्त्ता को पूर्ण व सही सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

2. प्रश्नों का स्पष्ट तथा वास्तविक उत्तर : अनुसूची द्वारा अध्ययन करने का दूसरा प्रमुख लाभ यह है कि इसके द्वारा प्रश्नों का स्पष्ट एवं वास्तविक उत्तर प्राप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि उत्तर प्राप्त करते समय उत्तरदाता के पास स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता होता

और किसी भी प्रश्न के सम्बन्ध में कोई भी अस्पष्टता व सन्देह होने पर अनुसन्धानकर्त्ता से उसका स्पष्टीकरण प्राप्त हो जाता है। अनुसन्धानकर्त्ता का एक प्रमुख कार्य प्रश्नों को सही अर्थ में समझाना होता है जिसके फलस्वरूप प्रश्नों का स्पष्ट एवं सही उत्तर भी सम्भव हो जाता है।

3. व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण संकोच आदि का निराकरण : कभी–कभी उत्तरदाताओं से इसलिए भी सही उत्तर प्राप्त नहीं हो पाता है कि उत्तरदाता के मन में कोई भ्रम, सन्देह, संकोच का भय घर कर गया है। अनुसूची–प्रविधि में इनका निराकरण इसलिए सम्भव होता है कि अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप में उपस्थित रहता है और वास्तविक परिस्थिति को समझाकर भय, सन्देह, भ्रम आदि को दूर कर सकता है। साथ ही साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहने पर, उत्तरदाता के मन में विश्वास पनपता है और वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त करने में बहुत मदद मिलती है। व्यक्तिगत सम्पर्क से निकटता का अनुभव होने लगता है और उत्तरदाता कोई बात छिपाने का प्रयत्न नहीं करता है।

4. अनुसन्धानकर्त्ता के व्यक्तित्व का पूरा–पूरा लाभ : अनुसूची–प्रविधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता उत्तरदाताओं पर अपने व्यक्तित्व का पूरा प्रभाव डाल सकता है। वह इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न कर सकता है कि वास्तविकता को छिपाना उत्तरदाता के लिए वास्तव में कठिन हो जाए। व्यक्तित्व के प्रभाव से उत्तरदाता अनुसन्धान में विशेष रुचि भी ले सकता है और साथ ही गुप्त बातों को भी बताने में संकोच नहीं करता जो कि अन्य परिस्थिति में वह कभी किसी से न कहता।

5. अनुसन्धानकर्त्ता की निरीक्षण शक्ति में वृद्धि : अनुसूची के उपयोग द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता की निरीक्षण शक्ति में अत्यधिक वृद्धि होती है। एक ही प्रकार के प्रश्नों को विभिन्न व्यक्तियों से पूछने और उनके विभिन्न उत्तरों के लिखने में अध्ययन–विषय के सम्बन्ध में उसकी अन्तर्दृष्टि बढ़ती जाती है और यह अन्तर्दृष्टि निरीक्षण की शक्ति में वृद्धि करती है।

6. तथ्यसंग्रह की प्रक्रिया को संक्षिप्त करता है : अनुसूची को स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता भरता है और उत्तर भरने के इस काम में वह सांकेतिक शब्दों का भी प्रयोग कर सकता है। इससे अनेक प्रश्नों का उत्तर बहुत कम समय में मिल जाता है और तथ्य संकलन की प्रक्रिया संक्षिप्त हो जाती है।

7. लेखबद्ध सामग्री : अनुसूची का एक उल्लेखनीय लाभ यह है कि जो कुछ भी तथ्य इसके द्वारा एकत्रित होता है वह सब लिखित रूप में हमारे पास सुरक्षित रहता है और

किसी भी अवस्था में हमें अपनी कल्पना या स्मरणशक्ति पर विश्वास नहीं करना पड़ता है। साथ ही साथ प्रश्नों की अनुसूची पहले से बनी रहने के कारण कोई भी आवश्यक सूचना छूट जाने का कोई भय नहीं रहता।

8. अधिक प्रत्युत्तर : अनुसूची का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इस प्रविधि का प्रयोग करने पर लोगों से मिलने वाले उत्तरों का प्रतिशत बढ़ जाता है। डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावलियों में से अनेक प्रश्नावलियों को उत्तरदाता भरकर लौटाते ही नहीं हैं। पर चूँकि अनुसूची–प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप में उपस्थित रहता है इसलिए उत्तरदाता उतना ज्यादा टाल नहीं पाते हैं। और इस प्रकार अधिक से अधिक अनुसूचियों को भरना सम्भव हो जाता है।

9. अन्त में अनुसूची–प्रविधि में मानवीय तथ्य आरम्भ से अन्त तक छाया हुआ होता है जिसके कारण सूचना एकत्रित करने की प्रक्रिया अधिक सरस, रोचक तथा आकर्षक हो जाती है। इसका कारण यह है कि इस प्रविधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता और उत्तरदाता एक–दूसरे के निकट आते हैं और एक–दूसरे की उपस्थिति से कुछ लेते और कुछ देते हैं। यह लेन–देन की प्रक्रिया वास्तविक अनुसन्धान को एक मानवीय अनुसन्धान बनाने में सहायक होती है।

2.11.10 अनुसूची की सीमाएँ

(Limitations of Schedule)

उपरोक्त अनेक गुण होने के बावजूद भी अनुसूची–प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएं हैं जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं :

1. सार्वभौमिक प्रश्नों की समस्या : अनुसूची को बनाते समय सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि विषय से सम्बन्धित सार्वभौमिक प्रश्नों को किस प्रकार रखा जाए या उनका निर्माण किया जाए। यहाँ सार्वभौमिक प्रश्नों से तात्पर्य उन प्रश्नों से है जिनका कि सभी उत्तरदाता एक ही अर्थ लगाएँगे और उसके यथार्थ अर्थ को समझकर सही उत्तर देंगे। इस प्रकार के प्रश्नों का निर्माण अत्यन्त कठिन है।

2. सीमित क्षेत्र : अनुसूची के द्वारा बहुत विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें सूचना एकत्रित करने के लिए उसे सूचनादाता के पास व्यक्तिगत रूप से जाना पड़ता है। सीमित साधनों के द्वारा सीमित क्षेत्र में ही अध्ययन किया जा सकता है। अतः विस्तृत अध्ययन के लिए अनुसूची बेकार सिद्ध होती है।

3. अत्यधिक महँगी : अनुसूची–प्रविधि अत्यधिक महँगी होती है क्योंकि साक्षात्कार की व्यवस्था करने, सूचना एकत्रित करने, कार्यकर्त्ताओं को रखने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने में काफी धन व्यय करना पड़ता है जो कि सामान्यतया लोग नहीं कर पाते हैं।

4. सम्पर्क की समस्या : आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति हर समय किसी न किसी व्यक्तिगत कार्य में उलझा रहता है। उस की कार्यव्यस्तता आज बहुत बढ़ गई है इसीलिए अनुसूची भरने के लिए वह अनुसन्धानकर्त्ता को प्रायः समय नहीं दे पाता है और यदि देता भी है तो जल्दी से जल्दी अनुसन्धानकर्त्ता को टालने का प्रयास करता है। सम्पर्क की समस्या उस समय और भी गम्भीर हो जाती है जबकि अनुसूची बहुत लम्बी होती है और अधिकांशतः ऐसा ही होता है।

5. मिथ्या झुकाव का पनपना : उत्तर देते समय अनुसन्धानकर्त्ता की उपस्थिति मिथ्या–झुकाव को पनपाने में सहायक होती है। प्रायः उत्तरदाता वही उत्तर देता है जो कि उसकी समझ में उससे आशा करते हैं। कभी–कभी तो कार्यकर्त्ता स्वयं ही उत्तर देने में सूचनादाता की सहायता करते जाते हैं और उस अवस्था में सूचनादाता ठीक–ठीक राय प्रकट करने के स्थान पर अनुसन्धानकर्त्ता के सुझावों की ओर अधिक झुक जाता है; इससे वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं और अनुसन्धान के निष्कर्ष पथ–भ्रष्ट हो जाते हैं।

2.12 प्रश्नावली (Questionnaire)

अनुसूची की भांति प्रश्नावली भी प्रश्नों की एक आयोजित व क्रमबद्ध सूची है जिसका उद्देश्य अध्ययन–विषय से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों (Primary Data) को संकलित करना होता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्नावली व अनुसूची में केवल अन्तर इतना ही है कि अनुसूची–प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं सूचनादाता से मिलकर प्रश्नों के उत्तर भरता है जबकि प्रश्नावली को डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेज दिया जाता है और उनसे यह अनुरोध किया जाता है कि वे प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखकर फिर डाक द्वारा ही प्रश्नावली को अनुसन्धानकर्त्ता के पास भेज दें। अतः हम कह सकते हैं कि सामान्यतः प्रश्नावली भी उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है जिनपर कि अनुसूची। फिर भी, जैसा कि श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है, प्रश्नावली का निर्माण करते समय अन्य अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है, विशेषकर इसलिए कि इसमें प्रश्नों का उत्तर अनुसन्धानकर्त्ता के प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुरोध तथा सहायता के बिना ही भरना होता है।

प्रश्नावली–प्रविधि में इस सीमा के अतिरिक्त भी अन्य कई दोष हैं। पर, जैसा कि सर्वश्री गुडे तथा हॉट (Goode and Halt) ने लिखा है, इन दोषों के बावजूद भी डाक द्वारा प्रेषित स्वयं भरी जाने वाली प्रश्नावली समाजशास्त्रीय शोध में एक उपयोगी प्रविधि है। जब तक इस प्रविधि का प्रयोग उपयुक्त तरीके से किया जाता रहेगा, इसमें वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकेगा। परन्तु इस सम्बन्ध में और कुछ विवेचना करने से पहले यह आवश्यक है कि हम प्रश्नावली के वास्तविक अर्थ को समझ लें। अग्रलिखित विवेचना से इसी का स्पष्टीकरण होगा।

2.12.1 प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Questionnaire) :

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि एक विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए बनाए गए प्रश्नों की एक क्रमबद्ध सूची को प्रश्नावली कहते हैं जिसे कि डाक द्वारा भेजकर सूचना एकत्रित की जाती है, पर विभिन्न विद्वानों ने इसके अर्थ को अपने–अपने ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है।

गुडे तथा हॉट (Goode and Halt) के अनुसार, "सामान्य रूप से प्रश्नावली से तात्पर्य प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की उस प्रविधि से है जिसमें कि एक पत्रक का प्रयोग किया जाता है जिसे उत्तरदाता स्वयं भरता है।"

श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि, "मूलतः प्रश्नावली प्रेरणाओं का एक समूह है जिसे कि शिक्षित लोगों के सम्मुख, उन प्रेरणाओं के अन्तर्गत उनके भौतिक व्यवहारों का निरीक्षण करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।"

प्रश्नावली की परिभाषा करते हुए श्री पोप (Pope) ने लिखा है, "एक प्रश्नावली को प्रश्नों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उत्तर सूचनादाता को बिना एक अनुसन्धानकर्त्ता अथवा प्रगणक (Enumerator) की व्यक्तिगत सहायता के देना होता है।"

विलसन गी (Wilson Gee) के मतानुसार, "प्रश्नावली बड़ी संख्या में लोगों से अथवा छोटे चुने हुए एक समूह से, जिसके कि सदस्य विस्तृत क्षेत्र में छिटके हुए हैं, सीमित मात्रा में सूचना प्राप्त करने की एक सुविधाजनक प्रणाली है।"

बोगार्डस (Bogardus) ने लिखा है कि, "प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नों की एक तालिका है।" जबकि प्रो0 सिन पायो यांग (Hsin Pao Yang) के

अनुसार, "अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक अनुसूची है जो कि अनुसूचित अथवा सर्वेक्षण निर्दशन के रूप में निर्वाचित व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजी जाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्रश्नावली एक विशेष प्रकार की अनुसूची है जिसे कि अध्ययन–विषय से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने के लिए निदर्शन के रूप में चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा इस अनुरोध के साथ भेज दिया जाता है कि वे उन प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखकर प्रश्नावली को वापस भेज दें क्योंकि ये उत्तरदातागण या तो संख्या में इतने अधिक हैं अथवा इतने अधिक बिखरे हुए हैं कि व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा उनसे सूचना एकत्रित नहीं की जा सकती।

2.12.2 प्रश्नावली की प्रकृति (Nature of Questionnaire) : प्रश्नावली की प्रकृति व अन्य पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :

(i) प्रश्नों का आकार (Size of Questions) : प्रश्नों का आकार बड़ा नहीं होना चाहिए क्योंकि उत्तरदाता बड़े आकार को देखते ही विचलित हो जाता है, अतः छोटी प्रश्नावलियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं।

(ii) भाषा की स्पष्टता (Clarity of Language) : प्रश्नावलियों की भाषा इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिए कि एक साधारण उत्तरदाता उनके अर्थ व प्रयोग को समझ सके। भाषा को जटिल व मुहावरेदार नहीं बनाना चाहिए। किसी प्रकार की पारिभाषिक शब्दावलियों, बहुअर्थक शब्दों को जहाँ तक सम्भव हो सके, स्थान नहीं देना चाहिए। जितने प्रश्न सरल होंगे, उनके उत्तर उतने ही स्पष्ट होंगे।

(iii) इकाइयों की स्पष्टता (Clarity of Units) : अध्ययनकर्त्ता जिन इकाइयों को प्रयोग में ला रहा है, उनको स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए ताकि अलग–अलग उत्तरदाता अपने–अपने दृष्टिकोण से उनकी व्याख्या न करें।

(iv) उपयोगी प्रश्न (Useful Questions) : प्रश्न उपयोगी होने चाहिएँ। अनर्गल प्रश्नों से उत्तरदाता स्वयं भी परेशान होता है और अनुसन्धानकर्त्ता का स्वयं का भी उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है, अतः ऐसे योग्य प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ जिनसे कि उत्तरदाता भी उनका जबाव निःसंकोच होकर दे।

(v) विशिष्ट प्रश्नों से बचाव (Avoidance of Specific Questions) : कुछ प्रश्नों का सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन, भावनाओं तथा रहस्यात्मक जीवन से होता है अतः ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए। कोई व्यंग्यात्मक प्रश्न भी नहीं पूछे जाने चाहिएँ, क्योंकि उत्तरदाता की भावनाओं

को ठेस पहुँच सकती है। यदि इस प्रकार के प्रश्नों से नहीं बचा गया तो अनुसन्धान का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

2.12.3 अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएँ

(Features of a Good Questionnaire)

एल.एल. बाउले ने एक उत्तम प्रश्नावली की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है :

1. तुलनात्मक दृष्टि से प्रश्नों की संख्या कम होनी चाहिए।
2. ऐसे प्रश्नों का होना श्रेष्ठ है जिनका कि उत्तर संख्या में अथवा 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जा सकता है।
3. प्रश्न इतने सरल, सीधे तथा एकअर्थक हों कि शीघ्र समझे जा सकें।
4. प्रश्नों की रचना इस प्रकार की जाए कि उनका उत्तर देते समय मिथ्या झुकाव की सम्भावना न्यूनतम हो।
5. प्रश्न अशिष्टतापूर्ण अथवा धृष्टतापूर्ण एवं परीक्षात्मक नहीं होने चाहिएँ।
6. प्रश्न जहाँ तक सम्भव हो एक–दूसरे को पुष्ट करने वाले हों।
7. प्रश्न इस प्रकार का हो कि इच्छित सूचना प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त की जा सके।

इसके अतिरिक्त एगलवर्नर ने एक अच्छी प्रश्नावली में निम्नलिखित बातों का समावेश आवश्यक बताया है :

(i) क्या–क्या सूचनाएं आवश्यक हैं यह निश्चित करने के लिए विषय की व्याख्या।

(ii) यथासम्भव स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति की कल्पना करना जिससे सूचनाएं प्राप्त करनी हैं।

(iii) इस बात का निश्चय करना कि प्रश्नावली जिसे भेजी गई है उसमें किस प्रकार की सूचनाएं मांगी गई हैं।

(iv) ऐसे किसी भी प्रकार के प्रश्न नहीं पूछने चाहिएँ जिनके उत्तर देने में सूचनादाता को कोई आपत्ति हो।

(v) प्रश्नों की रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि जिससे इस प्रकार की भूल–भुलैया में कोई न पड़े कि उससे किस प्रकार की सूचनाएँ माँगी जा रही हैं।

(vi) प्रश्नावली को उत्तरदाता के लिए इतना सरल बना दिया जाए कि वह वांछित सूचना दे सके।

(vii) प्रश्नों को तार्किक क्रम से व्यवस्थित किया जाये।

(viii) लम्बे–लम्बे प्रश्नों से बचा जाये।

(ix) प्रश्नों की रचना पक्षपात रहित होकर करनी चाहिए।

(x) प्रश्नावली यथासम्भव संक्षिप्त हो।

2.12.4 प्रश्नावली के प्रकार

(Types of Questionnaires)

सभी प्रश्नावलियाँ समान प्रकृति की नहीं होती। अध्ययन की प्रकृति, प्रश्नों के प्रकार तथा उत्तरदाताओं की विशेषताओं के दृष्टिकोण से एक–दूसरे से भिन्न अनेक प्रकार की प्रश्नावली बनाई जा सकती हैं। लुण्डबर्ग ने प्रश्नावली के दो मुख्य प्रकारों का उल्लेख किया है–तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली, तथा मत और मनोवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नावली। प्रथम श्रेणी की प्रश्नावलियाँ वे हैं जिनका उपयोग किसी समूह की सामाजिक अथवा आर्थिक दशाओं से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है। दूसरी श्रेणी की प्रश्नावली का उद्देश्य एक विशेष विषय पर उत्तरदाताओं की रुचियों, विचारों अथवा मनोवृत्तियों को जानना होता है। पी.वी. यंग ने भी प्रश्नावली के दो भागों का उल्लेख किया है–संरचित प्रश्नावली तथा असंरचित प्रश्नावली। प्रस्तुत विवेचन में हम प्रश्नावली के उन सभी सामान्य प्रकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे जिनका उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में किया जा सकता है :

1. संरचित प्रश्नावली (Structured Questionnaire) : संरचित प्रश्नावली सामाजिक सर्वेक्षण अथवा अनुसन्धान में प्रयोग की जाने वाली वह प्रश्नावली है जिसकी रचना वास्तविक अध्ययन आरम्भ होने से पहले ही कर ली जाती है और साधारणतया बाद में इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। पी.वी. यंग ने लिखा है, "संरचित प्रश्नावलियाँ वे होती हैं जिनमें कि निश्चित, स्पष्ट तथा पूर्व–निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त ऐसे अतिरिक्त प्रश्न भी सम्मिलित रहते हैं जो अपर्याप्त उत्तरों में स्पष्टीकरण करने या अधिक विस्तृत उत्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं।" सम्भवतः इसी आधार पर जहोदा एवं कुक ने संरचित प्रश्नावली को 'मानक प्रश्नावली' का नाम दिया है। ऐसी प्रश्नावली का उपयोग एक विस्तृत अध्ययन क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों से प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने तथा संकलित तथ्यों की पुनर्परीक्षा करने के लिए किया जाता है। संरचित प्रश्नावली में जिन प्रश्नों का समावेश किया जाता है वे अत्यधिक निश्चित, क्रमबद्ध और स्पष्ट होते हैं तथा प्रत्येक उत्तरदाता के लिए इनकी प्रकृति समान होती है। इसके परिणामस्वरूप ऐसी

प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों का वर्गीकरण करना अधिक सरल हो जाता है। साधारणतया किसी समूह की सामाजिक–आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन करने अथवा प्रशासनिक स्तर पर परिवर्तन हेतु व्यक्तियों के सुझाव जानने के लिए ऐसी प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है।

2. असंरचित प्रश्नावली (Unstructured Questionnaire) : कैण्ट का कथन है कि "असंरचित प्रश्नावली वह होती है जिसमें कुछ निश्चित विषय–क्षेत्रों का समोवश होता है और जिनके बारे में साक्षात्कार के दौरान ही सूचना प्राप्त करनी होती है लेकिन इस प्रणाली में प्रश्नों के स्वरूप और उनके क्रम का निर्धारण करने में अध्ययनकर्त्ता को काफी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।" इससे स्पष्ट होता है कि असंरचित प्रश्नावली का निर्माण वास्तविक अध्ययन करने से पहले ही नहीं कर लिया जाता। इसके अन्तर्गत केवल उन विषयों का उल्लेख होता है जिनके सम्बन्ध में उत्तरदाता से सूचनाएँ प्राप्त करनी होती हैं। एक अध्ययनकर्त्ता ऐसी प्रश्नावली की सहायता से आरम्भ में यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार के प्रश्नों और उनके एक विशेष क्रम के द्वारा सर्वोत्तम सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। यही कारण है कि ऐसी प्रश्नावली 'साक्षात्कार निर्देशिका' हमारे लिए तभी लाभदायक होती है जब अध्ययन का क्षेत्र सीमित हो तथा प्रत्येक उत्तरदाता से सम्पर्क स्थापित करना सम्भव हो। इसके पश्चात् भी कुछ विद्वान् असंरचित प्रश्नावली को प्रश्नावली का एक प्रकार न मानकर साक्षात्कार विधि के आधार के रूप में देखते हैं। इसका कारण यह है कि प्रश्नावली के अन्तर्गत साक्षात्कार की प्रक्रिया का कोई स्थान नहीं होता। इस दृष्टिकोण से प्रश्नावली के प्रकारों में पी.वी. यंग द्वारा प्रस्तुत असंरचित प्रश्नावली का उल्लेख करना अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

3. बन्द प्रश्नावली (Closed Questionnaire) : प्रश्नावली का यह प्रकार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रश्न के सामने उसके अनेक संभावित उत्तर दे दिए जाते हैं तथा उत्तरदाता को उन्हीं उत्तरों में से किसी एक उत्तर को चुनकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि प्रश्न की प्रकृति इस प्रकार हो कि–1984 के आम चुनाव में आपने अपना वोट किस आधार पर दिया? दल की नीतियों और कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए/उम्मीदवार के गुणों को देखते हुए/यह देखते हुए कि अधिक लोग किसे वोट दे रहे हैं/पड़ोसियों के दबाव को देखते हुए/कोई निश्चित आधार नहीं; तो ऐसे प्रश्नों को हम 'बन्द प्रश्न' तथा इस प्रकार के प्रश्नों से बनने वाली

प्रश्नावली को बन्द अथवा प्रतिबन्धित प्रश्नावली कहेंगे। ऐसे प्रश्नों के अनेक दूसरे भी उदाहरण हो सकते हैं—जैसे आप किस आय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं? 100 रु. मासिक से कम / 100 से 200 रु. तक / 200 से 300 रु. तक / 300 से 400 रु. तक / 400 रु. से अधिक। स्पष्ट है कि बन्द प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उत्तरदाता को प्रमुख लाभ यह है कि इससे प्राप्त सूचनाओं का सरलता से सारणीयन करके उनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

4. खुली हुई प्रश्नावली (Open Questionnaire) : इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के साथ उनके संभावित उत्तर नहीं दिए जाते बल्कि उत्तरदाता से यह आशा की जाती है कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी उत्तर दे। इसमें प्रत्येक प्रश्न के सामने रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता है जिससे उस खाली स्थान पर उत्तरदाता अपना उत्तर लिख सके।

5. चित्रमय प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire) : साधारणतया प्रश्नावली का उपयोग केवल शिक्षित समूह के लिए ही किया जाता है लेकिन यदि कोई समूह कम शिक्षित हो और दूसरी ओर यहाँ व्यक्तियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना किसी कारण कठिन समझा जाता हो तो ऐसी स्थिति में चित्रमय प्रश्नावली के द्वारा तथ्यों का संग्रह करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न को बहुत सरल ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और उसके संभावित उत्तरों के स्थान पर विभिन्न चित्र इस प्रकार प्रदर्शित किए जाते हैं जिससे उत्तरदाता चित्रों के आधार पर अपने उत्तर को सरलता से चिन्हित कर सके। उदाहरण के लिए यदि प्रश्न यह हो कि आप गाँव में रहना पसन्द करेंगे अथवा नगर में? तथा प्रश्न के आगे नगर और गाँव का चित्र बना दिया जाए तो उत्तरदाता सरलता से किसी एक पर चिन्हित लगाकर अपनी पसन्द अभिव्यक्त कर सकता है। बच्चों की मनोवृत्तियाँ अथवा रुचि का अध्ययन करने के लिए भी ऐसी प्रश्नावलियाँ उपयोग में लाई जाती हैं।

6. मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire) : जैसा कि नाम से स्पष्ट है, मिश्रित प्रश्नावली वह होती है जिसमें प्रश्नों की प्रकृति किसी एक स्वरूप तक ही सीमित न होकर अनेक प्रकार के प्रश्नों से सम्बन्धित होती है। ऐसी प्रश्नावली में साधारणतया बन्द और खुले हुए सभी प्रकार के प्रश्नों का समावेश होता है। एक विशेष सूचना अथवा विचार प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार के प्रश्न को सबसे अधिक उपयुक्त समझा जाता है, उसका इसमें समावेश कर लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक तथ्य इतने जटिल और विविधतापूर्ण होते हैं कि एक विशेष प्रकृति के प्रश्नों द्वारा ही उन सभी को ज्ञात कर

सकना बहुत कठिन होता है। विषय का व्यापक और गहन अध्ययन करने के लिए मिश्रित प्रश्नावली का उपयोग करके ही विश्वसनीय तथ्य प्राप्त किए जा सकते हैं। यही कारण है कि सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसन्धान में मिश्रित प्रश्नावली का उपयोग सबसे अधिक किया जाता है।

2.12.5 प्रश्नावली का निर्माण

(Construction of Questionnaire)

यह सच है कि प्रश्नावली प्राथमिक तथ्यों (Primary Data) को एकत्रित करने का एक प्रभावपूर्ण साधन है। पर इस साधन की सफलता अधिकतर इस बात पर निर्भर रहती है कि प्रश्नावली के निर्माण में कितनी सतर्कता को अपनाया गया है। इस सतर्कता की आवश्यकता प्रश्नावली–प्रविधि में इसलिए अधिक होती है क्योंकि इसमें उत्तरदाता को बिना अनुसन्धानकर्त्ता की मदद से प्रश्नों का उत्तर देना होता है। इसीलिए यदि कभी भी कोई अस्पष्टता या कमी रह गई हो तो उत्तर भी अस्पष्ट तथा अपूर्ण ही होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्नावली का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह इतनी सरल व स्पष्ट हो कि विभिन्न प्रकार के उत्तरदाता उसे बिना अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता के समझ सकें एवं वांछित उत्तर लिखकर भेज सकें। इसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

विषय का सावधानीपूर्वक विश्लेषण

(Careful Analysis of the Subject)

एक सफल प्रश्नावली तभी बन सकती है जबकि अनुसन्धानकर्त्ता प्रश्नावली बनाने से पूर्व विषय का सावधानीपूर्वक विश्लेषण कर लें। इस विश्लेषण के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं :

(अ) **समस्या के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण (Analysis of the various Aspects of the Problem) :** प्रश्नावली के निर्माण में सबसे पहले समस्या के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करना पड़ता है जिससे कि उन पक्षों का तुलनात्मक महत्व स्पष्ट हो जाए और अनुसन्धानकर्त्ता को यह पता चल जाए कि समस्या के किन–किन पक्षों के किन–किन विषयों के सम्बन्ध में उसे प्रश्नावली के आधार पर सूचना प्राप्त हो सकती है। इसी विश्लेषण के आधार पर यह निश्चय करना पड़ता है कि किन–किन पहलुओं से सम्बन्धित किन–किन प्रश्नों को प्रश्नावली में स्थान दिया जा सकता है। ऐसा कर लेने से एक सन्तुलित प्रश्नावली का निर्माण संभव होता है और इस बात की सम्भावना न्यूनतम होती है

कि समस्या का कोई भी आवश्यक पक्ष इस प्रकार छूट नहीं जाता है कि उस पर कोई भी प्रश्न नहीं किया गया हो। साथ ही अधिक महत्वपूर्ण पक्षों के सम्बन्ध में अधिक प्रश्नों का तथा कम महत्वपूर्ण पक्षों के सम्बन्ध में कम प्रश्नों का बँटवारा भी ठीक ढंग से हो जाता है। सम्पूर्ण विषय से सम्बन्धित सन्तुलित संख्या में प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित करने के लिए यह आवश्यक है कि (क) प्रश्नों के निर्माण में विषय के सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता के पूर्व–अनुभवों का सदुपयोग करना चाहिए जिससे कि आवश्यक सभी प्रश्न प्रश्नावली में सम्मिलित हो जाएँ (ख) विषय से सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य के पूर्ण अध्ययन के आधार पर प्रश्नों का निर्माण करना चाहिए, (ग) विषय से सम्बन्धित विशेषज्ञों एवं मित्रों आदि के ज्ञान का भी उपयोग प्रश्नों के निर्माण में करना चाहिए, और (घ) प्रश्नों के निर्माण में स्थानीय परिस्थिति को समझाने वाले विशिष्ट व्यक्तियों के अनुभव और पूर्व–ज्ञान से भी लाभ उठाना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से समस्या के बारे में पर्याप्त जानकारी हासिल करके समस्या के विभिन्न पक्षों का उचित विश्लेषण करने के पश्चात् ही प्रश्नावली का निर्माण करना चाहिए।

(ब) उपयोगी प्रश्न (Useful Questions) : प्रश्नावली में किसी प्रश्न को स्थान देने से पहले यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह प्रश्न अध्ययन–विषय या उसके किसी विशेष पक्ष पर प्रकाश डालने में कितना योग दे सकता है। प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न इतना उपयोगी होना चाहिए कि उसका अभाव हमें खटके। यदि किसी प्रश्न का मूल्य प्रश्नावली में बहुत कम है तो उसकी तुलना इस पर खर्च करने वाले अतिरिक्त व्यय एवं समय से करनी चाहिए और इस तुलना में यदि उस प्रश्न की उपयोगिता कम मालूम पड़े तो उसे निकाल देना चाहिए। अनावश्यक प्रश्नों में व्यर्थ ही समय तथा धन नष्ट होता है और सूचनादाताओं से उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना भी कठिन होता है। अतः केवल उपयोगी प्रश्नों को ही प्रश्नावली में स्थान देना चाहिए।

प्रश्नों की प्रकृति तथा भाषा

(Nature and Wording of Questions)

किन उपयोगी प्रश्नों को प्रश्नावली में स्थान देना है, केवल इतना निश्चित कर लेने मात्र से ही एक उत्तम प्रश्नावली का निर्माण नहीं हो जाता है, जब तक कि प्रश्नों की प्रकृति तथा भाषा पर भी आवश्यक ध्यान न दिया जाए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्मरणीय हैं :

1. भाषा की स्पष्टता एवं विशिष्टता (Clear and Specific Language) : प्रश्नावली में उत्तरदाता को प्रत्येक प्रश्न को स्वयं समझकर उत्तर देना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रश्न इतने स्पष्ट हों कि उत्तरदाता को उन्हें समझने में कठिनाई न हो। प्रश्नों की भाषा इस प्रकार होनी चाहिए कि उनका अर्थ अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित हो। प्रश्नों में विशिष्ट शब्दों, विभागीय शब्दों तथा शब्दों के संक्षिप्त रूप (Abbreviations) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार अप्रचलित शब्दों, दोषपूर्ण वाक्य–विन्यास, भावात्मक शब्द, सापेक्षिक शब्द (जैसे अधिक, प्रायः बहुधा, आदि), बहुअर्थक शब्द, परिभाषिक शब्दावलियों (Technical Terms) से यथासम्भव दूर रहना चाहिए। सूचनादाता के मन में असमंजस उत्पन्न करने वाले प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ, "क्या आप अच्छे पढ़े लिखे हैं?" यह प्रश्न पूछने के स्थान पर "आपने किस कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की है?" पूछना अधिक अच्छा है क्योंकि 'अच्छे पढ़े–लिखे' होने का अभिप्राय अलग–अलग सूचनादाता के लिए पृथक–पृथक होगा।

2. प्रश्नों की सरलता (Simple Questions) : यह भी आवश्यक है कि प्रश्नावली में सम्मिलित किए गए प्रश्न सरल हों जिससे सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति भी उसके अर्थ को सरलता से समझ सकें। प्रश्नों की सरलता इसलिए और भी आवश्यक है क्योंकि प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर सूचनादाता को बिना अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता से देना होता है।

3. इकाइयों की स्पष्ट परिभाषा (Clear Definitions of Units) : यथार्थ उत्तर पाने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रश्नों की इकाइयों की स्पष्ट परिभाषा भी दे दी जाए। ऐसा न करने से प्रत्येक उत्तरदाता इन इकाइयों को अपने–अपने दृष्टिकोण तथा सूझ–बूझ से अलग–अलग रूप में परिभाषित करेगा और इसीलिए उनसे प्राप्त उत्तरों में पर्याप्त भिन्नता पनपने की सम्भावना होगी। अतः इकाइयों की स्पष्ट परिभाषा आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यदि हम यह प्रश्न करते हैं कि "आपके परिवार में कितने व्यस्क सदस्य हैं?" तो यह स्पष्ट कर देना होगा कि व्यस्क (Adult) से तात्पर्य उन लोगों से है जो कि 18 वर्ष की आयु से अधिक हैं। ऐसा कर देने से 'व्यस्क' शब्द को सभी सूचनादाता एक ही अर्थ में समझेंगे। उसी प्रकार परिभाषिक शब्दावलियों की व्याख्या भी कर लेनी चाहिए जैसे 'अर्द्ध बेकार' (Under Employment)] कार्यशील जनसंख्या (Working Population) आदि के तात्पर्य को समझा देना चाहिए।

4. कम प्रश्न (Few Questions) : प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर देने के सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता उत्तरदाताओं पर अपना व्यक्तिगत प्रभाव नहीं डाल सकता। इसीलिए यदि प्रश्नों की संख्या बहुत अधिक हुई तो प्रश्नावली को भरकर लौटाने का उत्साह सूचनादाता अपने में अनुभव नहीं करेगा। साथ ही, अधिक प्रश्न होने से समय, धन तथा परिश्रम का दुरुपयोग होता है। अतः प्रश्नों की संख्या न्यूनतम ही होनी चाहिए। पर इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि जिन विषयों पर प्रश्न पूछना आवश्यक है उसकी अवहेलना की जाए।

5. सांख्यिकीय विवेचन के योग्य प्रश्न (Questions subject to Statistical Treatment) : प्रश्नों को सम्मिलित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न ऐसे हों जिनके उत्तरों का उचित वर्गीकरण, सारणीयन आदि सम्भव हो। अतः अधिकांश प्रश्न ऐसे हों जिनका उत्तर संख्या में या 'हाँ/नहीं' में हो। इससे अध्ययन–कार्य में वस्तुनिष्ठता (Objectivity) पनपती है।

6. सही सूचना प्राप्त करने के योग्य प्रश्न (Questions Stimulating Correct Informations) : प्रश्नों को इस ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए कि उत्तरदाताओं के द्वारा सही स्थिति को छिपाने की सम्भावना न्यूनतम हो। श्रेष्ठ प्रश्न वही है जो कि सही सूचना प्राप्त करने में सफल होता है। उदाहरणार्थ, "तुम्हे वेश्यागमन का शौक क्यों है?" इस प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करना कठिन है। अतः ऐसे प्रश्नों से बचना ही उचित होता है।

7. कुछ विशिष्ट प्रकार के प्रश्नों से बचाव (Avoiding some Particular Type of Questions) : कुछ इस प्रकार के प्रश्न होते हैं जिनके सम्बन्ध में वैषयिक उत्तर प्राप्त करना कठिन होता है। अतः इन्हें प्रश्नावली में सम्मिलित करना उचित नहीं होता। गुप्त व गहन सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किए गए प्रश्न, पथ–प्रदर्शक प्रश्न प्राक्कल्पनात्मक प्रश्न, वैयक्तिक प्रश्न, भावात्मक प्रश्न, रूढ़िमुक्त प्रश्न आदि इसी प्रकार के कुछ प्रश्न हैं जिनसे बचना आवश्यक है। कभी–कभी तो ऐसा देखा जाता है कि गुप्त व वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित केवल दो–चार प्रश्नों का समावेश प्रश्नावली में कर देने पर सम्पूर्ण प्रश्नावली का ही उत्तर प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। पति–पत्नी के गुप्त सम्बन्धों, व्यापारिक रहस्यों आदि से सम्बन्धित प्रश्नों से इसी कारण बचने की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए जिनमें प्रातीतिक मूल्यांकन (Subjective Evaluation) करने वाले शब्दों जैसे 'अच्छा', 'बुरा' आदि का समावेश हो। इससे अध्ययन में वस्तुनिष्ठता पनप नहीं पाती है। इसके अतिरिक्त व्यंग्यात्मक प्रश्नों से भी दूर रहने की आवश्यकता है। ऐसा न

करने पर सूचनादाता के मन में विरक्ति की भावना पनप जाती है। अनुसन्धानकर्त्ता का काम तो वास्तविकता की खोज करना है, न कि किसी के आन्तरिक जीवन को ठेस पहुँचाना।

प्रश्नावली का भौतिक पक्ष

(Physical Aspect of Questionnaire)

केवल प्रश्नों की प्रकृति व शब्दावली पर ही प्रश्नावली की सफलता निर्भर नहीं है। इसके कुछ भौतिक पक्ष भी कम महत्व के नहीं हैं। इस दृष्टि से निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(क) प्रश्नावली का आकार (Size of Questionnaire) : प्रश्नावली को उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका आकार न तो बहुत बड़ा हो और न ही बहुत छोटा। बहुत बड़े आकार की प्रश्नावली को देखकर ही उत्तरदाता घबरा जाता है और साथ ही ऐसी प्रश्नावलियों को बार–बार मोड़ने से फटने या अन्य प्रकार से नष्ट हो जाने की सम्भावना होती है। सामान्यतः 8½" x 11" के कागज पर ही प्रश्नावली छपवाई जाती है। पर जनगणना आदि के अवसर पर बड़े आकार की प्रश्नावली ही प्रयोग में लाई जाती है।

(ख) छपाई और रंग (Printing and Colour) : प्रश्नावली को आकर्षक बनाने के लिए छपाई तथा कागज के रंग का भी अत्यन्त ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि इन सबका प्रभाव मनोवैज्ञानिक तौर पर सूचनादाता पर पड़ता है। खराब कागज फट भी जल्दी जाता है इसलिए वर्गीकरण आदि के समय में काफी कठिनाई हो सकती है। उसी प्रकार कागज उत्तम प्रकार का न होने से उत्तर लिखते समय स्याही फैल जाती है। इससे भी बाद में बहुत असुविधा होती है। उसी प्रकार यदि छपाई अच्छी नहीं है तो उसे पढ़ने में उत्तरदाता को कष्ट हो सकता है और उसकी उत्तर देने की रुचि कम हो सकती है। प्रश्नावली–प्रविधि में रंग, छपाई आदि के द्वारा प्रश्नावली को आकर्षक बनाने से कुछ सीमा तक अनुसन्धानकर्त्ता की अनुपस्थिति की पूर्ति हो जाती है।

(ग) प्रश्नावली की लम्बाई (Length of Questionnaire) : एक प्रश्नावली में प्रश्नों की संख्या इतनी होनी चाहिए कि सम्पूर्ण प्रश्नावली अनेक पृष्ठों में छप सके। अधिक लम्बी प्रश्नावली को भरने में उत्तरदाता का बहुत अधिक समय लगता है और इसीलिए वह ऐसी प्रश्नावली से घबराता है; इसीलिए यह आवश्यक है कि प्रश्नावली इतनी लम्बी न हो कि उसे भरने में उत्तरदाता ऊब जाएँ। कम–से–कम और संक्षिप्त प्रश्नों वाली प्रश्नावली अधिक उपयोगी

मानी जाती है यद्यपि पचास पृष्ठों तक की प्रश्नावलियाँ भी सफलतापूर्वक प्रयोग में लाई जा चुकी हैं। फिर भी यदि प्रश्नावली की लम्बाई इतनी है कि अधिक–से–अधिक आधे घण्टे में उसे भरा जा सके, तो उसे एक उत्तम प्रश्नावली माना जाता है।

(घ) मदों की व्यवस्था (Arrangement of Items) : यदि प्रश्नों की संख्या अधिक भी है और यदि उन प्रश्नों को सुव्यवस्थित ढंग से सजा दिया गया है तो प्रश्नावली की लम्बाई खटकती नहीं है। इसीलिए यदि प्रश्नों की संख्या अधिक है तो उन्हें कुछ समूहों में बाँट देना चाहिए और प्रत्येक समूह के प्रश्नों को व्यवस्थित रूप में इस प्रकार लगा देना चाहिए कि वे एक–दूसरे से सम्बन्धित जान पड़ें। इससे प्रश्नों का एक स्वाभाविक बहाव प्रश्नावली में देखने को मिलता है और उत्तरदाता उसी बहाव में बहता चला जाता है और उसे प्रश्नों का उत्तर देने में परेशानी नहीं होती। प्रत्येक प्रश्न–समूह का शीर्षक, उपशीर्षक आदि देने से भी प्रश्नावली व्यवस्थित व आकर्षक बन जाती है और प्रश्नों को एक क्रम से लिखने से न केवल विषय का स्पष्टीकरण हो जाता है अपितु वर्गीकरण आदि के काम में पर्याप्त सहायता मिलती है।

प्रश्नावली की पूर्व–जाँच

(Pretesting of Questionnaire)

हर तरह से सावधानी बरतने पर भी प्रत्येक प्रश्नावली में कुछ–न–कुछ त्रुटि अवश्य ही रह जाती है और इन त्रुटियों का तब तक पता नहीं चलता जब तक कि प्रश्नावली को व्यावहारिक प्रयोग में न लाया जाए। यदि बहुत बाद में इन त्रुटियों का पता चला तो उन्हें सुधारने में बहुत परेशानी होती है। इसीलिए वास्तविक रूप में सूचना एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली को प्रयोग में लाने के लिए उसकी पूर्व–परीक्षा कर लेना आवश्यक होता है। इसीलिए प्रश्नावली को अन्तिम रूप देने और सूचनादाताओं के पास उसे भेजने से पूर्व अध्ययन–क्षेत्र से ही किसी छोटे समूह को सैम्पल (Sample) के रूप में चुनकर प्रश्नावली का प्रयोग कर लिया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण से जो भी दोष पता चलते हैं उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाना चाहिए अर्थात् आवश्यकतानुसार प्रश्नावली में परिवर्तन व परिवर्द्धन कर देना चाहिए। यदि बहुत ज्यादा त्रुटियों का पता चलता है तो प्रश्नावली को फिर से बनाना चाहिए।

सहगामी पत्र

(Accompaying Letter)

पूर्वपरीक्षा करने के बाद प्रश्नावली में आवश्यक परिवर्तन व परिवर्द्धन करके उसे अन्तिम रूप दिया जाता है और फिर वास्तविक सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा उसे भेज दिया जाता है। पर ऐसा करते समय प्रत्येक प्रश्नावली के साथ एक व्यक्तिगत पत्र संलग्न कर देना चाहिए जिसमें सूचनादाता को अनुसन्धान–कार्य के उद्देश्यों के सम्बन्ध में बताते हुए उनको सहयोग प्रदान करने के लिए अनुरोध करना चाहिए। इसके लिए सबसे प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि यह पत्र बहुत ही अच्छे कागज पर साफ व सुन्दर टाइप से आकर्षक शीर्षक सहित छपा हो ताकि वह पत्र सूचनादाता को अपनी तरफ आकर्षित करने में निश्चय ही सफल हो। यदि यह सहगामी पत्र इस काम में सफल हुआ तो वह व्यक्तिगत साक्षात्कार की ही भांति उपयोगी सिद्ध होगा और सूचनादाता तथा अनुसन्धानकर्त्ता को एक–दूसरे के निकट लाकर उन्हें व्यक्तिगत सम्बन्धों में बाँधने का काम करेगा। इस सहगामी पत्र का प्राथमिक प्रभाव यह होता है कि उसी के आधार पर अनुसन्धान की प्रकृति, महत्व आदि के सम्बन्ध में कुछ तात्कालिक निष्कर्ष निकालने में सूचनादाता को अत्यन्त सुविधा होती है और उसकी इस जिज्ञासा की भी पूर्ति होती है 'कि सूचना किसे चाहिए' और 'किस लिए चाहिए'।

इस पत्र में किस प्रकार का अनुरोध किया जाए यह दूसरी समस्या है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सहगामी पत्र में सहयोग की याचना इस रूप में प्रस्तुत की जाए कि अपना समय तथा उत्साह नष्ट करके और उस समय के दौरान किए जाने वाले अन्य मनोरंजक क्रियाओं से अपने को वंचित करके भी प्रश्नावली को भरने के सम्बन्ध में सूचनादाता के मन में कोई हिचक अवशेष न रह जाए। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या यह है कि पत्र के द्वारा हमें सूचनादाता के मन से समस्त प्रकार के सन्देह व डर को इस प्रकार मिटा देना पड़ता है कि वह प्रश्नावली को भरने के लिए स्वतः प्रेरित हो। इसीलिए यह उचित है कि पत्र के आरम्भ में ही यह स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहिए कि केवल अनुसन्धान–कार्य के लिए अथवा ज्ञान के विस्तार के लिए सूचनाओं की याचना की जा रही है और उन सूचनाओं का किसी भी रूप में दुरुपयोग नहीं किया जाएगा।

इस प्रकार विश्वास उत्पन्न करने के बाद पत्र में यह लिखना चाहिए कि उस पत्र के साथ एक प्रश्नावली भेजी जा रही है जिसके प्रश्नों का उत्तर अपनी सुविधानुसार भरकर प्रश्नावली को वापस भेज देने की कृपा करें। यह भी लिख देना लाभदायक सिद्ध होता है

कि वे अपना नाम प्रश्नावली में न लिखें ताकि उनके नाम के साथ उनके द्वारा दिए गए उत्तरों को जोड़ा न जा सके।

शीघ्र जबाव पाने के लिए और साथ ही अधिक संख्या में भरी हुई प्रश्नावलियों को प्राप्त करने के लिए टिकट सहित जबाबी लिफाफा प्रश्नावली के साथ भेज देना चाहिए। इस प्रकार के जवाबी लिफाफे का भी एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव सूचनादाता पर पड़ता है और वह सोचता है कि जब अनुसन्धानकर्त्ता ने इतना पैसा खर्चा किया है तो उसे जबाव दे ही दिया जाए। टिकट सहित जवाबी लिफाफे भेजने पर भी सभी लोग प्रश्नावली को भरकर नहीं भेजते हैं और उस अवस्था में पर्याप्त पैसा यूँ ही बर्बाद होता है। इस बर्बादी को रोकने के लिए 'व्यापारी जवाबी लिफाफा (Business Reply Envelope) सबसे उत्तम होता है।

श्री स्लेटो (Sletto) के अनुसार कभी–कभी सहगामी पत्र में सूचनादाता की रुचि को चुनौती देने का भी बड़ा अच्छा फल प्राप्त होता है। आपने स्वयं शिक्षा सम्बन्धी परिवर्तनों का अध्ययन करते समय अपने सहगामी पत्र में यह लिखा था कि "बहुत से लोग यह विश्वास करते हैं कि इस प्रकार का अध्ययन सफल हो ही नहीं सकता क्योंकि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपने आपको लेकर ही इतने ज्यादा व्यस्त हैं कि इस प्रकार की लम्बी प्रश्नावलियों का उत्तर देने के प्रति वे अत्यधिक उदासीन हैं।" इस चुनौती से बड़ा अच्छा फल प्राप्त हुआ और पर्याप्त संख्या में प्रश्नावलियों को भरकर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने लौटाया।

प्रश्नावलियाँ भेजने में सावधानी

(Precautions in despatching the Questionnaires)

सहभागी पत्र ठीक–ठीक तैयार हो जाने के बाद प्रश्नावली के साथ उसे लगाकर सूचनादाताओं को भेज देना चाहिए। ऐसा करते हुए कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना आवश्यक है : (अ) प्रश्नावली पत्र के साथ भेजते समय इस सम्बन्ध में निःसन्देह हो जाना चाहिए कि सही पते पर उन्हें भेजा जा रहा है। (ब) सभी प्रश्नावलियों को एक ही दिन भेजना चाहिए इससे लगभग दो चार दिन के अन्तर में भरी हुई प्रश्नावलियों के लौटने की सम्भावना बढ़ जाती है। (स) प्रश्नावलियाँ ऐसे दिन भेजी जानी चाहिएँ कि वे साप्ताहिक अवकाश के एक–दो दिन पूर्व सूचनादाताओं को मिलें। इससे रविवार की छुट्टी में वे धैर्य और शान्ति के साथ प्रश्नावली को पढ़ने तथा प्रश्नों का उत्तर भेजने के लिए आवश्यक

समय को निकाल सकेंगे। (द) प्रश्नावली के साथ उत्तर भेजने के लिए आवश्यक लिफाफा आदि जरूर भेज देना चाहिए।

अनुगामी पत्र

(Follow-up Letters)

सूचनादाताओं के द्वारा बहुत कम प्रश्नावलियाँ भरकर लौटाई जाती हैं, विशेष करके प्रथम सहगामी पत्र के पाने के तुरन्त बाद ही प्रश्नावलियों को लौटाया नहीं जाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्रश्नावली भेजने के पश्चात् निश्चित समय तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के उपरान्त पुनः सूचनादाता के अनुगामी पत्रों के द्वारा यह अनुरोध किया जाए कि वे प्रश्नावलियों को भरकर लौटा दें। कितने दिन बाद ऐसा पत्र भेजना चाहिए यह बहुत–कुछ निर्भर करता है सूचनादाताओं की प्रकृति तथा प्रश्नावलियों के लौटने की दर पर। प्रायः 15 दिन पश्चात् पहला अनुगामी पत्र भेजना चाहिए। इसके पश्चात् एक–एक सप्ताह के बाद अनुगामी पत्र भेजने चाहिएँ। आवश्यकता पड़ने पर तार या टेलीफोन का भी उपयोग किया जा सकता है।

2.12.6 प्रश्नावली–प्रविधि का महत्व व गुण

(Importance of Questionnaire Technique)

अनुसन्धान–कार्य के लिए प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने की जो प्रविधियाँ प्रचलित हैं उनमें प्रश्नावली प्रविधि का अपना महत्व है क्योंकि इसके कुछ गुण तथ्यों को एकत्रित करने के कार्य को सरल बना देते हैं। इनके विषय में संक्षेप में हम इस प्रकार विवेचना कर सकते हैं :

1. विस्तृत जनसख्ंया का अध्ययन (Study of Larger Population) : प्रश्नावली–प्रविधि की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इसकी सहायता से विशाल क्षेत्र में बिखरे हुए लोगों का अध्ययन करना सरल होता है। किसी अन्य प्रविधि की सहायता से इतनी अधिक जनसंख्या का सफल अध्ययन नहीं किया जा सकता। अन्य प्रविधि द्वारा विशाल जनसंख्या का अध्ययन करने में समय, धन तथा परिश्रम तो अत्यधिक खर्च होता ही है, साथ ही एक सूचनादाता के पास से दूसरे सूचनादाता के पास भटकते हुए सूचनाओं को एकत्रित करना बहुत कठिन होता है। प्रश्नावली–प्रविधि इन समस्त परेशानियों से अनुसन्धानकर्त्ता की रक्षा करती है।

2. निम्नतम व्यय (Minimum Expenses) : प्रश्नावली–प्रविधि का एक और लाभ यह है कि इस प्रविधि को अपनाने से अध्ययन–कार्य पर होने वाला व्यय बहुत कम आता है। इसका कारण यह है कि इस प्रविधि में किसी प्रकार के क्षेत्र–कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए उन पर होने वाले व्यय की बचत हो जाती है। इस प्रविधि के अन्तर्गत केवल प्रश्नावलियों को छपवाने और उन्हें सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेजने आदि ही व्यय होता है, जो अधिक नहीं होता। अन्य प्रविधियों में अध्ययन–क्षेत्र में वृद्धि के साथ खर्चा जिस अनुपात में बढ़ता है उसकी तुलना में प्रश्नावली–प्रविधि में वृद्धि नाम–मात्र की होती है।

3. सूचनाओं का शीघ्र प्राप्त होना (Early receipt of Informations) : प्रश्नावली–प्रविधि के द्वारा सूचनाओं को कम से कम समय के अन्दर प्राप्त करना सम्भव होता है। इसका कारण भी स्पष्ट है। इस प्रविधि में प्रश्नावलियों को छपवाकर उन्हें एकसाथ ही सूचनादाता के पास भेज दिया जाता है और साधारणतया कुछ दिनों के हेर फेर में वे प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित पुनः वापस भी मिल जाती हैं। इसके विपरीत, अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रविधियों के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता को एक–एक सूचनादाता के पास व्यक्तिगत रूप में जाकर सूचना एकत्रित करनी पड़ती है। इतना ही नहीं, अध्ययन–क्षेत्र के विस्तार के साथ–साथ उस पर लगने वाले समय की मात्रा में भी वृद्धि होती जाती है, लेकिन प्रश्नावली में ऐसा नहीं होता है क्योंकि थोड़ी सी प्रश्नावलियों के उत्तर सहित लौट आने में जितना समय लगता है उससे कई गुणा अधिक प्रश्नावलियों के भरकर लौट आने में भी समय लगता है।

4. सूचना को बार–बार प्राप्त करने में सुविधा (Easy to get repetitive Informations) : कुछ अनुसन्धान ऐसे होते हैं जिनमें सूचनादाताओं से एक निश्चित समय के बाद भी कई बार सूचना प्राप्त करनी होती है; जैसे पारिवारिक बजट सम्बन्धी आँकड़े। ऐसे समस्त अनुसन्धानों में प्रश्नावली–प्रविधि सबसे अच्छी रहती है क्योकि इसमें कुल लागत कम आती है।

5. स्वतन्त्र तथा प्रमाणिक सूचना (Free and Valid Information) : प्रश्नावली–प्रविधि से एक और लाभ यह होता है कि इसमें सूचनादाता को सूचना देने के मामले में पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रविधियों में अनुसन्धानकर्त्ता उत्तर देने के समय में सूचनादाता के समक्ष उपस्थित रहता है। इस उपस्थिति के कारण कुछ विषयों पर सूचनादाता अपना स्वतन्त्र विचार प्रकट करने में हिचकिचाता है। फलत : वास्तविक

परिस्थिति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है। इसके विपरीत प्रश्नावली–प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप में सामने नहीं होता है इसलिए सूचनादाता स्वतन्त्र रूप में विचारपूर्वक निःसंकोच होकर उत्तर दे पाता है जिसके फलस्वरूप वास्तविक व प्रमाणिक सूचना प्राप्त हो पाती है। इस प्रविधि का यह गुण है कि इसमें अनुसन्धानकर्त्ता के व्यक्तित्व का प्रभाव सूचनादाता पर नहीं पड़ता है और न ही उसके विचार सूचनादाता के विचारों को पथभ्रष्ट करने में सफल होते हैं, ऐसे स्थिति में पक्षपात रहित, विश्वसनीय व प्रमाणिक सूचनाओं को प्राप्त करने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं।

6. सुगमता (Convenience) : प्रश्नावली–प्रविधि के अन्तर्गत सूचनाओं को एकत्रित करना सरल है क्योंकि इसमें अनुसन्धानकर्त्ता को अधिक परिश्रम, धन तथा समय नहीं लगाना पड़ता है और साथ ही सूचनादाता को अपनी सुविधा व रुचि के अनुकूल समय पर प्रश्नों के उत्तर को लिखने की सुविधा प्राप्त हो जाती है और उसे अनुसन्धानकर्त्ता के सामने एक निश्चित समय पर बैठकर उत्तर देने के लिए तैयारी नहीं करनी पड़ती है।

7. स्वयं–प्रशासित (Self-administered) : प्रश्नावली–प्रविधि की एक और उल्लेखनीय उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा सूचना प्राप्त करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को न तो स्वयं अध्ययन–क्षेत्र में उपस्थित होना पड़ता है और न ही कार्यकर्त्ताओं के संगठन में दिमाग को उलझाना पड़ता है। इसमें तो प्रश्नावलियों को छपवाकर डाक द्वारा ठीक पते पर भेज देने मात्र से सूचनाओं के संग्रहणकार्य का चक्र अपने–आप चलने लगता है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रश्नावली–प्रविधि एक स्वयं संगठित व स्वयं–प्रशासित व्यवस्था है।

2.12.7 प्रश्नावली की सीमाएँ

(Limitations of Questionnaire)

यह सच है कि प्रश्नावली–प्रविधि एक अत्यन्त उपयोगी प्रविधि है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह कोई दोष रहित प्रविधि है। प्रश्नावली–प्रविधि की भी अपनी कुछ आधारभूत कमियाँ व सीमाएँ हैं जो कि इस प्रकार हैं :

1. प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन सम्भव न होना (Reperesentative Sampling is impossible) : प्रश्नावली–प्रविधि की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके अन्तर्गत प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों का चुनाव नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसका प्रयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अधिकांश सामाजिक अनुसन्धानों में शिक्षित व

अशिक्षित दोनों प्रकार के लोगों से सूचना प्राप्त करने की आवश्यकता होती है जो कि प्रश्नावली–प्रविधि के अन्तर्गत सम्भव नहीं होता है।

2. अपूर्ण सूचना (Incomplete Information) : प्रश्नावली को भरने में प्रायः सूचनादाता अधिक दिलचस्पी नहीं लेते हैं क्योंकि उससे उनके किसी स्वार्थ–सिद्धी की आशा नहीं रहती है और न ही अनुसन्धानकर्त्ता की उपस्थिति का कोई प्रभाव उन पर पड़ने की सम्भावना होती है। इसलिए अक्सर केवल बला टालने के लिए लापरवाही से प्रश्नों के उत्तर भर दिए जाते हैं जो कि पूर्ण व स्पष्ट नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्तर प्रायः अधूरे रह जाते हैं और उनके आधार पर यह पता लगाना कठिन होता है कि सूचनादाता क्या कहना चाहते हैं। यही कारण है कि प्रोफेसर एलमर (Elmer) ने प्रश्नावली–प्रविधि को सामाजिक अनुसन्धान की एक अधूरी प्रविधि कहा है। प्रो. एब्राहम फ्लेसनर (A. Flesner) ने भी लिखा है कि यह एक मनोवैज्ञानिक प्रविधि नहीं है बल्कि सूचना या गैर–सूचना (कोई नहीं जानता कि इनमें से वास्तव में किसकी प्राप्ति होती है) प्राप्त करने की एक सस्ती, सुलभ तथा द्रुतगामी प्रविधि है। शब्दों का बिल्कुल एक ही अर्थ सबके लिए कदापि नहीं हो सकता और इसीलिए यह जानने का कोई उपाय नहीं होता कि प्रश्नों के उत्तर विश्लेषणात्मक हैं अथवा व्यंग्यात्मक।

3. प्रत्युत्तर प्राप्ति की समस्या (Problem of Response) : प्रायः यह देखा जाता है कि पत्र द्वारा कई बार याद दिलाने पर भी भेजी गई प्रश्नावलियों में से कम संख्या में प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित लौटकर आती हैं जिसके फलस्वरूप प्रत्युत्तर की समस्या इसलिए पैदा हो जाती है कि उत्तर पाने के लिए पत्र लिखने के अतिरिक्त अनुसन्धानकर्त्ता के पास और कोई रास्ता नहीं होता। इसलिए कई पत्र भेजने के बाद भी उत्तर न मिलने पर उसे चुप बैठ जाना पड़ता है और उस अवस्था में जितनी सूचना उसे प्राप्त होती है वह अध्ययन–विषय की वास्तविकता को पूर्णतया प्रकट नहीं कर पाती हैं। प्रोफेसर राव (Rao) ने राष्ट्रीय आय सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के लिए कई हजार प्रश्नावलियाँ भेजी परन्तु अनुगामी पत्रों के पश्चात् भी बहुत कम प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित लौटकर आईं।

4. भावात्मक प्रेरणा का अभाव (Lack of Emotional Stimulation) : प्रश्नावली–प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता सूचनादाता से कई मील दूर होता है। जिसके फलस्वरूप अनुसन्धानकर्त्ता अपने व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा सूचनादाता को वास्तविक तथ्यों को प्रकट करने के लिए भावात्मक प्रेरणा नहीं दे पाता है और प्रश्नों का उत्तर देना सूचनादाता के लिए औपचारिक

विधि (formality) मात्र रह जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रश्नावली के द्वारा अपूर्ण तथा अपर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त होने की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं।

5. उत्तर लिखने में अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता का अभाव (Lack of Assistance of the Investigaror on Answering the Questions) : प्रश्नावलियों में केवल इस प्रकार के प्रश्नों को शायद ही सम्मिलित किया जा सकता है जिन्हें कि सभी उत्तरदाता सरलतापूर्वक और सही तौर पर समझ लें। ऐसे बहुत से प्रश्न होते हैं जिन्हें कि कोई–न–कोई उत्तरदाता ठीक से नहीं समझ पाता है और उस अवस्था में यथार्थ सूचना पाने के लिए यह आवश्यक होता है कि उन प्रश्नों को सही तौर पर कोई उन्हें समझा दे। पर इस प्रकार की कोई भी सहायता अनुसन्धानकर्त्ता से उत्तरदाता को प्रश्नावली–प्रविधि के अन्तर्गत नहीं मिल पाती है जिसके कारण या तो उत्तर गलत दिया जाता है अथवा न समझे हुए प्रश्नों को यों ही खाली छोड़ दिया जाता है।

6. सार्वभौमिक प्रश्नों का निर्माण असम्भव (Impossibility of Uniform Questions) : प्रश्नावली में, अनुसूची की भाँति ही ऐसे प्रमाणिक सार्वभौमिक प्रश्नों का निर्माण सम्भव नहीं होता है जो प्रत्येक प्रकार के समूह, सांस्कृतिक प्रतिमान में पलने वाले लोगों तथा सभी आर्थिक व सामाजिक स्तर के लोगों के लिए उपयुक्त हों। इसका परिणाम यह होता है अलग–अलग आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक समूह के लोग एक ही प्रश्न का अपने–अपने दृष्टिकोण से अलग–अलग अर्थ लगाते हैं और उनके उत्तरों में इतनी विविधता होती है कि उनके आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष असम्भव–सा हो जाता है।

7. खराब लेख (Bad Handwriting) : प्रश्नावली–प्रविधि में प्रश्नों का उत्तर सूचनादाता स्वयं लिखता है, पर यह लिखावट अधिकांश क्षेत्रों में बहुत ज्यादा खराब होती है क्योंकि प्रश्नों के उत्तर प्रायः जल्दबाजी में दिये जाते हैं। इसका परिणाम यह है कि उनको पढ़ना और उनके अर्थ को समझना स्वयं ही एक समस्या बन जाती है। कुछ लोग तो पेंसिल से ही उत्तर भर देते हैं जो कि समय बीतने के साथ–साथ अस्पष्ट हो जाते हैं और उनको पढ़ना कठिन होता है। उसी प्रकार उत्तरों में काट–छाँट और पुनर्लेख (Overwriting) से भी अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ अस्पष्ट होने के कारण उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाती हैं।

8. गहन अध्ययन असम्भव (Deeper Study Impossible) : प्रश्नावली–प्रविधि का उपयोग साधारण अध्ययन हेतु समस्याओं से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए किया जा सकता है। यदि किसी गहन समस्या का कुछ समय तक निरन्तर अध्ययन करना हो

तो यह प्रविधि प्रायः अनुपयुक्त सिद्ध हुई है। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त तथ्य केवल कुछ मोटे तौर पर तथ्यों को एकत्रित करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रश्नावली को भरने में एक–आध घण्टा लगता है। इतने कम समय में गहन एवम् विस्तृत सूचना प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कि कुछ सहायक सूचनाएँ हमें प्राप्त हो जाएँ, प्रश्नावली से और कोई लाभ हमें नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा किसी व्यक्ति के विचारों, मनोभावों, मूल्यों तथा उसके आन्तरिक जीवन में गहराई तक जिस भाँति पैठना सम्भव होता है वैसा प्रश्नावली–प्रविधि से कहीं भी सम्भव नहीं है। श्री पार्टन (Parten) ने उचित ही कहा है कि, "इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि सर्वोत्तम प्रश्नावली की अपेक्षा उत्तम साक्षात्कार के द्वारा अधिक गहन अध्ययन किया जा सकता है।"

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि प्रश्नावली की उपयोगिता के सम्बन्ध में विद्वानों में विरोधी मत देखने को मिलता है। श्री सीजर (O.E. Seser) ने लिखा है कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त उत्तरों से यह पता लगाना असम्भव है कि कौन–सा उत्तर सूचनादाता का लापरवाही पूर्ण अनुमान है और कौन सा जानबूझकर दी गई गलत सूचना। श्री सी. लूथर फ्राई (C. Luther Fry) ने भी लिखा है कि उत्तरदाता प्रायः प्रश्नावली को एक व्यर्थ की चीज तथा उनके समय को बर्बाद करने वाली समझते हैं और इसलिए इसके द्वारा वास्तविक सूचनाओं को प्राप्त नहीं किया जा सकता। पर प्रो. एलबर्ट (Albert Eilis) का मत है कि प्रेम तथा वैवाहिक सम्बन्धों से सम्बन्धित अनुसन्धानों में प्रश्नावली–प्रविधि तथ्यों को एकत्रित करने में साक्षात्कार–प्रविधि की ही भाँति सन्तोषप्रद है। प्रोफेसर के. डेविस (K. Davis) ने भी लिखा है कि व्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान स्त्रियाँ अपने यौन–जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ देने में प्रायः संकोच करती हैं, पर प्रश्नावली के माध्यम से उन्हीं सूचनाओं को प्राप्त करना बहुत कठिन नहीं होता है। विद्वानों के उपरोक्त कथन से प्रश्नावली–प्रविधि के दोष व गुण दोनों ही प्रकट होते हैं और यही वास्तविक स्थिति भी है। पर पर्याप्त सावधानी लगन तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बनाए रखने पर इस प्रविधि को अधिकाधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इसीलिए अपनी सब कमियों के बीच भी यह एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रविधि बन गई है। इसका कारण, जैसा कि श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि इस प्रविधि में कम समय के अन्दर कम से कम खर्च में अधिक विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन सम्भव होता है और साथ ही इसकी अवैयक्तिक प्रकृति (Impersonal nature) के कारण यह अनुसन्धानकर्त्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति के फलस्वरूप

पड़ने वाले अनावश्यक प्रभावों से सूचनादाता की रक्षा करती है एवं अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सूचनादाता का इस भाँति अज्ञात बना रहना आन्तरिक व गुप्त सूचनाओं को प्राप्त करने में सहायक ही सिद्ध होता है। प्रश्नावली–प्रविधि की लोकप्रियता का शायद यही रहस्य है।

2.12.8 अनुसूची एवं प्रश्नावली में अन्तर

(Difference between Schedule and Questionnaire)

अनुसूची तथा प्रश्नावली के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक सामग्री के संकलन में अनुसूची और प्रश्नावली दोनों ही महत्वपूर्ण प्रविधियाँ हैं। बाह्य रूप से इन दोनों के बीच इतनी अधिक समानता पाई जाती है कि कभी–कभी इनके बीच कोई भी स्पष्ट भेद कर सकना अत्यधिक कठिन हो जाता है। यदि हम प्रश्नावली और अनुसूची की समानता के दृष्टिकोण से इनका मूल्यँाकन करें तो स्पष्ट होता है कि ये दोनों ही प्रश्नों की व्यवस्थित सूचियाँ हैं जिनके द्वारा प्राथमिक सूचनाओं का संकलन किया जाता है। अपने आकार और रूप–रंग में भी ये एक–दूसरे से बहुत मिलती–जुलती प्रतीत होती हैं। जहाँ तक इनके निर्माण की विधि का प्रश्न है, प्रश्नावली तथा अनुसूची दोनों में ही प्रश्नों का निर्माण करते समय समान सावधानियाँ रखने की आवश्यकता होती है तथा दोनों का ही उद्देश्य अध्ययन–विषय से सम्बन्धित संख्यात्मक तथा गुणात्मक तथ्यों को एकत्रित करना होता है।

इन समानताओं के पश्चात् भी प्रश्नावली तथा अनुसूची में अनेक ऐसी आधारभूत भिन्नताएँ हैं जिनके कारण इन्हें एक–दूसरे से भिन्न दो पृथक् प्रविधियों के रूप में देखा जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख भिन्नताओं को संक्षेप में निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. अनुसूची प्रश्नों की एक सूची है जिसका उपयोग अध्ययनकर्त्ता द्वारा क्षेत्र में जाकर स्वयं किया जाता है। जबकि प्रश्नावली उत्तरदाताओं के पास डाक द्वारा प्रेषित की जाती है। इस प्रकार इसका उपयोग करने के लिए उत्तरदाता तथा अध्ययनकर्त्ता के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित नहीं होता।

2. अनुसूची का उपयोग एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र अथवा सीमित अध्ययन क्षेत्र में ही तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है, जबकि प्रश्नावली एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा कितनी ही दूर–दूर फैले हुए बहुत बड़ी संख्या वाले उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं।

3. अनुसूची का प्रयोग करने के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग करना आवश्यक होता है तथा साक्षात्कार के दौरान उत्तरदाता से कहीं अधिक गहन सूचनाएँ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है, जबकि प्रश्नावली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता उत्तरदाता के बीच किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण केवल वही सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं जिनसे सम्बन्धित प्रश्नों का प्रश्नावली में समावेश होता है।

4. अनुसूची एक अनौपचारिक विधि है जिसमें अध्ययनकर्त्ता को अनेक ऐसे प्रश्न करने का भी अवसर मिल जाता है जो परिस्थिति और वैयक्तिक विशेषताओं के अनुकूल होते हैं। साथ ही उत्तरदाता से प्राप्त सूचनाओं का आलेखन भी उसी समय कर लिया जाता है लेकिन प्रश्नावली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता अथवा उत्तरदाता किसी को भी निर्धारित प्रश्नों से बाहर जाने की कोई स्वतन्त्रता नहीं होती। प्रश्नों के उत्तरों का आलेखन भी उत्तरदाता द्वारा ही किया जाता है। इस दृष्टिकोण से यह प्रविधि कम सोचपूर्ण है।

5. अनुसूची का प्रयोग शिक्षित और अशिक्षित सभी श्रेणियों के उत्तरदाताओं के लिए समान रूप से किया जा सकता है क्योंकि उत्तरदाता सभी सूचनाएँ केवल मौखिक रूप से प्रदान करता है जबकि प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित उत्तरदाताओं के लिए ही किया जा सकता है। इसके उपयोग के लिए उत्तरदाताओं का कम से कम इस सीमा तक शिक्षित होना आवश्यक होता है कि वे प्रश्नों को सही ढंग से समझकर उनका व्यवस्थित ढंग से उत्तर लिख सकें।

6. अनुसूची के उपयोग के लिए जिस निदर्शन का चुनाव किया जाता है वह तुलनात्मक रूप से अधिक वैज्ञानिक होता है। इसका कारण यह है कि निदर्शन की किसी विधि के द्वारा जिन इकाइयों का भी चयन हो जाता है उन सभी से अनुसूची के द्वारा सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं लेकिन प्रश्नावली का उपयोग करने के लिए एक ऐसा निदर्शन लेना आवश्यक होता है जिसमें केवल शिक्षित व्यक्तियों का ही समावेश हो। ऐसा निदर्शन अपूर्ण होने के साथ ही कभी–कभी अध्ययन–विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण समूह का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता।

7. अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसे अधिक स्पष्ट और सुविधापूर्ण समझा जाता है। इसका कारण यह है कि किसी भी प्रश्न की भाषा अथवा अर्थ स्पष्ट न होने की स्थिति में इसे अध्ययनकर्त्ता द्वारा सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, जबकि प्रश्नावली इस अर्थ में लोच–रहित होती है कि उत्तरदाता को प्रश्न से सम्बन्धित कोई भ्रम होने पर उसके

निराकरण का उसे कोई अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। प्रश्न को गलत रूप से समझ लिए जाने पर उसका उत्तर भी अक्सर गलत हो जाता है।

8. अनुसूची द्वारा प्राप्त उत्तरों का प्रतिशत किसी भी दूसरी विधि की तुलना में कहीं अधिक होता है। उत्तरदाता की उदासीनता अथवा व्यस्तता के बाद भी अध्ययनकर्त्ता को उससे सूचनाएँ प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। जबकि प्रश्नावली के द्वारा प्राप्त उत्तरों का प्रतिशत इतना कम रहता है कि कभी–कभी डाक द्वारा भेजी गई कुल प्रश्नावलियों में से दस प्रतिशत भरी हुई प्रश्नावली भी वापस नहीं मिल पातीं। यदि उन्हीं के आधार पर निष्कर्ष दे दिए जाते हैं तो यह निष्कर्ष पूरे समूह के सभी वर्गों की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते।

9. अनुसूची की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसके अन्तर्गत अवलोकन के गुणों का समावेश होना है। अध्ययनकर्त्ता साक्षात्कार के अतिरिक्त अवलोकन के द्वारा भी तथ्यों की परीक्षा करने अथवा नए तथ्यों का संकलन करने का प्रयत्न करता है जबकि प्रश्नावली के अन्तर्गत साक्षात्कार और अवलोकन का अभाव होने के कारण अध्ययन से सम्बन्धित ऐसे अनेक महत्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं जिनकी अध्ययनकर्त्ता प्रश्नावली का निर्माण करते समय कल्पना नहीं कर सका था।

2.13 निरीक्षण या अवलोकन (Observation)

निरीक्षण–प्रविधि सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित अनुसन्धान–कार्यों के सन्दर्भ में कोई नवीन प्रविधि नहीं है। सामाजिक विज्ञानों की बात तो और है, प्राकृतिक विज्ञानों में तो इस प्रविधि का सम्भवतः शुरू से ही प्रयोग होता आया है प्रो. गुडे एवं हॉट ने उचित ही लिखा है कि "विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है, और फिर सत्यापन के लिए अन्तिम रूप से निरीक्षण पर ही लौटकर आना पड़ता है।" प्रो. गुडे एवं हॉट का उपरोक्त कथन उचित ही है। वास्तव में कोई भी वैज्ञानिक किसी भी घटना या अवस्था को उस समय तक स्वीकार नहीं करता, जब तक कि वह स्वयं उसका अपनी इन्द्रियों से निरीक्षण (Observation) न कर ले। सामाजिक विज्ञानों के बारे में भी यही तथ्य सत्य है। कोई भी सामाजिक अनुसन्धान–कार्य तब तक अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर पाता, जब तक कि उसमें निरीक्षण–प्रविधि का प्रयोग न किया गया हो। इसी निरीक्षण–प्रविधि का, समाज–वैज्ञानिक द्वारा, अपने ही साथी एवं स्वजातीय मनुष्यों तथा संस्थाओं के निरीक्षण

हेतु प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्र के पिता श्री ऑगस्ट कॉम्टे (Auguste Comte) जब समाजशास्त्र की रूपरेखा बना रहे थे, तब उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि समाजशास्त्र को वैज्ञानिक आधारों का विषय बनाना है तो निरीक्षण–प्रविधि द्वारा उसकी विषय–वस्तु का अध्ययन होना चाहिए। उन्होंने प्रत्यक्ष निरीक्षण (Direct Observation) द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन पर बल दिया। तभी से निरीक्षण–प्रविधि समाजशास्त्र की महत्त्वपूर्ण–प्रविधि बन गई सम्भवतः इससे पूर्व भी सामाजिक विज्ञानों में इस प्रविधि का प्रयोग होता आया है। प्रो. मोजर ने इसीलिए इसको वैज्ञानिक अनुसन्धान की 'शास्त्रीय पद्धति' (Classical Method) कहा है।

2.13.1 अर्थ एवं परिभाषा

(Meaning & Definition)

निरीक्षण शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Observation' का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ होता है 'देखना', 'अवलोकन करना' या 'निरीक्षण करना'। किन्तु सामाजिक अनुसन्धान की एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में निरीक्षण का अपना एक पृथक् ही अर्थ है। यदि संक्षेप में कहा जाए तो निरीक्षण का अर्थ है 'कार्य–कारण अथवा पारस्परिक सम्बन्ध को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण'।

डॉ. पी. वी. यंग के अनुसार, "निरीक्षण को नेत्रों द्वारा सामूहिक व्यवहार एवं जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ–ही–साथ सम्पूर्णता की रचना करने वाली पृथक् इकाइयों के अध्ययन की विचारपूर्ण पद्धति के रूप मे प्रयुक्त किया जा सकता है।" प्रो. सी. ए. मोजर ने निरीक्षण के बारे मे कहा है कि 'ठोस अर्थ में निरीक्षण में कानों तथा वाणी की अपेक्षा आँखों के प्रयोग की स्वतन्त्रता है।" ऑक्सफोर्ड कान्साइज शब्द–कोष में निरीक्षण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "घटनाएँ कार्य–कारण अथवा पारस्परिक सम्बन्धों के सम्बन्ध, जिस रूप में वे उपस्थित होती हैं, का यथार्थ निरीक्षण एवं वर्णन है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि निरीक्षण–प्रविधि प्राथमिक सामग्री (Primary Data) के संग्रहण की प्रत्यक्ष प्रविधि है। निरीक्षण का तात्पर्य उस प्रविधि से है जिसमें नेत्रों द्वारा नवीन अथवा प्राथमिक तथ्यों का विचार–पूर्वक संकलन किया जाता हो, साथ ही इस प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन के अन्तर्गत आए समूह के दैनिक जीवन मे भाग लेते हुए अथवा उससे दूर बैठकर उनके सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्यवहारों का अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा निरीक्षण करता है।

2.13.2 अवलोकन प्रणाली की विशेषताएँ

(Characteristies of Observation Method)

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई अवलोकन प्रणाली की परिभाषाओं के आधार पर इस प्रणाली की कुछ विशेषताएँ बताई जा सकती हैं जो निम्नलिखित हैं :

1. प्राथमिक सामग्री (Primary Data) : अवलोकन प्रणाली का उपयोग प्राथमिक सामग्री की प्राप्ति के लिए किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अवलोकन के द्वारा तथ्यों के संकलन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अध्ययनकर्त्ता को समस्त सामग्री प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा ही नहीं मिलती है कुछ तथ्य ऐसे भी होते हैं जिनकों अवलोकन के द्वारा नोट किया जाता है।

2. प्रत्यक्ष अध्ययन (Direct Study) : अवलोकन प्रणाली की एक विशेषता यह है कि इसमें प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन किया जाता है। अध्ययनकर्त्ता स्वयं भी अपने अध्ययन क्षेत्र में जाता है, अवलोकन करता है और आँकड़ों का संकलन करता है। यही प्रत्यक्ष अध्ययन प्रणाली है।

3. मानव इन्द्रियों का पूर्ण उपयोग (Full Use of Human Senses) : अवलोकन करने मे मानव इन्द्रियों का प्रयोग प्रधान है, यद्यपि अवलोकन करते समय कानों का भी प्रयोग करते हैं, परन्तु इनका उपयोग अपेक्षाकृत कम होता है। इसमें अधिकतर आँखों के प्रयोग पर अधिक महत्त्व दिया जाता है। जो मानव इन्द्रियाँ अवलोकन करती हैं उसी को अध्ययनकर्त्ता संकलित कर लेता है।

4. विचारपूर्वक अध्ययन (Deliberate Study) : अवलोकन प्रणाली में सदैव ही विचारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। मानव कुछ न कुछ सदैव अपने चारों ओर देखता रहता है, परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे अवलोकन नहीं कहा जा सकता है। अवलोकन का तो एक विशेष प्रयोजन होता है। इसीलिए उसका गहन व विचारपूर्वक अध्ययन किया जाता है।

5. सामूहिक व्यवहार (Collective Behaviour) : अवलोकन प्रणाली की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रणाली का प्रयोग सामूहिक व्यवहार के अध्ययन के लिए किया जाता है।

6. सूक्ष्म अध्ययन (Minute Study) : इस पद्धति के द्वारा विषय–वस्तु के बारे मे सूक्ष्म अध्ययन सम्भव है जिससे किसी भी प्रकार की गलती की सम्भावना नहीं रहती है। अध्ययन

करते समय इसके अन्तर्गत विषय–वस्तु के किसी भी पक्ष को छोड़ा नहीं जाता है। प्रत्येक दृष्टिकोण से हर प्रकार के परीक्षण की प्रक्रिया सम्भव है।

7. पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual Relationship) : अवलोकन पद्धति के अन्तर्गत पारस्परिक सम्बन्ध है। यही कारण है कि अवलोकन पद्धति का प्रयोग इस दृष्टिकोण से दिन–प्रति–दिन बढ़ता ही जा रहा है।

8. कारण–सम्बन्ध का पता लगाना (To Know about Cause-Effect Relationship) : अवलोकन प्रणाली का उद्देश्य विषय–वस्तु से सम्बन्धित घटनाओं एवं तथ्यों का पता लगाना भी है।

2.13.3 सामान्य देखना बनाम वैज्ञानिकता अवलोकन

(Seeing Vs. Scientific Observation)

हम अपने आस–पास होने वाली घटनाओं को निरन्तर देखते हैं। सुबह होने पर हम अपनी खिड़की से यह देखते हैं कि सूर्य उदय हुआ है या नहीं, कहीं बाहर वर्षा तो नहीं हो रही है। यदि हम मोटर चला रहे होते हैं तो यह ध्यान रखते हैं कि कहीं कोई बालक हमारी गाड़ी से कुचल न जाए, कहीं हमारी गाड़ी टकरा न जाए साथ ही यह ध्यान रखते हैं कि सड़क पर मार्गदर्शक लाल रोशनी है अथवा हरी आदि। इस प्रकार के अनेक ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जो यह प्रकट करते हैं कि निद्रावस्था को छोड़कर आँखें निरन्तर कुछ न कुछ देखने में व्यस्त रहती हैं। आँखों का प्रयोग केवल जीवन की दैनिक क्रिया–कलापों को देखने के लिए ही नहीं किया जाता अपितु देखना वैज्ञानिक शोध की एक आधारभूत विधि है।

यद्यपि हम सभी अपने आस–पास घटित होने वाली घटनाओं को देखते हैं किन्तु अवलोकन इससे भिन्न है। उदाहरण के लिए, हम अपने सामान्य अनुभव के आधार पर यह कहते हैं कि पृथ्वी सापेक्षिक रूप में चमटी है। इस बात की पुष्टि कोई भी व्यक्ति थोड़ा–सा देखकर कर सकता है। किन्तु जैसा कि हमें अपने वैज्ञानिक अनुभवों द्वारा पता है कि वास्तव में जिस प्रकार की पृथ्वी को हम देखते हैं, वह चपटी न होकर गोल है। यह एक उदाहरण ही सामान्य देखने तथा वैज्ञानिक देखने के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। सामान्य देखने के द्वारा हम प्रमाणिक परिणामों को प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते, अतः देखना हमारे जीवन के बहुत सारे अनुभवों का आधार होते हुए

भी वैज्ञानिक रूप में देखने से भिन्न है। इस भिन्नता को परिलक्षित करने के लिए तथा वैज्ञानिक देखने के लिए हम 'अवलोकन' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

सैलिज, जहोदा, डेयुटस्च तथा कुक के अनुसार सामान्य देखना एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में अवलोकन का रूप धारण कर लेता है जब उसमें निम्न विशेषताएँ जुड़ जाती हैं।

(1) जब अवलोकन का एक विशिष्ट उद्देश्य हो।

(2) जब अवलोकन नियोजित तथा सुव्यवस्थित रूप से किया गया हो।

(3) जब अवलोकन की प्रमाणिकता तथा विश्वसनीयता पर आवश्यक नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध लगाया गया हो।

(4) जब अवलोकन के निष्कर्षों को क्रमबद्ध रूप मे लिखा गया हो तथा सामान्य उपकल्पना के साथ उसका सह–सम्बन्ध स्थापित किया गया हो।

पी. वी. यंग ने वैज्ञानिक अवलोकन की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है :

(1) निश्चित उद्देश्य,

(2) योजना तथा प्रलेखन की व्यवस्था,

(3) वैज्ञानिक परीक्षण तथा नियन्त्रण हेतु उपयोगी।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त श्रीमती यंग ने अवलोकन के सम्बन्ध में एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि अवलोकनकर्त्ता को अप्रत्याशित तथा आकस्मिक घटनाओं के प्रति भी सतर्क रहना चाहिए तथा उन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उनका विचार है कि "ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं का अवलोकन कभी–कभी महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्राप्त करने तथा नवीन उपकल्पनाओं एवं सिद्धान्तों को जन्म देने की शोध प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।"

सेलिज, जहोदा एवं कुक तथा पी. वी. यंग के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अवलोकन एक विशिष्ट ढंग से किया जाता है, उसकी कुछ विशेषताएँ हैं जो उसे सामान्य देखने की प्रक्रिया से भिन्न करती हैं।

1. अवलोकन का एक उद्देश्य होता है :

अवलोकन का अर्थ सामान्य अनुभव प्राप्त करने के लिए केवल मात्र इधर–उधर देखना नहीं होता अपितु वैज्ञानिक अवलोकन सतर्कतापूर्ण, पूर्व–निर्धारित उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। चार्ल्स डारविन ने एक स्थान पर लिखा कि यह कितना अजीब है कि किसी भी व्यक्ति को सभी कुछ नहीं देखना चाहिए, अवलोकन तभी लाभप्रद हो सकता

है जब अवलोकन किसी दृष्टि बिन्दु के पक्ष अथवा विपक्ष में किया गया हो। इसी प्रकार के कुछ विचार पी. वी. यंग ने अभिव्यक्त किए हैं। हम बहुत सारी जटिल घटनाओं को देखते रहते हैं किन्तु हमारा देखना तभी अत्यधिक अर्थपूर्ण होता है जब हमारी आँखें किसी अध्ययन के लिए अपनाई गई विचार दृष्टि तथा प्रारम्भिक उपकल्पना के अनुरूप कार्य करती हों। उदाहरण के लिए, यदि हम यह जानना चाहते हैं कि सड़कों पर दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं? सड़कों पर दुर्घटनाएँ तंग अथवा टूटी–फूटी सड़कों के कारण नहीं होती जैसा कि समान्य रूप में समझा जाता है अपितु दुर्घटनाएँ वाहनों की तेज रफ्तार के कारण होती हैं। यह उपकल्पना हमारे अवलोकनों का उद्देश्य हो सकती है। इस उद्देश्य के अनुसार अब हम अपना ध्यान वाहनों की रफ्तार तथा उनके परिणामों पर केन्द्रित करते हैं तब हम अपना ध्यान इधर–उधर की बातों जैसे सड़कों पर से गुजरने वाले विभिन्न प्रकार के वाहनों, सड़क की परिपाटियों, सड़क की दिशा, वाहन चालक अथवा उनकी वेश–भूषा, वाहन के यात्री, वाहन का रंग अथवा नम्बर आदि से हटाकर पूर्णतया वाहन की रफ्तार पर केन्द्रित कर देते हैं, ताकि हम अपनी उपकल्पना की परीक्षा कर सकें। उपरोक्त उपकल्पना यदि हमारे परीक्षण द्वारा सिद्ध नहीं होती तब हम दूसरी उपकल्पना का निर्माण करेंगे और उसके अनुरूप ही हम सार्थक घटनाओं का अवलोकन करेंगे। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि अवलोकन हेतु निर्धारित लक्ष्य हमारी दिशा का निदर्शन करता है तथा सार्थक तथ्यों पर बल देता है जिस पर हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना होता है।

2. अवलोकन में एक व्यवस्था होती है :

अवलोकन में एक व्यवस्था होती है। वैज्ञानिक अवलोकन मनमाने ढंग से नहीं किया जाता है, वरन् यह नियोजित ढंग से किया जाता है। अवलोकन करने से पूर्व 'किन', 'कब', 'क्यों', 'कैसे', तथा 'कहाँ' प्रश्नों के सम्बन्ध में एक पूर्ण विचार कर लिया जाता है।

3. अवलोकन चयनात्मक होता है :

हमारी आँखों के सामने जो घटनाएँ घटित होती हैं, उसमें से हम देखते समय कुछ चीजों तथा घटनाओं को ही देखते हैं तथा कुछ को अकारण रुचि–अरुचि के आधार पर छोड़ देते हैं किन्तु वैज्ञानिक अवलोकन के सामान्य देखने की भाँति अवलोकन की जाने वाली घटनाओं का चुनाव रुचि–अरुचि के द्वारा नहीं किया जाता, अपितु शोध के उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। गुडे तथा हॉट ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "हम सभी कुछ चीजों को देखते हैं किन्तु कुछ को नहीं देख पाते। हमारी सतर्कता तथा प्राथमिकताएँ हमारे

ज्ञान की गहनता तथा विस्तार तथा हमारा लक्ष्य जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं ये सभी हमारे चयनात्मक अवलोकन के रूप का निर्धारण करते हैं। बहुत कम ऐसे छात्र होते हैं जो सामाजिक व्यवहार का अध्ययन सोच समझकर करते हैं। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। यदि हम विद्यार्थियों के एक समुह को कोई कारखाना (Factory) दिखाने ले जाएँ और उन्हें अपने अवलोकन की एक रिपोर्ट लिखने को कहें तो इस रिपोर्ट से यह ज्ञात होगा कि अधिकाँश विद्यार्थियों ने सामाजिक व्यवहार की सूक्ष्मताओं को देखने की अपेक्षा ऐसी क्रियाओं अथवा प्रक्रियाओं को देखने में अधिक रुचि प्रदर्शित की, जो एक समाज विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए महत्त्वहीन थी। जैसे कारखाने में घूमते समय किसी मशीन के चलने के ढंग, उसकी रफ्तार, उससे निकलने की आवाज, प्रदर्शन कक्ष में रखी हुई नारी का मॉडल देखने में उन्होंने अधिक समय गुजारा और सामाजिक व्यवहार की कुछ आवश्यक, बातों को वे नोट करना भूल गए, जैसे कारखाने में शोरगुल–पूर्ण वातावरण में कर्मचारी आपस में किस प्रकार एक–दूसरे से बातचीत करते हैं, कारखाने में मजदूरों का वितरण आयु तथा लिंग के आधार पर किस प्रकार हुआ है, आदि। संक्षेप में हम स्पष्ट दिखने वाले व्यवहार के प्रति सजग रहते हैं किन्तु हम में से बहुत कम हमारे आस–पास होने वाली सामाजिक अन्त क्रियाओं की सूक्ष्मता को जान पाते हैं।

4. अवलोकन का प्रलेखन :

अवलोकन किये जाने के तुरन्त बाद अथवा जितना शीघ्र हो सके उसका प्रलेखन किया जाता है जिससे अवलोकित घटनाओं के किसी भी पक्ष को भुलाया न जा सके, इसके लिए अनुसूची अथवा अन्य साधनों जैसे कैमरा, टेपरिकार्डर आदि का प्रयोग भी इस हेतु किया जाता है।

5. प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा अवलोकन :

वैज्ञानिक अवलोकन एक तकनीकी प्रक्रिया है अतः इसके लिए एक सामाजिक वैज्ञानिक को अपने आपको प्रशिक्षित करना होता है। उदाहरण के लिए किसी भी यन्त्र का प्रयोग व्यक्ति सही ढंग से तभी कर सकता है जब उसने उस यन्त्र के प्रयोग का प्रशिक्षण लिया हो।

6. अवलोकन के परिणामों का परीक्षण तथा प्रमाणीकरण :

वैज्ञानिक अवलोकन की एक और विशेषता यह है कि व्यवस्थित अवलोकन द्वारा प्राप्त परिणामों का परीक्षण ही नहीं अपितु प्रमाणीकरण भी सम्भव है। यह प्रमाणीकरण अन्य

अवलोकनकर्त्ताओं द्वारा प्राप्त परिणामों से अथवा इसी अध्ययन को दुबारा करके किया जा सकता है।

2.13.4 अवलोकन प्रणाली के गुण अथवा महत्त्व

(Merits or Importance of Observation Method)

वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में मानव द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली यह सर्वप्रथम प्रणाली है इतना ही नहीं ज्ञान की समस्त शाखाओं में इस प्रणाली का व्यापक उपयोग किया जा रहा है। साथ ही सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में भी इसका विस्तृत प्रयोग हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक तथा प्राकृतिक सभी विज्ञानों में अवलोकन प्रणाली का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुसंधान के हर स्तर पर अवलोकन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध में प्रो. गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि "विज्ञान अवलोकन से आरम्भ होता है तथा अपनी अन्तिम सत्यापनशीलता के लिए भी इसे अवलोकन पर निर्भर रहना पड़ता है।"

अवलोकन के गुणों अथवा महत्त्व को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है :

1. सत्यापन की सुविधा (Facility of Verification) : इस प्रविधि का एक प्रमुख गुण यह है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं के सत्यापन को भी आसानी से आँका जा सकता है। अध्ययनकर्त्ता एक ही सामाजिक घटना का कई बार अवलोकन करके उस घटना की सत्यता परख सकता है। इस प्रकार की सुविधा अन्य प्रविधियों में देखने को कम मिलती है।

2. विश्वसनीयता (Reliability) : अवलोकन प्रणाली एक विश्वसनीय प्रणाली है क्योंकि इसके द्वारा घटनाएँ जिस रूप में घटित होती हैं, उसका उसी रूप में आलेखन करना सम्भव होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रविधि द्वारा प्राप्त सूचना अन्य पद्धतियों द्वारा प्राप्त हुई सूचना से कहीं अधिक विश्वसनीय होती हैं इस सम्बन्ध में मोजर (Moser) ने लिखा है कि, "व्यक्तियों से यह पूछने के बजाय कि वे क्या करते हैं। एक अध्ययनकर्त्ता विभिन्न प्रकार की अतिशयोक्तियों प्रतिष्ठा सम्बन्धी विचारों और स्मृति की त्रुटियों से उत्पन्न होने वाले पक्षपात को दूर करने के लिए लोगों के व्यवहारों को स्वयं अधिक अच्छी तरह देख सकता है।"

3. सरलता (Simplicity) : अन्य प्रविधियों की तुलना में अवलोकन प्रविधि अधिक सरल है क्योंकि अपनी जिज्ञासा का समाधान करने के लिए मानव सदैव से ही विभिन्न तथ्यों और

घटनाओं का अवलोकन करता रहता है। यह विधि इसलिए भी सरल है कि इसके उपयोग के लिए विशेष प्रशिक्षण तथा धन की आवश्यकता नहीं होती है।

4. सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि (Most Popular Technology) : इसमें कोई संदेह नहीं है कि अवलोकन प्रविधि सर्वाधिक प्रचलित पद्धति है। प्रायः प्रत्येक प्रकार के विज्ञानों में अनुसंधान कार्यों में इस पद्धति का प्रयोग होता है। इस रूप में यह और भी अधिक परिमार्जित पद्धति है।

5. परिकल्पना में सहायक (Helpful in the formulation of Hypothesis) : परिकल्पनाओं के निर्माण में भी अवलोकन पद्धति अत्यधिक सहायक होती है। अध्ययनकर्त्ता अनेक घटनाओं का अध्ययन करता रहता है और इस तरह उसका ज्ञान बढ़ता रहता है। इस तरह ज्ञान का बढ़ना परिकल्पनाओं के निर्माण के मुख्य साधन हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि घटनाओं के इन विशाल अनुभवों के आधार पर वह विभिन्न परिकल्पनाओं का निर्माण कर सकता है।

6. यथार्थता (Accuracy) : इस प्रणाली के द्वारा एकत्रित किये गये तथ्यों में वास्तविकता की सम्भावना रहती है जो कि अध्ययन विषय के दृष्टिकोण से काफी महत्त्वपूर्ण है।

7. प्राथमिकता (Preliminary) : अध्ययन वस्तु की जाँच के दृष्टिकोण से यह पद्धति सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि निरीक्षण के द्वारा जो तथ्य एकत्रित किये जाते हैं वे सही होते हैं।

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि केवल अवलोकन ही एक ऐसी प्रणाली है जो सबसे अधिक उपयुक्त है एवं जिसका उपयोग सभी विज्ञानों में समान रूप से किया जाता है।

2.13.5 अवलोकन प्रणाली के अवगुण या दोष

(Demerits of Observations Method)

गुणों के साथ ही इसके कुछ दोष भी हैं। इस सम्बन्ध में डा. पी. वी. यंग ने लिखा है कि, "वास्तव में सभी घटनाएँ अवलोकन के लिए उपयुक्त भी नहीं होती, सभी घटनाओं के घटित होते समय अवलोकनकर्त्ता वहाँ उपस्थित भी नहीं होता तथा न ही विभिन्न अवलोकन प्रविधियों के द्वारा सभी प्रकार की घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है।" इस तरह कहा जा सकता है कि अवलोकन प्रविधि स्वयं में अपूर्ण है एवं इसके दोषों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

सामान्यतया लोगों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है कि जब उनका अवलोकन किया जाता है तो वे अपने व्यवहार में बनावटीपन लाने का प्रयत्न करते हैं और अपने आपको वास्तविकता से परे करने का प्रयत्न करते हैं। साधारणतया यह स्थिति उस समय तक बनी रहती है जब लोगों को पता चलता है कि उनका अवलोकन किया जा रहा है। इस प्रकार अवलोकन के समय लोग अपने सामान्य व्यवहार में कुछ न कुछ परिवर्तन कर देते हैं। इस तरह अध्ययनकर्त्ता द्वारा सही परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते हैं। अतः अवलोकनकर्त्ता को इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि अवलोकन के समय उसके अध्ययन विषय (लोगों को) से अवलोकन का बिल्कुल भी आभास न हो तभी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

अवलोकनकर्त्ता की अवलोकन क्षमता की मात्रा द्वारा भी अवलोकन की उपयोगिता न्यूनाधिक होती रहती है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि अध्ययनकर्त्ता किन्ही तथ्यों को बेकार एवं अनुपयोगी समझकर उसके अवलोकन को महत्त्व नहीं देता लेकिन वे वास्तव में समस्या के अध्ययन की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। इस तरह अध्ययनकर्त्ता के सीमित ज्ञान के कारण सही परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं इस प्रकार की कमी को दूर भी किया जा सकता है। इसके लिए अध्ययनकर्त्ताओं को उनके अध्ययन स्थल के बारे में प्रशिक्षित करना जरूरी है। इस प्रशिक्षण से वे सही बातें प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा "अवलोकन किए जाने वाले समूह को जब यह पता चल जाता है कि उनके क्रिया–कलापो का अध्ययन किया जा रहा है तो वे जान–बुझकर एक विशेष प्रकार से व्यवहार करना आरम्भ कर देते हैं।" इस सम्बन्ध मे आगे जॉन मैज ने लिखा है कि, "हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ अत्यधिक विभिन्नतायुक्त त्रुटिपूर्ण और एक विशेष वेग से कार्य करने वाली होती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की तुलनायें करने के लिए भी वे ज्ञानेन्द्रियाँ मूल रूप से ही दोषपूर्ण होती हैं।

इन दोषों के अतिरिक्त श्रीमती पी. वी. यंग ने भी अवलोकन प्रणाली की सीमाओं की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार अवलोकन प्रणाली के प्रयोग मे निम्नलिखित तीन प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं–

(अ) कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जिनका अवलोकन निषिद्ध होता है।

(ब) अवलोकन की जा सकने वाली कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जिनसे घटित होने का समय व स्थान पूर्ण निर्धारित न होने के कारण अवलोकन सम्भव नहीं होता है, एवं

(स) कुछ घटनाओं की प्रवृत्ति ही ऐसी होती है जिनका अवलोकन करना समभव नहीं है। इस प्रकार की घटनाओं की प्रकृत्ति के स्पष्टीकरण के आधार पर श्रीमति यंग ने अवलोकन प्रणाली के सीमित उपयोग की ओर संकेत किया है। अवलोकन की सफलता के लिये सर्वप्रथम अध्ययनकर्त्ता द्वारा यह निर्धारित कर लेना आवश्यक है कि अवलोकन किन व्यक्तियों अथवा तथ्यों का करना है। अवलोकन का कौन–सा दिन सबसे अधिक उपयुक्त हो सकता है साथ ही अवलोकित तथ्यों का आलेखन किस प्रकार किया जायेगा। कोई भी अध्ययनकर्त्ता अकेले तथ्यों का तब तक अवलोकन नहीं कर सकता जब तक कि उसे अध्ययन स्थल के लोगों से सहयोग प्राप्त न हो। अवलोकन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में अवलोकन निर्देशिका, अवलोकन कार्ड तथा अवलोकन चार्ट के समुचित उपयोग का विशेष महत्त्व होता है।

2.13.6 अवलोकन के प्रकार

(Kinds of observations)

अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से अवलोकन को प्रायः निम्नलिखित 6 भागों में विभाजित किया जाता है :

1. अनियन्त्रित अवलोकन या निरीक्षण (Uncontrolled Observations)
2. नियन्त्रित अवलोकन या निरीक्षण (Controlled Observations)
3. सहभागी निरीक्षण या अवलोकन (Participant Observations)
4. असहभागी निरीक्षण या अवलोकन (Non-Participant Observations)
5. अर्द्धसहभागी निरीक्षण या अवलोकन (Quasi-Participant Observations)
6. सामूहिक निरीक्षण या अवलोकन (Mass Observations)

अवलोकन या निरीक्षण के अपरोक्त प्रकारों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

अनियन्त्रित अवलोकन या निरीक्षण

(Uncontrolled Observation)

अनियन्त्रित निरीक्षण ऐसे निरीक्षण को कहा जा सकता है जबकि उन लोगों पर जिनका कि हम निरीक्षण कर रहे हैं, निरीक्षण करते समय किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहे। दूसरे शब्दों में, जब प्राकृतिक पर्यावरण एवं अवस्था मे किन्हीं क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है, साथ ही क्रियाएँ किसी भी बाह्य शक्तियों द्वारा संचालित एवं प्रभावित नहीं की जाती, तो ऐसे निरीक्षण को अनियन्त्रित निरीक्षण कहा जाएगा।

डॉ. पी. वी. यंग ने अनियन्त्रित निरीक्षण का अर्थ बताते हुए कहा है, कि "अनियन्त्रित निरीक्षणों में हमें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों की सूक्ष्म परीक्षा करनी होती है, जिनमें यथार्थता के यन्त्रों के प्रयोग अथवा निरीक्षण की हुई घटना की शुद्धता की जाँच का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता।" डॉ. यंग के कथन से स्पष्ट ही है कि अनियन्त्रित निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता घटनाओं एवं सामाजिक परिस्थितियों का केवल निरीक्षण ही करता है, और समाजिक सम्बन्धों के बारे में ज्ञान का संकलन करता है। निरीक्षणकर्त्ता निरीक्षण की हुई घटना को परखता नहीं है।

वास्तव में सामाजिक अनुसन्धान में यह प्रविधि अर्थात् अनियन्त्रित निरीक्षण अत्यधिक प्रयुक्त होती है। प्रो. गुडे एवं हॉट ने तो यहाँ तक कहा है कि, "मनुष्य के पास सामाजिक सम्बन्धों के बारे मे जो कुछ भी ज्ञान है, उसका अधिकांश अनियन्त्रित निरीक्षण के द्वारा ही प्राप्त हुआ है, चाहे वह निरीक्षण सहभागी हो, या असहभागी।" स्पष्ट ही है कि अनियन्त्रित निरीक्षण सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की एक सुदृढ़ प्रविधि है।

अनियन्त्रित निरीक्षण की उपयोगिता (Importance of Un-controlled Observation) :

जहाँ तक सामाजिक अनुसन्धान में अनियन्त्रित निरीक्षण की उपयोगिता का प्रश्न है प्रायः कोई भी इस तथ्य से मुँह न छिपाएगा कि अधिकतर सामाजिक अनुसन्धान–कार्य इसी प्रकार के निरीक्षण द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं और इसका मुख्य कारण यह है कि सामाजिक घटना की कुछ इस प्रकार की प्रकृति होती है कि नियन्त्रित निरीक्षण सदैव सम्भव नहीं हो पाता। ज्यादातर सामाजिक घटनाओं की वास्तविकता परखने के लिये घटनास्थल पर ही उनका अध्ययन किया जा सकता है। यही मुख्य कारण है कि आज भी अधिकतर सामाजिक सिद्धान्तों का निर्माण इसी अनियन्त्रित निरीक्षण के आधार पर होता है।

अनियन्त्रित निरीक्षण के मुख्य दोष (Main Defect of Un-controlled Observation) :

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि –

(1) इस प्रकार के निरीक्षण में अनुसन्धानकर्त्ता पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं होता, और इस नियन्त्रण के अभाव में निरीक्षणकर्त्ता कुछ भी भूल या गलती कर सकता है।

(2) चूँकि वह उस समस्या के बारे में सब–कुछ जानता है जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है, अतः उसी समस्या का अध्ययन करने पर उसमें भावात्मक विश्वास पैदा हो जाता है, जो कि निष्कर्षों को त्रुटिपूर्ण बना देता है।

(3) इस प्रकार अनियन्त्रित निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता का व्यक्तिगत पक्षपात अनावश्यक रूप में प्रवेश पा लेता है जिससे कि निष्कर्षों में भी वैज्ञानिकता नहीं आ पाती है। प्रो. बर्नार्ड ने इस सम्बन्ध में उचित ही कहा है कि "आँकड़े इतने वास्तविक एवं सजीव होते हैं और उनके बारे में हमारी भावनाएँ इतनी दृढ़ होती हैं कि कभी–कभी हम अपनी भावनाओं की शक्ति को ही ज्ञान का विस्तार समझने की गलती कर बैठते हैं।"

नियन्त्रित

(Controlled Observation)

जिस प्रकार सामाजिक विज्ञानों का शनैः–शनैः विकास होता आया है, उसी प्रकार सामाजिक अनुसन्धान–प्रविधियों का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया है। नियन्त्रित निरीक्षण भी अनियन्त्रित निरीक्षण के विकसित स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तव में अनियन्त्रित निरीक्षण के अनेक दोषों एवं कमियों के कारण ही इस पद्धति का सूत्रपात हुआ। इस प्रविधि में अनेक साधनों द्वारा निरीक्षण को नियन्त्रित किया जाता है। इस प्रकार के निरीक्षण की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसमें निरीक्षणकर्त्ता पर तो नियन्त्रण होता ही है, साथ ही साथ निरीक्षण करने वाली समाजिक घटना पर भी नियन्त्रण किया जाता है। इसमें पहले अध्ययन अर्थात् निरीक्षण की सम्पूर्ण योजना तैयार की जाती है–और तब निरीक्षण किया जाता है। अनेक साधनों द्वारा सूचनाएँ इकट्ठी होती रहती हैं–और एक प्रकार से निरीक्षणकर्त्ता एक मशीन की भाँति उन साधनों द्वारा स्वचालित होता रहता है। इस प्रकार के अनेकों अध्ययन किए जाते रहे हैं जिनमें कि इस प्रविधि का प्रयोग होता आया है। थाईलैण्ड के सारापी जिले में लोगों के स्वास्थ्य की दशाओं का अध्ययन डी. डी. टी. पाउडर छिड़कने के बाद फिर किया गया था (घटना पर नियन्त्रण)। इस पद्धति में नियन्त्रण दो प्रकार के कार्य रूप में परिणत किया जाता है।

(अ) सामाजिक घटना पर नियन्त्रण (Control over Social Phenomena) : इस प्रविधि में निरीक्षण करने वाली घटना को नियन्त्रित किया जाता है। इसको हम सामाजिक प्रयोग (Social Experiment) भी कह सकते हैं। जिस प्रकार भौतिक वैज्ञानिक (Physical Scientist) भौतिक दुनिया की परिस्थितियों को प्रयोगशाला की नियन्त्रित अवस्थाओं या दशाओं के अन्तर्गत लाकर अपने अध्ययन–विषय का अध्ययन करता है, उसी प्रकार समाजशास्त्री भी सामाजिक घटनाओं को सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत ही नियन्त्रित करने तथा अध्ययन–कार्य को संचालित करने का प्रयत्न करता है, यद्यपि यह कोई आसान कार्य नहीं।

इसके लिए सामाजिक वैज्ञानिक को अत्यन्त सूझ–बूझ, कुशलता एवं अनुभव से कार्य लेना पड़ता है। इस प्रविधि के द्वारा किए गए कुछ अध्ययनों में थकान का अध्ययन, समय तथा गति का अध्ययन, उत्पादकता का अध्ययन आदि अर्द्ध–सामाजिक विषय विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। समाजशास्त्रीय क्षेत्र में बालकों के व्यवहारों से सम्बन्धित कई अध्ययनों का उल्लेख किया जा सकता है।

(ब) निरीक्षणकर्त्ता पर नियन्त्रण (Control over Observer) : नियन्त्रित निरीक्षण की दूसरी प्रविधि स्वयं निरीक्षणकर्त्ता पर नियन्त्रण है। इसके अन्तर्गत निरीक्षण के विषय या सामाजिक घटना पर नियन्त्रण न रखकर स्वयं निरीक्षणकर्त्ता को कुछ साधनों द्वारा नियन्त्रित व संचालित किया जाता है। यह मानी हुई बात है कि यदि निरीक्षणकर्त्ता सामाजिक घटनाओं को उनके वास्तविक एवं सत्य रूप में देखना चाहता है और यदि वह यह भी चाहता है कि उसके अध्ययन पर किसी भी प्रकार का निजी पक्षपात या/और कोई व्यक्तिगत प्रभाव की छाया न पड़े तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं अपने लिए कुछ नियन्त्रणों को स्वीकार करे। यह नियन्त्रण कई साधनों के प्रयोग से हो सकता है। जैसे निरीक्षण की विस्तृत योजना पहले ही बना लेना, अनुसूची व प्रश्नावली का प्रयोग, विस्तृत क्षेत्रीय नॉट्स, मानचित्र का प्रयोग एवं अन्य यन्त्र जैसे डायरी, फोटोग्राफ्स, कैमरा, टेपरिकार्डर, सिनेमा–फिल्म आदि का प्रयोग।

अधिकतर विद्वानों ने इस प्रविधि की मुक्तकंठ से सराहना की है। प्रो. गुडे एवं हॉट का मत है कि चूँकि सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए अनुसन्धान 'विषय पर नियन्त्रण रख सकना अत्यन्त कठिन होता है, अतः कम से कम उसे अपने ऊपर तो नियन्त्रण रखना ही चाहिए।

नियन्त्रित तथा अनियन्त्रित अवलोकन में अन्तर (Distinction between Controlled and Uncontrolled Obser-vation) : नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकन प्रणाली में निम्न अन्तर मुख्य रूप से हैं :

नियन्त्रित अवलोकन **(Controlled)**	अनियन्त्रित **(Uncontrolled)**
1. नियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत उन घटकों पर नियन्त्रण किया जाता है	1. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता का किसी भी प्रकार

जिनका कि हमें अध्ययन करना है।	से नियन्त्रण नहीं होता है।
2. नियन्त्रित अवलोकन बनावटी है।	2. जबकि अनियन्त्रित अवलोकन स्वाभाविक है।
3. नियन्त्रित अवलोकन में स्वयं अध्ययन–कर्त्ता पर भी नियन्त्रण रखा जाता है और उसे कुछ निश्चित ढंग से अव–लोकन कार्य करने की छूट होती है।	3. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता पर कोई भी नियन्त्रण नहीं होता है।
4. नियन्त्रित अवलोकन में कुछ साधनों को काम में लाया जाता है। जैसे– अवलोकन–अनुसूची, मानचित्र, नोट्स आदि।	4. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में किसी बनावटी साधन का प्रयोग नहीं किया जाता है।
5. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकन की सारी योजनायें पहले से ही बना ली जाती हैं।	5. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में कोई खास योजना बनाने की आवश्यकता नहीं होती है।
6. नियन्त्रित अवलोकन चूँकि बनावटी होता है। इस कारण इसमें वास्तविकता का पता लगाना कभी–कभी बड़ा कठिन हो जाता है।	6. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन के द्वारा घटनाओं के गोपनीय पक्ष के बारे में भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है।
7. नियन्त्रित अवलोकन तभी उपयुक्त होता है जब अध्ययन समूह छोटे आकार का होता है।	7. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन के द्वारा विस्तृत समूहों का अध्ययन करना सम्भव है।
8. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता के व्यवहारों पर नियंत्रण होने के कारण वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।	8. इसके विपरीत अनियंत्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता पर कोई नियंत्रण न होने के कारण वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।

सहभागी अवलोकन

(Participant Observation)

सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लिण्डमैन ने 1924 में अपनी पुस्तक 'सोशियल डिस्कवरी' में किया। उन्होंने सामाजिक शोध की प्रत्यक्ष विधियों की कुछ आलोचना की है। किसी भी घटना के प्रत्यक्ष (असहभागिक) अवलोकन में जो कमियाँ रह जाती हैं उन्हें ध्यान मे रखते हुए उन्होंने सहभागी अवलोकन के प्रयोग का सुझाव दिया है।

प्रो. लिण्डमैन सहभागी अवलोकन के पक्ष में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "सहभागी अवलोकन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी भी घटना का विश्लेषण तभी शुद्ध हो सकता है, जब वह बाह्य तथा आन्तरिक दृष्टिकोण से मिलकर बना हो। इस प्रकार उस व्यक्ति का दृष्टिकोण जिसने घटना में भाग लिया तथा जिसकी इच्छाएँ एवं स्वार्थ उसमें किसी न किसी रूप में निहित थे, उस व्यक्ति के दृष्टिकोण से निश्चित ही कहीं अधिक यथार्थ व भिन्न होगा जो सहभागी न होकर केवल ऊपर दृष्टा या विवेचनकर्त्ता के रूप में रहा है।"

सामाजिक शोध में सहभागी अवलोकन के पीछे मुख्यतः यही विचारधारा कार्य करती है। सहभागी अवलोकन क्या है? सहभागी अवलोकन से हमारा क्या तात्पर्य है? यह एक कठिन प्रश्न है जिसका प्रत्युत्तर कुछ शब्दों में दिया जाना कठिन है। इस प्रविधि का प्रयोग मूल रूप में मानव विज्ञान में आदिवासियों के अध्ययनों से प्रारम्भ हुआ। किसी भी समाज की गहराइयों में पहुँचने तथा व्यवहार एवं प्रतीकों के पीछे छुपे हुए मन्तव्यों को जानने के लिए अध्ययन किये जाने वाले समूह का सदस्य बनना आवश्यक है। अतः साधारण शब्दों में सहभागिता से हमारा तात्पर्य अध्यित समूह की सदस्यता ग्रहण करने से है। जैसा कि फोरेक्स तथा रिचर ने लिखा है कि, "सहभागिक अवलोकन में शोधकर्त्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह का सदस्य बन जाता है।" समूह के सदस्य बनने से क्या तात्पर्य है? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर पी. वी. यंग ने इन शब्दों में दिया है—"सामान्यतः अनियन्त्रित अवलोकन का प्रयोग करते हुए, एक सहभागित अवलोकनकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के साथ रहता है अथवा उनके जीवन की गतिविधियों में भाग लेता है।"

डॉ. एम. एच. गोपाल के अनुसार, "सहभागी अवलोकन इस मान्यता पर आधारित है कि किसी घटना की व्याख्या या अर्थ (Interpretation) तभी अधिक विश्वसनीय और विस्तृत हो सकता है जब अनुसंधानकर्त्ता परिस्थिति की गहराइयों में पहुँच जाता है।" अर्थात्

अनुसंधानकर्त्ता स्वयं सहभागी के रूप में परिस्थितियों की गहराई में पहुँचकर वैषयिक परिणाम (Subjective results) प्राप्त कर सकता है।

पीटर एच. मान के शब्दों में, "सहभागी अवलोकन का अभिप्राय प्रायः ऐसी स्थिति से होता है जिसमें निरीक्षणकर्त्ता अपने अध्ययन समूह के उतने ही निकट होता है जितना कि उसका कोई सदस्य होता है तथा उसकी सामान्य क्रियाओं मे भाग लेता है।"

लुण्डबर्ग और मारग्रेट लॉसिंग के मतानुसार, "इस पद्धति के लागू करने में यह अनुभव करना आवश्यक है कि न केवल अध्ययनकर्त्ता ही यह अनुभव करे कि वह सामूहिक जीवन में भाग ले रहा है बल्कि समूह के सदस्य, भी उसके विषय मे ऐसा ही अनुभव करें।"

गुडे तथा हॉट के अनुसार, "इस कार्य–प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि अनुसंधानकर्त्ता अपने को समूह के सदस्य के रूप में स्वीकृत हो जाने योग्य बना लेता है।"

रेमण्ड फर्थ के शब्दों में, "किसी विशेष संस्कार या उत्सव में लोग किसी सहयोगी की ही कल्पना कर सकते हैं निरीक्षणकर्त्ता की नहीं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि कोई समूह के बाहर न रह कर उसका ही अंग बनकर रहे।"

पी. वी. यंग के मतानुसार, "सहभागी निरीक्षणकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के बीच में रहता है अथवा अन्य प्रकार से उसके जीवन में भाग लेता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सहभागी निरीक्षणकर्त्ता समूह का अंग बनकर रहता है, जिससे वह जीवन के प्रत्येक अंग की गहराई से छानबीन कर सके। वह तटस्थ होकर जीवन के विविध पक्षों का अध्ययन नहीं कर सकता। इसमें यह सावधानी अवश्य रखनी पड़ती है कि वह जिन पक्षों का अवलोकन करता है वह अनुसन्धान की सामग्री के अनुरूप होना चाहिए।

इस बात को मोज़र ने इस प्रकार स्पष्ट किया है–"निरीक्षणकर्त्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह अथवा संगठन के प्रतिदिन के जीवन में बीतने वाली घटनाओं मे भाग लेता है। वह यह देखता है कि समुदाय में क्या–क्या होता है, वे किस प्रकार व्यवहार करते हैं तथा वह उनसे यह जानने के लिए बातचीत भी करता है कि घटित घटनाओ के प्रति उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ हैं, वे उनका क्या अर्थ लगाते हैं।"

सहभागी अवलोकन की इस व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विधि में केवल घटनाओं का ही अवलोकन नहीं किया जाता, अपितु घटनाओं की वास्तविकताओं को

जानने के लिए समुदाय के सदस्यों से बातचीत की जाती है। इस प्रकार सहभागिक अवलोकन विधि, जन औपचारिक साक्षात्कार तथा अवलोकन दोनों विधियों का एक सम्मिश्रण है।

सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता से यह आशा की जाती है कि वह अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य बने। शोधकर्त्ता को समूह का सदस्य बनने के लिए किस प्रकार की भूमिका अपनानी चाहिए इसे हम तीन शीर्षकों के अन्तर्गत समझेंगे :

(अ) सहभागिता तथा लगाव की मात्रा : सहभागी दृष्टा की परिभाषा देते हुए जॉन मैज ने लिखा है "जहाँ दृष्टा के हृदय की धड़कने समूह के अन्य व्यक्तियों की धड़कनों से मिल जाती हैं तथा वहाँ किसी दूरस्थ प्रयोगशाला में आए हुए तटस्थ प्रतिनिधि के समान नहीं रह जाता तो समझना चाहिए कि उसने सहभागी दृष्टा कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया है।

सहभागी अवलोकन में शोधकर्त्ता को यथार्थ रूप में उदृत समूह में इतना ही मिलना चाहिए कि उसे यह ध्यान रहे कि वह अपने उद्देश्य को न भूले अर्थात् उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह पहले एक शोधकर्त्ता है और बाद में किसी समूह का सदस्य है।

(ब) सहभागिता का प्रकट रूप : सहभागिक दृष्टा को अपनी भूमिका के सम्बन्ध में अध्यित समूह को बताना चाहिए या नहीं। इस सम्बन्ध में समाज वैज्ञानिकों में एक मत्यता नहीं है। कुछ वैज्ञानिक इसके पक्ष में हैं और कुछ इसके विपक्ष में हैं कुछ वैज्ञानिकों ने इन दोनों स्थितियों की कमियों को ध्यान में रखते हुए आँशिक गुप्तता की बात कही है। ऐसी स्थिति में शोधकर्त्ता अपना परिचय तो देता है परन्तु अपने मन्तव्य को नहीं बताता है। इसमें यह लाभ होता है कि वह समूह के व्यवहार को प्रभावित करने से बच जाता है।

(स) सहभागिक निरीक्षण या अवलोकनकर्त्ता की भूमिका : एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता में यह गुण होना चाहिए कि वह ऐसी भूमिका निभाये जिससे वह समुदाय के जीवन का सम्पूर्ण तथा पक्षपातरहित एक चित्र प्राप्त कर सके।

सहभागिक अवलोकन के गुण

(Merits of Participant Observation)

(1) सहभागिक व्यवहार का अध्ययन : यदि किसी अध्यित समूह के सदस्य यह नही जानते कि उनके व्यवहार का अवलोकन किया जा रहा है, तब उनके व्यवहार में स्वाभाविकता रहेगी तथा अवलोकनकर्त्ता की स्थिति के अपेक्षाकृत कम प्रभावित होने की सम्भावना बनी

रहेगी। एक सामाजिक वैज्ञानिक के रूप में हमारा अन्तिम लक्ष्य किसी भी सामाजिक समूह के प्रतिदिन के स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन करना होता है अतः जितना ही एक अवलोकनकर्त्ता अध्यित समूह के व्यक्तियों में अपने आपको घुला–मिला लेता है, उतना ही अधिक वह उसके स्वाभाविक व्यवहार के अध्ययन के लिए सक्षम बन जाता है।

(2) गहन अनुभवों की प्राप्ति : सहयोगिक अवलोकन में एक अवलोकनकर्त्ता कोई न कोई भूमिका अदा करता है। अवलोकनकर्त्ता की यह स्थिति उसे समूह की गहराइयों में जाने का अवसर प्रदान करती है जो कि एक तटस्थ अवलोकनकर्त्ता के लिए सम्भव नहीं होता है। उसे कभी–कभी अपनी सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की भूमिका के कारण वे सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं जो मात्र एक अवलोकनकर्त्ता को प्राप्त नहीं होती। समूह की भावनाओं के साथ तादात्मय स्थापित करने से अवलोकनकर्त्ता किसी जनजातीय–नृत्य की थकावट तथा उल्लास अथवा किसी कारखाने में काम करने वाले मजदूरो के प्रति उनके फोरमैन द्वारा किए गए कठोर व्यवहार के सम्बन्ध में स्वयं अनुभव प्राप्त कर सकता है।

(3) विस्तृत सूचनाओं का संकलन : रेमण्ड फर्थ ने सहभागिक प्रेक्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "किसी भी समूह के सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों की संरचना तथा प्रकार्यों की जटिलताओं का अध्ययन करने का यह एकमात्र तरीका है।" चूँकि एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की समयावधि कई महीनों तक चल सकती है, अतः उसके द्वारा प्राप्त सामग्री एक लम्बे साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं से भी अधिक विस्तृतता लिये हुए होगी। अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि से प्राप्त तथ्य अधिक विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि घटनाओं के घटित होने के अवसर पर अवलोकनकर्त्ता स्वयं उपस्थित रहता है। इस विधि की एक और अन्य विशेषता यह है कि यह विधि अवलोकनकर्त्ता को समूह की भावनाओं, विचारों तथा व्यवहारों के पीछे छुपे हुए भावों को जानने के लिए आवश्यक सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अधिकाँश व्यक्ति अपने व्यवहार को एक तटस्थ अवलोकन द्वारा अध्यित किये जाने के प्रति प्रसवित नहीं होते, अपितु वे अवलोकन के लिए कभी स्वीकृति नहीं देते। यह बात विशेषतः अपधारी समूह या उच्च प्रस्थिति वाले समूह के व्यक्तियों के लिए चरितार्थ होती है। एक डाकू गिरोह कभी भी अपने समूह की क्रियाओं का अवलोकन ऐसे व्यक्तियों को करने की अनुमति नहीं देता जो उनके समूह से बाहर का व्यक्ति हो। ऐसी स्थितियों में अवलोकनकर्त्ता के समक्ष एक ही विकल्प रह जाता है कि वह

उस समूह का एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता के रूप में सदस्य बनकर अवलोकन या अवलोकन विधि को त्याग दे।

सहभागिक अवलोकन की सीमाएँ (Limitations of Participant Observation) : गुडे एव हॉट ने सहभागिक अवलोकन विधि को शोध कार्य में प्रयोग किए जाने के प्रति यह चेतावनी दी है कि इस विधि के जहाँ कुछ गुण हैं, वहाँ इसके कुछ स्पष्ट अवगुण भी हैं। अतः इसका प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। यहाँ हम इस विधि के कुछ मुख्य अवगुणों पर विचार करेंगे :

(1) वस्तुपरकता की कमी : सहभागिक अवलोकनकर्त्ता अध्यित समूह का सक्रिय सदस्य बन जाता है इस कारण समूह के प्रति अवलोकनकर्त्ता की घनिष्ठता तथा आत्मीयता की प्रवृत्ति अत्यधिक विकसित हो जाने से अध्यित समूह के प्रति उसमें लगाव होने की संभावना रहती है। कई बार यह लगाव की भावना उसे समूह की भावनाओं में बह जाने के लिए बाध्य कर देती है और घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने तथा उन्हें नोट करने से वंचित कर देती है।

(2) अनुभवों की सीमा का संकुचन : एक अत्यधिक संस्तरित समुदाय में इस विधि का प्रयोग अलाभकर सिद्ध हो सकता है क्योंकि अवलोकनकर्त्ता का किसी समुदाय के वर्ग से सहभागिक होने का अवसर उसे समुदाय के दूसरे वर्ग में सहभागिक होने से वंचित कर सकता है। सहभागिक अवलोकनकर्त्ता को समुदाय में कोई एक भूमिका अपनानी होती है। यह भूमिका उस समुदाय में उसके एक विशिष्ट मैत्री समूह का निर्माण करती है अतः जितना अधिक वह अपने मैत्री समूह सम्बन्ध में जान पाता है उतना ही वह मैत्री समूह के बाहर के व्यक्तियो के सम्बन्ध मे अनभिज्ञ हो जाता है। भारतीय गाँवों के अध्ययन के सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की यह भूमिका उसे अपने से निम्न अथवा उच्च जातियों के सम्बन्ध में जानने के अवसर के द्वारों को बन्द कर देती है। रायले ने इसे अभिनतिपूर्ण दृष्टि का प्रभाव कहा है। जिसके द्वारा शोधकर्त्ता के द्वारा अपनाई गई भूमिका के कारण उसका दृष्टिकोण अभिनतिपूर्ण बन जाता है।

(3) तथ्यों की प्रमाणिकता में कमी : इस विधि के प्रयोग द्वारा तथ्यों की समरूपता को बनाए रखना कठिन होता है। विभिन्न विषयों पर प्रत्येक व्यक्ति से घर पर जाकर सूचनाओं को एकत्र करना तथा मनोवृत्तियों का परीक्षण करना इस विधि द्वारा सम्भव नहीं हो पाता। सहभागिक तथा असहभागिक दोनों विधियों मे अवलोकन की समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी

रहती हैं। जिस सीमा तक एक अवलोकनकर्त्ता सहभागिक बन जाता है, उसके अनुभवों में एक विशिष्टता आ जाती है। उसके इन अनुभवों को किसी अन्य शोधकर्त्ता द्वारा दुहराया जाना कठिन होता है।

(4) अत्यधिक समय तथा क्षमताओं का नष्ट होना : इस विधि में कई बार घटनाओं के लिए एक लम्बा इन्तजार करना होता है जिसमें अत्यधिक समय भी लगता है तथा क्षमतओं का व्यय भी होता है। शोधकर्त्ता इच्छानुसार घटनाओं का परीक्षण नही कर सकता है।

(5) अपरिचितता के लाभ का अभाव : कभी–कभी हम एक अपरिचितता की भूमिका में जो सूचनाएँ किन्हीं व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्राप्त कर लेते हैं वे हमें समूह की क्रियाओं में भाग लेने से प्राप्त नहीं हो पाती। समूह के साथ हमारा पूर्ण एकीकरण हो जाने से हम कभी–कभी कुछ बातों को सामान्य समझकर छोड़ देते हैं जबकि एक अपरिचित व्यक्ति के लिए ऐसी सूचनाएँ भी आकर्षित होती हैं और वह उन्हें नोट करना नहीं भूलता। इसे वाइटे ने अपरिचितता के लाभ का अभाव कहा है।

(6) सर्वांग दृष्टिकोण : फारेक्स तथा रिचर ने लिखा है कि जब कभी हम किसी समूह के अत्यन्त आत्मीय सदस्य बन जाते हैं तब घटनाओं को सम्पूर्णता में देखने का हमारा परिप्रेक्ष्य प्रायः लुप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ हम पेड़ों को देखने में कभी–कभी सम्पूर्ण जंगल की वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाते हैं। समूह के एक सदस्य के रूप में हम कुछ सदस्यों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान जाते हैं किन्तु कुछ अन्य सदस्यों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अपूर्ण रह जाती है।

गुडे तथा हॉट ने लिखा है कि शोध की कई ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनमें एक बाध्य व्यक्ति के लिए हर प्रकार से सहभागिक बनना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, एक सह–समाजशास्त्री एक अपराधी गिरोह के अध्ययन करने के लिए अपराधी नहीं बन सकता। इसी प्रकार रेमण्ड फर्थ ने लघु अवधि में किए सहभागिक अवलोकन की निम्न सीमाएँ बताई हैं :

(i) सम्पूर्ण अर्थ के बोध का अभाव।

(ii) अस्थाई दशाओं को सामान्य दशाएँ समझने की भूल।

(iii) अभिनति की समस्या।

(iv) आत्मीय सूचनादाताओं को अधिक महत्त्व देने से उत्पन्न अभिनति।

(v) शोधकर्त्ता की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि से उत्पन्न अभिनति।

(vi) शोधकर्त्ता द्वारा तथ्यों के चयन की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न अभिनति।

सहभागिक अवलोकन के प्रयोग में आने वाली ये कुछ सीमाएँ हैं, तथा इसके नकारात्मक पहलू हैं। अन्त में हम मोजर तथा कालटेन के शब्दों द्वारा सहभागिक अवलोकन की विवेचना को समाप्त करते हैं।

जैसा कि हमने देखा है कि सहभागिक अवलोकन एक अत्यन्त वैयक्तिक विधि है एक व्यक्ति इसके द्वारा न तो पूर्णतः विश्वसनीय तथा वस्तुपरक चित्र ही प्राप्त कर सकता है और न ही कोई अवलोकनकर्त्ता एक ही घटना के अपने अवलोकन द्वारा परिणाम प्राप्त कर सकता है।

यही कारण है कि इस विधि का प्रयोग अधिकाँशतः अन्वेषणात्मक शोध हेतु उपयोगी अवधारणाओं तथा प्राक्कल्पनाओं को विकसित करने के लिए किया जाता है। इस कार्य में सहभागिक अवलोकन विधि ने बहुत योगदान दिया है।

असहभागी अवलोकन

(Non-Participant Observation)

सहभागी अवलोकन विधि की कमजोरियों को दूर करने में असहभागी अवलोकन विधि सहायता करती है। असहभागी अवलोकन अनियन्त्रित अवलोकन का एक प्रमुख स्वरूप है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता समूह या समुदाय का, जिसका कि उसे अध्ययन करना है, अवलोकन एक तटस्थ दृष्टि एवं वैज्ञानिक भावना से करता है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता समुदाय या समूह का न तो अस्थाई सदस्य बनता है और न ही उसकी क्रियाओं में भागीदार बनता है, दूर से ही जो कुछ देखता है उनकी गहराइयों तक पहुँचने का प्रयास करता है। समाजिक जीवन की ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं जहाँ सहभागी अवलोकन करना सम्भव नहीं होता। वहाँ पर विधि अत्यधिक उपयुक्त होती है। यही नहीं यह विधि बहुत रायों के अभिनतिपूर्ण दृष्टि के प्रभाव से रहित तथा वाइटे के अपरिचितता के लाभ से युक्त होती है। उदाहरण के लिए, शिशुओं के व्यवहार के अध्ययन में सहभागिक विधि का प्रयोग सम्भव नहीं है। कोई भी शोधकर्त्ता बालकों अथवा शिशुओं के अध्ययन हेतु अल्पकाल के लिए पुनः शिशु अथवा बालक नहीं बन सकता। इस प्रकार कई स्थितियों मे एक शोधकर्त्ता में पूर्ण का सहभागिक बनना यदि सम्भव नहीं तो कम से कम दुष्कर अवश्य है।

फोरेक्स तथा रिचर ने असहभागिक अवलोकन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "असहभागिक अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता अपने व्यक्तित्व को बिना छुपाए घटना का अवलोकन करता है। शोधकर्त्ता अध्यित समूह को शोध के उद्देश्य को बता देता है तथा इस आधार पर समूह में प्रवेश करने का प्रयास किया जाता है।"

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि अवलोकनकर्त्ता समूह में उपस्थित तो रहता है परन्तु अध्यित समूह की क्रियाओं तथा व्यवहारों मे भाग नहीं लेता तथा वह उनका अवलोकन एक तटस्थ अवलोकनकर्त्ता अर्थात् समूह से एक पृथक् व्यक्ति के रूप में करता है। असहभागिक अवलोकन स्वाभाविक तथा प्रयोगात्मक दोनों स्थितियों में किया जाता है।

(अ) स्वाभाविक स्थिति में असहभागिक अवलोकन : इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता किसी भी समूह के व्यवहार का उसकी स्वाभाविक स्थिति में अध्ययन करता है। वार्नर तथा लन्ट ने ऐसी बहुत सारी स्थितियों तथा सामाजिक अन्तः क्रियाओं का उल्लेख किया है। जिनका अध्ययन इस प्रविधि द्वारा किया जा सकता है जैसे जन्म, विवाह अथवा मृत्यु संस्कारों के अध्ययन के लिए इस विधि का चुनाव किया जा सकता है। इस विधि में सबसे बड़ी कमी यह है कि अवलोकनकर्त्ता के प्रभाव से अवलोकन प्रभावित हो सकता है जब कभी खेल के मैदान में बालकों के व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा हो तब अवलोकनकर्त्ता की उपस्थिति के कारण बालकों के व्यवहार मे परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है। कभी–कभी इस स्थिति से बचने के लिए एकतरफा पर्दे अथवा शीशे का प्रयोग किया जाता है। जिससे अध्यित समूह को यह पता न चले कि उनके व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा है परन्तु यह प्रयोग केवल सीमित मात्रा में किया जा सकता है।

(ब) प्रयोगात्मक स्थिति में असहभागिक अवलोकन : इस प्रकार की विधि में किसी भी समूह का अवलोकन अपेक्षाकृत अस्वाभाविक स्थिति में करने का प्रयास किया जाता है अर्थात् अवलोकन किये जाने वाले समूह के लिए एक विशिष्ट परिवेश का निर्माण किया जाता है जैसा बालकों के किसी समूह का एक प्रयोगशाला में उनका अध्ययन।

असहभागिक अवलोकन के प्रयोग द्वारा वे लाभ प्राप्त होते हैं जो विशेषतः सहभागिक अवलोकन की सीमाओ अथवा अवगुणों द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस विधि में धन, समय तथा क्षमता तीनों का व्यय सहभागिक अवलोकन की अपेक्षा कम होता है। साथ ही साथ इस विधि में अवलोकनकर्त्ता का अध्यित समूह से कोई लगाव न होने के कारण अभिनति पक्षपात अथवा व्यक्ति–परकता के अवगुणों से भी बचाव हो जाता है।

असहभागी अवलोकन के गुण

(Merits of Non-Participant Observation)

असहभागी अवलोकन के निम्नलिखित लाभ हैं :

1. पूर्ण एवं सही सूचनाएँ (Complete & Correct Information) : इस प्रणाली के द्वारा पूर्ण एवं सही सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं, जो प्रश्न पूछकर प्राप्त करना असम्भव है। उदाहरण के लिए यदि स्थानीय नेताओं का प्रभाव मालूम करना हो तो प्रश्न पूछ कर मालूम करना अत्यन्त कठिन कार्य है। स्थानीय नेताओं के प्रभाव को जानने के लिए अध्ययनकर्त्ता को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह ऐसे नेताओं द्वारा प्रभावित लोगों की क्रियाओं का अवलोकन करे। वह यह आसानी से अवलोकन कर सकता है कि एक नेता की उपस्थिति में लोग किस प्रकार का व्यवहार करते हैं एवं उसकी अनुपस्थिति में लोगों के व्यवहार में क्या परिवर्तन होता है। इस तरह यह कार्य केवल असहभागी अध्ययन के द्वारा ही सम्भव है।

2. आदर एवं सहयोग सम्भव (Respect and Cooperation Possible) : जब अध्ययनकर्त्ता किसी भी विशिष्ट समूह में भाग न लेकर निष्पक्ष दृष्टिकोण से अध्ययन करेगा तो उस समुदाय के समस्त समूह के लोगों का उसे आदर एवं सहयोग प्राप्त हो सकेगा। यह बात सहभागिक अवलोकन में नहीं है।

3. असहभागिक अवलोकन की उपयोगिता (Utility of Non-Participant Observation) : असहभागी अवलोकन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अध्ययनकर्त्ता एवं सूचनादाता के बीच आने वाले प्रश्न एवं उत्तरों की भ्रामकता से बचा जा सकता है। इस पद्धति में सूचनादाताओं के प्रश्न समझने अथवा न समझने, उनके तर्कपूर्ण उत्तर प्रदान करने, आदि की कोई सम्भावना नहीं होती क्योंकि अध्ययनकर्त्ता स्थानीय समूह के लोगों के जीवन में बिना भाग लिए हुए दूर से ही अवलोकन करता रहता है और जो कुछ मानव इन्द्रियाँ अवलोकन करती हैं उनको वैसा ही लिख देता है। अध्ययनकर्त्ता का काम केवल दूर से समुदाय के लोगों के सामजिक जीवन का अवलोकन करते रहना है। विभिन्न प्रश्नों को पूछकर सूचनादाताओं से उत्तर प्राप्त होने का इन्तजार नहीं किया जाता है।

4. वैयक्तिकता की सम्भावना (Objectivity Possible) : असहभागी अवलोकन में वैषयिकता आने की अधिक सम्भावना रहती है क्योंकि इस प्रकार के अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता चूँकि

अपने को समूह के कार्यों में आत्मसात् नहीं करता। अतः पक्षपात की भी सम्भावना नहीं रहती।

असहभागी अवलोकन के दोष (Demerits of Non-Participant Observation) : असहभागी अवलोकन के भी कुछ दोष हैं जो इस प्रकार से हैं– सबसे प्रथम दोष यह है कि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता कई घटनाओं एवं क्रियाओं का महत्त्व समझने में असफल होता है क्योंकि वह घटनाओं को अपने दृष्टिकोण से देखता है न कि भाग लेने वालों की दृष्टि से। दूसरे पूर्णतः विशुद्ध असहभागी अवलोकन असम्भव भी है।

सहभागी और असहभागी अवलोकन में अन्तर

(Distinction between Participant & Non-Participant Observation)

सहभागी (Participant)	असहभागी (Non-Participant)
1. सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता, अध्ययन स्थल का अभिन्न अंग बन कर घटनाओं का अध्ययन करता है।	1. जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत उसकी भूमिका एक अपरिचित और तटस्थ दृष्टा के रूप में होती है।
2. सहभागी अवलोकन में समुदाय के जीवन के गहरे स्तर तक पहुंच कर उसका गहन, आन्तरिक एवं सूक्ष्म अध्ययन करना अधिक सम्भव है।	2. जबकि असहभागी अवलोकन के द्वारा सामुदायिक जीवन के केवल बाह्म पक्षों का ही अध्ययन किया जा सकता है।
3. सहभागी अवलोकन के द्वारा घटनाओं का उनके स्वाभाविक रूप में देखना सम्भव होता है।	3. जबकि असहभागी अवलोकन की स्थिति में समूह के लोग अक्सर अपने व्यवहारों में परिवर्तन उत्पन्न कर लेते हैं।
4. सहभागी अवलोकन के द्वारा एक समूह के गुप्त पक्षों के संबंध में भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।	4. जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययन एक अजनबी होने के कारण सभी पक्ष उनके लिए गुप्त ही रह जाते हैं।
5. सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता स्वयं ही विभिन्न सामाजिक	5. जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता कभी–कभी समुदाय में

परिस्थितियों में बार–बार भाग लेता है।	जाता है जिससे सूचनाओं की शुद्धता की परीक्षा करने का अधिक अवसर उसे नहीं मिलता है।
6. सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता सामुदायिक जीवन में घुल जाता है और वहाँ के लोगों को यह जानने नहीं देता है कि उनका अवलोकन किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप अवलोकन उनके सरल स्वाभविक रूप में सम्भव होता है।	6. जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता एक अनजान व्यक्ति होता है और किसी भी अनजान व्यक्ति के सम्मुख कोई भी आदमी अपने सरल स्वाभाविक रूप को प्रकट नहीं करता।
7. सहभागी अवलोकन प्रविधि अत्यधिक खर्चीली है और साथ ही समय भी अधिक लगता है।	7. जबकि असहभागी अवलोकन में कम समय व धन से भी काम चल सकता है।
8. सहभागी अवलोकन केवल तभी सफल हो सकता है जब अध्ययनकर्त्ता अधिक व्यवहार–कुशल व योग्य हो।	8. जबकि असहभागी अवलोकन को सामान्य कुशलता और प्रशिक्षण से भी पूरा किया जा सकता है।
9. सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता किसी भी दशा में अपने वास्तविक परिचय को छिपाए रखने का प्रयत्न करता है।	9. जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत उन सभी वैज्ञानिक प्रविधियों तथा उपकरणों का प्रयोग करना सम्भव है जो किसी भी अवलोकन को अधिक उपयोगी बना सकते हैं।
10. सहभागी अवलोकन के द्वारा स्वयं अध्ययनकर्त्ता अपने द्वारा एकत्रित तथ्यों का सत्यापन नहीं कर सकता है।	10. जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अध्ययन के प्रत्येक स्तर पर घटनाओं का सत्यापन करना सम्भव होता है।

अर्द्ध–सहभागी अवलोकन

(Quasi-Participant Observations)

प्रो. गुडे एवं हॉट ने अर्द्ध–सहभागी अवलोकन का सुझाव दिया है जिसमें सहभागिक अवलोकन प्रणाली का भी प्रयोग कर लिया होता है। उन्होंने बताया है कि पहले अध्ययनकर्त्ता समूह के दैनिक कार्यों में तो सहभागी अवलोकनकर्त्ता रहता है, लेकिन किसी विशेष घटना के अवलोकन के समय वह असहभागिक अवलोकनकर्त्ता बन कर उसमें भाग लेते हुए दूर बैठ कर ही उसका अवलोकन करता है। इस तरह अर्द्ध–सहभागिक अवलोकन एक मिश्रित प्रणाली है जिसमें सहभागी और असहभागी अवलोकन का समन्वित रूप विद्यमान होता है। प्रो. गुडे तथा हॉट का विचार है कि अनियन्त्रित अवलोकन की इन तीनों प्रणालियों में अर्द्ध–सहभागी अवलोकन सबसे अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि अर्द्ध–सहभागी अवलोकन में सहभागी तथा असहभागी दोनों प्रकार के अवलोकनों का मिश्रण होने के कारण इनके दोषों को काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार विलियम ह्वाइट ने भी यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक तथ्यों की जटिलता के कारण किसी समूह का पूर्ण सहभागी होकर अध्ययन करना एक अत्यधिक अव्यावहारिक दृष्टिकोण है। किसी एक समूह का सहभागी बन जाने से अध्ययनकर्त्ता का अन्य समूहों से सम्बन्ध टूट जाता है। वास्तविकता यह है कि अर्द्ध–सहभागी अवलोकन के द्वारा ही उन तथ्यों की वास्तविक जानकारी करना अधिक सम्भव है, जिनका सम्बन्ध एक समूह के सांस्कृतिक जीवन अथवा विशिष्ट व्यवहारों से होता है।

सामूहिक अवलोकन

(Mass Observation)

नियन्त्रित व अनियन्त्रित निरीक्षण प्रविधि में एक ही समस्या या सामाजिक घटना का निरीक्षण कई अनुसन्धानकर्त्ता द्वारा होता है, जो कि उस सामजिक घटना के विभिन्न पहलुओं के विशेषज्ञ होते हैं। सर्वश्री सिन पाओं यांग के शब्दों में "यह नियन्त्रित व अनियन्त्रित निरीक्षण का सम्मिश्रण होता है। इसमें कई व्यक्ति मिलकर सामग्री एकत्रित करते हैं और बाद में एक केन्द्रीय व्यक्ति द्वारा उन सबकी देन का संकलन एवं उससे निष्कर्ष निकाला जाता है।"

सन् 1944 में जमैका में वहाँ की स्थानीय दशाओं के अध्ययन के लिए इस प्रविधि को प्रयोग में लाया गया था। वहाँ पर प्रत्येक माह सामुदायिक जीवन के किसी एक विशेष

पहलू के अध्ययन पर ध्यान डाला जाता था। इसके लिए अनुसन्धानकर्त्ताओं को जिलों के आँकड़े संकलित करने के लिए भेजा जाता था। आँकड़े संकलित होने पर केन्द्रीय कार्यालय मे भेजा जाता था, वहाँ स्टाफ की मीटिंग में उन पर विचार होकर फिर उन से निष्कर्ष निकाले जाते थे।

इस प्रकार इस प्रविधि में एक या कुछ निरीक्षणकर्त्ताओं पर बोझ न पड़कर अनेक विशेषज्ञ अनुसन्धानकर्त्ता निरीक्षण का कार्य करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे निरीक्षण कार्य के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है, यद्यपि इसमें लेशमात्रा भी सन्देह नहीं कि अनुसन्धान–कार्य बहुत ही उत्तम होता है।

2.14 अपनी प्रगति जांचिए :

(क) आँकड़ों के संकलन से आपका क्या अभिप्राय है ?

(ख) आँकड़ों की अनुसंधान में क्यों आवश्यकता है ?

(ग) आँकड़ों के संग्रह के समय किन सावधानियों का ध्यान रखना आवश्यक है ?

(घ) प्रकृति के आधार पर आँकड़ों को कितने भागों में बाँटा गया है ?

(ड़) मुख्यतः आँकड़ों के संकलन के दो प्रमुख स्रोत कौन से हैं ?

(च) आँकड़ों के संकलन की विभिन्न तकनीकों के नाम बताओ ?

(छ) साक्षात्कार से क्या अभिप्राय है ?

(ज) प्रश्नावली को परिभाषित कीजिए ?

(झ) अवलोकन व निरीक्षण को परिभाषित करें ?

(ञ) सहभागी व असहभागी अवलोकन में अंतर स्पष्ट करो।

(ट) अनुसूची से क्या अभिप्राय है ?

(ठ) अनुसूची व प्रश्नावली में अंतर बताओ।

2.15. अपनी प्रगति जाचिए के उ्त्तर :

(क) आँकड़े मान या माप के रूप में तथ्यों का एक संग्रह है जो अनुसंधान कार्य को प्रगति प्रदान करते हैं।

(ख) अनुसंधान कार्य में आँकड़ों के आधार पर ही उपलब्ध तथ्यों व उपकल्पना का परीक्षण संभव होता है जो अनुसंधान के निष्कर्ष व सामान्यीकरण का आधार है।

(ग) आँकड़ों के संकलन में निम्न सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए :

– आँकड़ें उचित व संक्षिप्त हों

– आँकड़े अर्थपूर्ण व विश्वसनीय हों

– आँकड़े स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप हों

– आँकड़े सूक्ष्म, सरल व प्रायोगिक हों

– धन व समय की दृष्टि से अल्पव्ययी हों

(घ) प्रकृति के आधार पर आँकड़ों की दो भागों में बाँटा जाता है :

(क) गणनात्मक आँकड़े

(ख) गुणात्मक आँकड़े

(ड़) मुख्यतः आँकड़ों के संकलन के दो स्रोत निम्नलिखित हैं :

(क) क्षेत्रीय स्रोत

(ख) प्रलेखीय या दस्तावेजी स्त्रोत

(च) आँकड़ों के संकलन की विभिन्न तकनीक निम्न हैं :

(1) साक्षात्कार

(2) प्रश्नावली

(3) अनुसूची

(4) अवलोकन या निरीक्षण

(छ) साक्षात्कार एक व्यवस्थित प्रणाली है, जिसमें कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने–सामने विचारों का विचार–विमर्श होता है।

(ज) प्रश्नावली : एक विषय से संबंधित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए बनाए गए प्रश्नों की एक क्रमबद्ध सूची को प्रश्नावली कहते हैं जिसे डाक द्वारा भेजकर उत्तरदाताओं से सूचना प्राप्त की जाती है।

(झ) अवलोकन का अर्थ होता है– देखना, प्रेषण करना या निरीक्षण करना सामाजिक अनुसंधान की एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में निरीक्षण का अर्थ है– कार्य अथवा पारस्परिक संबंध को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण ।

(ञ) सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता अध्ययन स्थल का अभिन्न अंग बन कर घटनाओं का अध्ययन करता है, जबकि असहभागी अवलोकन के अंतर्गत उसकी भूमिका एक अपरिचित और तटस्थ निरीक्षक के रूप में होती है।

(ट) अनुसूची आँकड़ों के संकलन का एक माध्यम है जिसमें अनुसंधानकर्त्ता ऐसे प्रश्नों की सूची तैयार करता है जो अध्ययन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके पश्चात् अनुसंधानकर्त्ता स्वयं इस अनुसूची को लेकर उत्तरदाताओं के पास जाता है तथा अनुसूची में लिखे प्रश्न पूछता है।

(ठ) अनुसूची व प्रश्नावली में अंतर :

अनुसूची	प्रश्नावली
(1) प्रश्नों की एक सूची है जिसका प्रयोग अध्ययनकर्त्ता द्वारा क्षेत्र में जाकर स्वयं किया जाता है।	(1) प्रश्नावली को उत्तरदाताओं के पास डाक द्वारा प्रेषित किया जाता है।
(2) अनुसूची का प्रयोग छोटे या सीमित अध्ययन क्षेत्र में ही होता है।	(2) प्रश्नावली बड़े अध्ययन क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।
(3) अनुसूची अनौपचारिक विधि है इसमें साक्षात्कार विधि का भी प्रयोग शामिल है।	(3) प्रश्नावली औपचारिक विधि है। इसमें अनुसंधानकर्त्ता व उत्तदाता के बीच कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है।

2.16 सारांश :

उपर्युक्त वर्णन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी अनुसंधान को विशिष्ट स्वरूप आँकड़ों की सहायता से ही प्रदान किया जा सकता है। अनुसंधान की सफलता के लिए प्राथमिक व द्वितीयक दोनों आँकड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्राथमिक आँकड़े द्वितीयक आँकड़ों की बजाय विश्वसनीय व शुद्ध होते हैं क्योंकि इन आँकड़ों को शोधकर्त्ता स्वंय प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राप्त करता है। इसके विपरीत द्वितीयक आँकड़ों को अनुसंधानकर्त्ता स्वयं एकत्रित न करके इन्हें प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेखों, अभिलेखों, पत्रों, संस्करणों व सरकारी रिपोर्टों इत्यादि के माध्यम से प्राप्त करता है। आँकड़ों के संकलन में साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली व अवलोकन प्रविधि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। साक्षात्कार में शोधकर्त्ता उत्तरदाता से स्वयं प्रश्न पूछता है तथा सूचनादाता इन प्रश्नों का उत्तर देता है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता अर्थात् शोधकर्त्ता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि उसकी कुशलता व क्षमता के द्वारा साक्षात्कार प्रविधि के दोषों का निवारण किया जा सकता है। सामग्री का संकलन करने के लिए विभिन्न प्रश्नों की एक व्यवस्थित सूची बनाई जाती है जिसे प्रश्नावली कहते हैं। इस प्रश्नावली के माध्यम से किसी विषय से

संबंधित व्यक्तियों से डाक द्वारा सूचनाएं प्राप्त करके आँकड़ों को एकत्रित कर निष्कर्ष निकाला जाता है। इसके पश्चात् सामग्री का अवलोकन किया जाता है। अवलोकन के द्वारा घटना मात्र को देखा ही नहीं जाता बल्कि इसके अन्तर्गत घटना की विशेषताओं व इसके अंतर्सम्बंधों को जानने का प्रयास भी किया जाता है।

2.17 मुख्य शब्दावली :

- **आँकड़ा** : आँकड़ा शब्द से अभिप्राय–''प्रत्युत्तरों के अभिलेख'' से है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान में क्षेत्रीय अथवा प्रलेखीय आधार पर हम जो भी सामग्री एकत्रित करते हैं, वह आँकड़ा कहलाता है।
- **गणनात्मक आँकड़े** : वे आँकड़े जिसमें तथ्यों की प्रकृति संख्यात्मक होती है। उनकी गणना की जा सकती है जैसे–1, 2, 100, 1000 आदि।
- **गुणात्मक आँकड़ें** : वे आँकड़े जो विश्लेषणात्मक व गुणसंबंधी पक्ष से संबंधित हों।
- **प्राथमिक आँकड़े** : ये मौलिक आँकड़े होते हैं जिन्हें स्वयं अनुसंधानकर्त्ता ने प्राथमिक स्रोतों से प्राप्त किया है।
- **द्वितीयक आँकड़े** : इन आँकड़ों को पहले से विश्लेषित व निर्वाचित किया जा चुका होता है। जिन्हें अनुसंधानकर्त्ता स्वयं प्राथमिक स्रोतों से एकत्रित न करके द्वितीयक स्रोतों जैसे–प्रकाशित प्रलेखों व सरकारी रिपोर्टों से प्राप्त करता है।
- **क्षेत्रीय स्त्रोत** : इसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्त्ता को अपने अध्ययन क्षेत्र में कार्य करते हुए निरीक्षण, प्रश्नावली या साक्षात्कार के माध्यम से अध्ययन विषय से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करना होता है।
- **प्रलेखीय स्रोत** : प्रकाशित या अप्रकाशित दस्तावेजों के माध्यम से प्राप्त तथ्यों की जानकारी प्रलेखीय स्रोत होते हैं।
- **साक्षात्कार** : मौलिक रूप से साक्षात्कार सामाजिक आंतरिक क्रिया की एक प्रक्रिया है।
- **प्रश्नावली** : प्रश्नावली प्रश्नों का एक समूह है जिसका उत्तर सूचनादात्ता को बिना अनुसंधानकर्त्ता की व्यक्तिगत सहायता के देना होता है।

- **अनुसूची** : अनुसूची उन प्रश्नों के समूह का नाम है जो साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से आमने–सामने की परिस्थिति में पूछे व भरे जाते हैं।
- **अवलोकन** : प्रकृति की घटनाएँ जिस रूप में घटती हैं, उनके कारण तथा प्रभावों और उनके पारस्परिक संबंधों को सही रूप से देखने तथा उनको प्रलेखित करने की विधि को अवलोकन कहते हैं।

2.18 अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त में उत्तर दीजिए :

(1) आँकड़ा किसे कहते हैं ? स्पष्ट किजिए।

(2) प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अंतर बताइए।

(3) अनुसंधान में आँकड़ों के संग्रह की कौन–कौन सी विधियाँ हैं।

(4) साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए इसके प्रकारों के नाम बताओ।

(5) प्रश्नावली व अनुसूची में अंतर स्पष्ट करो।

(6) अवलोकन के प्रकारों का वर्णन करो।

(7) सहभागी व असहभागी अवलोकन में अंतर स्पष्ट करो।

(8) अर्द्ध सहभागी अवलोकन का वर्णन करो।

(9) शोध में आँकड़ों के संग्रह की कौन सी तकनीक श्रेष्ठ है।

(10) अनुसंधान में आँकड़ों के संकलन के महत्व का वर्णन करो।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर दीजिए :

(1) आँकड़ों के संकलन से आप क्या समझते हैं ? सामाजिक अनुसंधान में आँकड़ों के संकलन के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

(2) आँकड़ों को परिभाषित करते हुए इसके विभिन्न प्रकारों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

(3) आँकड़ों के संकलन के प्राथमिक व द्वितियक स्रोतों का वर्णन कीजिए व इनके बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

(4) साक्षात्कार क्या है ? इसके विभिन्न प्रकारों का विश्लेषणात्मक वर्णन करो।

(5) साक्षात्कार का अनुसंधान में महत्व और इसकी सीमाओं का वर्णन कीजिए।

(6) प्रश्नावली को परिभाषित कीजिए और इसके प्रकारों का वर्णन करो।

(7) प्रश्नावली व अनुसूची में अंतर स्पष्ट करते हुए प्रश्नावली का अनुसंधान में महत्त्व का वर्णन कीजिए।

(8) अवलोकन को परिभाषित करते हुए इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करो।

(9) सहभागी व असहभागी अवलोकन में अंतर स्पष्ट करो।

(10) अवलोकन की शोध में आवश्यकता व सीमाओं का वर्णन करो।

(11) साक्षात्कार, प्रश्नावली व अवलोकन का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

2.19. आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***

इकाई–3 सामग्री विश्लेषण की प्रक्रिया : सम्पादन, वर्गीकरण, संकेतीकरण तथा सारणीयन, माध्य प्रवृत्तियों की माप : समानान्तर माध्य, माध्यांक, बहुलक माध्य व मानक विचलन

इकाई की रूपरेखा :

3.0 परिचय

3.1 अधिगमन उद्देश्य

3.2 संरचना

3.3 सामग्री–विश्लेषण की परिभाषाएँ एवं अर्थ

3.4 विश्लेषण के आधार

3.5. विश्लेषण की प्रक्रिया के चरण

3.6 सम्पादन, वर्गीकरण, संकेतीकरण तथा सारणीयन

3.6.1 वर्गीकरण

3.6.2 संकेतीकरण

3.6.3 सामग्री का सारिणीयन

3.7 अपनी प्रगति जांचिए

3.8 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.9 माध्य प्रवृत्तियों की माप : समानान्तर माध्य, माध्यांक, बहुलक माध्य व मानक विचलन

3.9.1 सांख्यिकीय माध्य की उपयोगिता एवं उद्देश्य

3.9.2 मध्यका

3.9.3 भूयिष्ठक या बहुलक

3.10 अपनी प्रगति जांचिए

3.11 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.12 सारांश

3.13 मुख्य शब्दावली

3.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0. परिचय :

वैज्ञानिक अनुसंधान में सामग्री के संकलन के बाद उसके व्यवस्थित विश्लेषण : सम्पादन, गुण–स्थान, वर्गीकरण, संकेतीकरण एवं सारिणीयन का कार्य अत्यन्त महत्त्व का कार्य है। तथ्यों का संकलन जितना महत्त्वपूर्ण होता है। उनका विश्लेषण भी उतना ही महत्त्व का कार्य है। इस सत्य को जे. एच. पाइनकर ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है," जिस प्रकार से एक मकान का निर्माण पत्थरों से होता है उसी प्रकार से विज्ञान का निर्माण भी आँकड़ों से होता है, लेकिन जिस प्रकार पत्थरों के ढेर को मकान नहीं कहा जा सकता है उसी प्रकार से मात्र तथ्यों के संकलन से ही विज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता।" तथ्यों या सामग्री का मात्र संकलन विज्ञान के लिए महत्त्व नहीं रखता है जब तक कि उनका क्रमबद्ध एवं तार्किक कार्य–कारण सम्बन्धों के अनुसार विश्लेषण एवं सामान्यीकरण नहीं किया जाता हैं। यंग (Young) ने लिखा है, "वैज्ञानिक विश्लेषण की यह मान्यता रही है कि संकलित सामग्री के पीछे, स्वयं सामग्री से अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्त होने वाली और चीज है। अगर इस व्यवस्थित सामग्री को सम्पूर्ण अध्ययन से सम्बद्ध किया जाए तो इनका एक महत्त्वपूर्ण सामान्य अर्थ ज्ञात हो सकता है।" इन विद्वानों के कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि अनुसंधान में सामग्री का विश्लेषण विशिष्ट महत्त्व का कार्य है। सामग्री के द्वारा समस्या का हल एवं प्राक्कल्पना का निर्माण तभी संभव है जब एकत्र सामग्री का विश्लेषण एवं व्यख्या की जाए। गुडे तथा हॉट (Goode and Hatt) के अनुसार "जो अनुसंधानकर्त्ता शोध प्ररचना से पूर्ण रूपेण परिचित है उसे अपने तथ्यों के विश्लेषण में कोई कठिनाई नहीं होगी।" इसके अतिरिक्त सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा संकलित आँकड़ों का माध्य ज्ञात करना मध्यिका तथा बहुलक निकालना हो सकते हैं। मध्यमान एक गणितीय माप है। जबकि मध्यांक और बहुलांक स्थितीय माप। ये माप आँकड़ों को सरलतापूर्वक उनकी तुलना व विश्लेषण कर निष्कर्ष निकालने के उद्देश्य से महत्वपूर्ण होते हैं। अतः इस इकाई के अन्तर्गत, आँकड़ों के विश्लेषण उनको व्यवस्थित करने वाली प्रक्रियाएं सम्पादन, वर्गीकरण, संकेतीकरण व सारिणीयन तथा आँकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण में माध्य, माध्यिका व बहुलक का विस्तृण वर्णन किया गया है।

3.1. अधिगमन उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित उद्देश्यों को अच्छी तरह समझ सकेंगे :

– सामग्री विश्लेषण प्रक्रिया का अर्थ व आधार
– सामग्री विश्लेषण प्रक्रिया के चरण
– आँकड़ों के संपादन की प्रक्रिया
– आँकड़ों के वर्गीकरण की विस्तृत प्रक्रिया
– आँकड़ों के संकेतीकरण का विस्तृत वर्णन
– आँकड़ों के सारिणीयन की प्रक्रिया
– आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण–माध्य, माध्यांक व बहुलांक को जान पाएँगे।

3.2. संरचना :

संरचना किसी भी विषय से संबंधित सामग्री को व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप से लगाने की प्रक्रिया है जिससे वह अधिक सुस्पष्ट व बोधगम्य बन सके। प्रस्तुत इकाई में आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण की माध्य प्रवृत्तियों के माप की इकाइयों को भी शामिल किया गया है। प्रस्तुत इकाई का संरचनात्मक ढांचा इस प्रकार है –

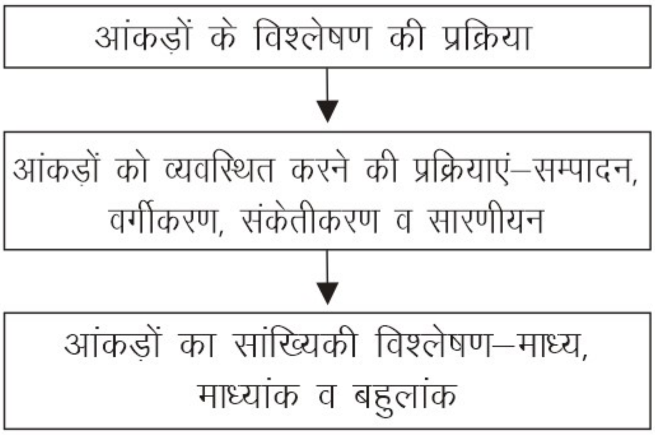

3.3 सामग्री–विश्लेषण की परिभाषाएँ एवं अर्थ

(Definitions and Meaning of Data Analysis)

सामग्री–विश्लेषण की परिभाषाएं विभिन्न समाज शास्त्रियों ने अलग–अलग दी हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. कर्लिंजर के अनुसार, "विश्लेषण का अर्थ अनुसंधान के प्रश्नों का सामग्री की कोटियों, क्रमबद्धता, जोड़–तोड़ और संक्षिप्तीकरण करके उत्तर प्राप्ति करना है।"

2. यंग ने लिखा है, "व्यवस्थित विश्लेषण यद्यपि एक विशेष प्रक्रिया है जिसका उपयोग उस समय किया जाता है जब एकत्र तथ्यों के सम्पूर्ण आकार–तथ्य एवं विचार, आँकड़े एवं विचार–पास में होते हैं।" उन्होंने विश्लेषण के अर्थ को और स्पष्ट करते हुए आगे लिखा, "व्यवस्थित विश्लेषण का कार्य एक बौद्धिक भवन का निर्माण करना है जिसमें तथ्य और आँकड़े ठीक से परखने के बाद विभाजित किये जाते हैं। एवं उन्हें उनके उपयुक्त स्थान पर तर्कसंगत और दृश्य विधान के अनुसार रखा जाता है जिससे कि सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकें–जो कि एक परिपक्व विज्ञान का एक लक्ष्य है।"

सामग्री विश्लेषण के सम्बन्ध में मोजर ने अपने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं–

1. उनका कथन है कि सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया में एकत्र की गई सामग्री का विश्लेषण आवश्यक रूप से सांख्यिकीय ही नहीं होता। जिस सीमा तक हम सम्पूर्णता में अभिरुचि रख कर वैयक्तिक इकाइयों में अभिरुचि रखते हैं, उसी सीमा तक विश्लेषण तथा मूल्यांकन के गैर–परिमाणात्मक तरीकों को प्राथमिकता प्रदान करते हैं।

2. विश्लेषण का एक बड़ा भाग सांख्यिकीय आवंटनों को ज्ञात करने, चित्रों को बनाने, एवं औसतों, प्रसार के मापों, प्रतिशतांकों, सहसम्बन्ध गुणांकों के समान सरल मापों की गणना करने से संबधित होता है। इस प्रक्रिया को विश्लेषण की आवधारणा से जोड़ना बहुत कृत्रिमता भरी बात है। क्योंकि ये माप अध्ययन की गई इकाइयों का मात्र विवरण देते हैं, इसलिए इन्हें 'सांख्यिकीय विवरण' शब्द से व्यक्त करना चाहिए।

3. मोजर ने तीसरी और अन्तिम बात यह लिखी है कि अगर यह मान लिया जाए कि औसत, प्रतिशत, सह–सम्बन्ध आदि मात्र विवरण प्रस्तुत करते हैं तो इन्हें विश्लेषण का मात्र एक अंग समझना चाहिए। उनके अनुसार परिणाम इसका दूसरा भाग है।

तथ्यों के विश्लेषण की आवश्यकता (Need for Data Analysis) : मात्र तथ्यों का संकलन तब तक अर्थहीन बना रहता है जब तक कि व्यवस्थित तरीके से उनका विश्लेषण और उनकी व्याख्या न की जाए। इस प्रक्रिया के बगैर अनुसन्धान कार्य अपने प्रयोजन की सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों का विश्लेषण एक मूलभूत आवश्यकता है, जिसके बगैर शोध कार्य संपूर्ण नहीं माना जा सकता शोधकर्त्ता किसी घटना को ही सब कुछ मानकर नहीं चल सकता। उसे संकलित तथ्य–सामग्री की जाँच करनी होगी, उनके पारस्परिक संबंधों का पता लगाना होगा। राजनीतिक शोधकर्त्ता

संकलित तथ्यों के प्रकाश में चलता है। वह प्रचलित आदर्शों, दार्शनिक मूल्यों आदि को समसामयिक मानता है। उसके लिए तथ्य ही मार्ग दर्शक होते हैं। वह उनकी सावधानी से जाँच करता है और उनके आपसी संबंधों और घटना के साथ संबंधों का विश्लेषण करता है। ऐसा करते समय अनेक बार उसे अपनी पुरानी धारणाओं में जाँच, सुधार और परिवर्तन करना पड़ता है। अनुसन्धानकर्त्ता जब अपनी लगन से तथ्यों की जाँच–पड़ताल करता है तो उसे नई–नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जिसकी कल्पना उसने पहले नहीं की थी, अतः वह एक ऐसी व्यवस्था में प्रशिक्षण प्राप्त करता है जो मानव जीवन के लिए बड़ी उपयोगी है। यदि अनुसन्धानकर्त्ता को ठोस परिणामों पर पहुँचने की तीव्र इच्छा है तो उसे विश्लेषण कार्य पर अधिक ध्यान देना होगा क्योंकि इसके बिना परिणामों की घोषणा करना अनुसन्धान के साथ खिलवाड़ करना है। तथ्यों के उपयुक्त विश्लेषण के बिना शोध–विषय या घटना की वास्तविक व्याख्या सम्भव नहीं होती। तथ्य युक्त व्याख्या के बिना कोई भी शोध कार्य सफल नहीं हो सकता। तथ्य स्वयं कुछ नहीं कहते, वे मूक होते हैं। उनको क्रमबद्ध विश्लेषण द्वारा मुखरित बनाया जाता है। विश्लेषण के द्वारा ही घटना और तथ्यों के मध्य कार्य–कारण संबंधों को जाना जाता है। तथ्यों की सत्यता तभी सिद्ध हो सकती है जब हम उनका उचित विश्लेषण करें। विश्लेषण कार्य बड़ा कठिन है। इसकी सफलता विश्लेषणकर्त्ता के गुणों पर अधिक निर्भर होती है। उसमें एक आलोचनात्मक कल्पना शक्ति होनी चाहिए ताकि वह तथ्यों के मध्य अंतःसंबंधों को समझ सके। विश्लेषण को वैज्ञानिक बनाने के लिए जरुरी है कि शोध मिथ्या–झुकावों, पूर्वाग्रहों तथा पक्षपातों से दूर रहे। यदि ऐसा न हो तो शोध का संपूर्ण विश्लेषण निरर्थक और भ्रमपूर्ण हो जाता है। तात्पर्य यह है कि विश्लेषणकर्त्ता का अनुभव, उसकी अंतर्दृष्टि, बौद्धिक निष्पक्षता, सामान्य बोध, विश्लेषण कार्य में सबसे अधिक सहायक है।

3.4 विश्लेषण के आधार (Basic of Analysis)

वैज्ञानिकों एवं शोधकर्त्ताओं ने विश्लेषण के प्रमुख निम्नलिखित दो आधारों का उल्लेख किया है–

(A) **इकाइयाँ (Units) :** सामाजिक विज्ञानों में इकाइयों का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। सामाजिक संरचना में इकाइयों का अध्ययन अन्य इकाइयों के संदर्भ में किया जाता है। कई इकाइयाँ मिलकर एक समूह बन जाती हैं। इस समूह का भी अन्य इकाइयों के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है। गिलिन और गिलिन ने सामाजिक संगठन एवं सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में इकाइयों के विश्लेषण के रूप निम्नलिखित स्पष्ट किए हैं–

1. इकाई का अन्य इकाइयों के साथ सम्बन्ध।
2. इकाई का समूह के साथ सम्बन्ध।
3. समूह का समूह के साथ सम्बन्ध।

ऑगस्ट कॉम्टे ने इकाइयों के अध्ययन के सम्बन्ध में लिखा है कि इकाई का सम्बन्ध अन्य इकाइयों के साथ देखना चाहिए। इकाई का सम्बन्ध पूर्ण के साथ तथा पूर्ण का सम्बन्ध इकाई के साथ विश्लेषित करना चाहिए। सामाजिक शोध में उच्च स्तरीय इकाइयों के निम्नलिखित तीन प्रमुख प्रकार प्रचलित हैं–

(1) श्रेणी (Category) : इसके अन्तर्गत उन इकाइयों का विश्लेषण रखा जाता है जिनकी कोई संरचना नहीं होती है, लेकिन वे असंरचित इकाइयों के समूह होते हैं।

(2) व्यवस्था (System) : इसके अन्तर्गत भी इकाइयों के समूह होते हैं। इसमें इकाइयों में परस्पर अन्तःक्रिया द्वि–तंत्रीय होती है। अर्थात् इकाई दूसरी इकाई से सम्बन्धित होकर व्यवस्था का निर्माण तो कर रही है परन्तु ये सम्बन्ध अस्थाई और प्रभावहीन होते हैं। इकाइयों के सम्बन्ध अप्रत्यक्ष होते हैं।

(3) समूह (Group) : इसमें इकाइयाँ प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होती हैं तथा इनमें एक व्यवस्था पाई जाती है। इकाइयों में परस्पर सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं। इकाइयों का विश्लेषण एक समूह के रूप में किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(B) विश्लेषण के चर (Variables of Analysis) : चर के द्वारा वर्गों का निर्माण किया जाता है। चर के आधार पर वर्गीकरण की रचना की जाती है। चर मूल्यों का समूह होता है जिस पर वर्गीकरण आधारित होता है। मूल्य वह प्रत्येक वस्तु है जिसकी एक इकाई के रूप में भविष्यवाणी कर सकते हैं। चर की सहायता से इकाइयों के समूह निर्मित किए जाते हैं। जब इन समूहों को कोटियों के आधार पर श्रेणीबद्ध कर देते हैं तो वही वर्गीकरण कहलाता है। सर्वप्रथम इकाइयों को समूह के रूप में संगठित किया जाता है। इसके बाद अगले चरण में इनकों समूहों के समग्र के रूप में संगठित किया जाता है। इकाइयों और चरों के

सरल से जटिल संगठन के क्रम साथ–साथ चलते हैं। इनको तत्त्व, गुच्छ और समग्र के क्रम में श्रेणीबद्ध कर सकते हैं।

3.5 विश्लेषण की प्रक्रिया के चरण
(Steps of the Process of Analysis)

विश्लेषण की प्रक्रिया को निम्नलिखित पाँच चरणों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्रथम चरण (First Stage) : विश्लेषण की प्रक्रिया का प्रथम चरण तथ्यों या एकत्र सामग्री का सम्पादन करना है। सम्पादन में प्रमुखतया तीन बातों का ध्यान रखा जाता है–
(i) सभी निश्चित किए गए स्रोतों से सामग्री को प्राप्त करना चाहिए और उसे क्रम से व्यवस्थित करना चाहिए। (ii) प्रश्नावली एवं अनुसूची की जाँच करनी चाहिए कि सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हुए हैं अथवा नहीं। अशुद्धियों को पूर्ण रूप से दूर कर देना चाहिए।
(iii) आगे चल कर भ्रान्ति पैदा न हो सके इसके लिए अनावश्यक सामग्री को अलग कर देना चाहिए।

2. द्वितीय चरण (Second Stage) : विश्लेषण के दूसरे चरण में द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त सामग्री का सम्पादन किया जाता है। इन स्रोतों की जाँच की जाती है कि उनके स्रोत विश्वसनीय, प्रमाणित एवं शोध के उद्देश्यों के अनुकूल एवं उपयुक्त हैं या नहीं। इस कार्य को करने के लिए शोधकर्त्ता का अनुभवी एवं ज्ञानी होना आवश्यक है।

3. तृतीय चरण (Third Stage) : इस चरण में तथ्यों के वर्गीकरण की जाँच की जाती है। यह देखा जाता है कि वर्गीकरण शोध–समस्या के अनुरूप है अथवा नहीं। वर्गीकरण क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित भी होना चाहिए।

4. चतुर्थ चरण (Fourth Stage) : प्रश्नावली और अनुसूची से प्राप्त उत्तरों का संकेतीकरण किया जाता है, उसे इस चतुर्थ चरण में जाँचा–परखा जाता है। यह देखा जाता है कि संकेतीकरण की प्रक्रिया में उत्तरों को उपयुक्त प्रतीक या संख्याएँ प्रदान की गई हैं अथवा नहीं।

5. पंचम चरण (Fifth Stage) : सामग्री के विश्लेषण के लिए तथ्यों का सारणीकरण करना अत्यावश्यक है। इस पंचम एवं अन्तिम चरण में यह जाँच की जाती है कि सारणीय का कार्य ठीक से पूर्ण किया गया है या नहीं। सामग्री विश्लेषण की कार्यविधि में प्रमुख बात

यही है कि जब तक तथ्यों का सम्पादन, वर्गीकरण और सरणीय ठीक से सम्पन्न नहीं हो जाता है तब तक विश्लेषण का कार्य एवं व्याख्या भी करना संभव नहीं होता है।

विश्लेषण एवं व्याख्या की प्रक्रिया (Process of Analysis and Explanation) : यंग ने विश्लेषण और व्याख्या की प्रक्रिया को निम्नलिखित सोपानों द्वारा समझाया है–

1. तथ्यों की तोल (Weighting the Data) : इसका तात्पर्य तथ्यों की पुनर्परीक्षा से है। चूँकि शोध–विश्लेषण का उद्देश्य संकलित तथ्यों को वास्तविक रूप में अर्थयुक्त बनाकर निष्कर्ष के लिए उन्हें उपयोगी बनाना है, इस कारण यह आवश्यक है कि तथ्यों की पुनर्परीक्षा कर ली जाए। इसके लिए निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर ढूँढना आवश्यक होगा–

(i) क्या संकलित तथ्य पर्याप्त वैषयिक तथा अपनी परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि हैं?

(ii) क्या उनकी परीक्षा और पुनर्परीक्षा सम्भव है और क्या उन्हें वस्तुनिष्ठ रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है?

(iii) क्या वे माप के योग्य हैं?

(iv) क्या क्रमबद्ध सिद्धान्त के लिए महत्त्वपूर्ण हैं?

(v) क्या उनसे सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है?

तथ्यों की पुनः जाँच करते समय यह देखा जाता है कि तथ्य पर्याप्त रूप से वस्तुपरक तथा परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि हों, उसकी वस्तुपरक ढंग से पुनः परीक्षा हो सके, उनका मापन किया जा सके, वे वास्तव में क्रमबद्ध सिद्धान्त का विकास करने के लिए महत्त्वपूर्ण हों तथा उनसे सामान्य निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव हो। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि संकलित तथ्य महत्त्वहीन और महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। केवल महत्त्वपूर्ण तथ्यों को स्थान दिया जाना चाहिए और व्यर्थ और अर्थहीन तथ्यों को निकाल देना चाहिए।

2. एक रूपरेखा का निर्माण (Preparation of an Outline) : एक रूपरेखा अध्ययन का नक्शा होती है। स्पष्ट तथा मितव्ययी विचारधारा के विकास तथा विविध तथ्यों के विस्तृत क्षेत्र में, विषय में सहज तथा क्रमबद्ध स्पष्टीकरण एक रूपरेखा के बिना सम्भव नहीं है। एक रूपरेखा वास्तव में तथ्यों का एक आरम्भिक वर्गीकरण ही होती है जोकि विषय से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पहचानने में हमारी मदद करती है। विस्तृत विश्लेषण और रूपरेखा प्रस्तुत करने से पहले यह आवश्यक है कि एकत्रित तथ्यों में से अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को एक बार फिर से दोहरा लिया जाए ताकि अध्ययन की गई संपूर्ण परिस्थिति के संबंध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाए, नए तथ्य प्रकाश में आ सकें और पहले वाले तथ्यों की सत्यता

का भी पता लग सके। रूपरेखा तैयार करने में असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। इसका निर्माण स्पष्ट मान्यताओं पर होना चाहिए। वैज्ञानिक ढंग से बनाई गई रूपरेखा अनुसन्धान के महत्त्वपूर्ण पक्षों का रहस्योद्घाटन करती है। यह इस बात का निर्धारण करती है कि तथ्यों का पारस्परिक संबंध क्या है, कहाँ पर गम्भीर गलतियाँ की गई हैं, आदि। रूपरेखा का निर्माण करने में दो प्रकार के लोगों की मदद ली जानी चाहिए–प्रथम विषय से सम्बद्ध गहरी जानकारी रखने वाले ईमानदार, स्पष्टवादी तथा निर्भीक लोग होंगे तथा दूसरे, उस विषय से अनभिज्ञ लोग होंगे। पहले सही रूपरेखा को बनाने या सुधारने में योगदान करेंगे, तो दूसरे उसे समझने योग्य बनाने की दृष्टि से सहायता करेंगे।

3. व्यवस्थित वर्गीकरण (Systematic Classification) : सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान में वर्गीकरण का अत्याधिक महत्त्व होता है क्योंकि एक घटना या परिस्थिति के अनेक कारण होते हैं जो विविध प्रकृति के होते हैं। वर्गीकरण के द्वारा ही इनके सापेक्ष प्रभाव का पता चलता है। सावधानीपूर्वक रूपरेखा के निर्माण के पश्चात् तथ्यों के वर्गीकरण करने की अवस्था आती है। वर्गीकरण के आधार पर तथ्यों में पाई जाने वाली समानता और असमानताओं का ज्ञान तुरन्त हो सकता है। समग्र एकत्रित तथ्यों के विस्तृत तथा ठोस वर्गीकरण पर ही बहुत कुछ अध्ययन की प्रभावशीलता व मूल्य निर्भर करता है। श्री रॉबर्ट इ. चाड्डॉक ने लिखा है कि सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकरण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सामाजिक घटनाओं में एक परिस्थिति को अनेक कारक (factor) प्रभावित करते हैं तथा कारकों में अत्याधिक विविधताएँ भी होती हैं। इस विस्तृत प्रकार भेद को समझने के लिए वर्गीकरण अति आवश्यक हो जाता है। तथ्यों का वर्गीकरण हो जाने पर उनकी तुलना, उनमें पाई जाने वाली समानताओं और असमानताओं और पारस्परिक संबंधों का ज्ञान हो जाता है।

4. अवधारणाओं का निर्माण (Formulation of Concepts) : एकत्रित तथ्यों का वर्गीकरण कर लेने के पश्चात् अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक हो जाता है ताकि संपूर्ण परिस्थिति को अवधारणात्मक भाषा में व्यक्त किया जा सके। इस भाषा को विद्यमान अवधारणाओं के आधार पर विकसित किया जा सकता है। अवधारणात्मक भाषा का प्रयोग करने से लाभ यह होता है कि एक संपूर्ण परिस्थिति या प्रक्रिया को केवल दो–एक शब्दों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है। जब शोधकर्त्ता तथ्यों में अन्तः संबंध को देखता है अथवा एक निश्चित घटना या व्यवहार प्रतिमान को वह पृथक करने में सफल होता है तो

वह उस सम्पूर्ण स्थिति को अति संक्षेप में एक दो शब्दों की सहायता से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है। तथ्यों के एक वर्ग की इस संक्षिप्त अभिव्यक्ति को ही विज्ञान में अवधारणा कहा जाता है। मिचेल के शब्दों में, "अवधारणा एक विवरणात्मक गुण या संबंध की ओर संकेत करने वाला एक पद है।"

अवधारणा वैज्ञानिक अवलोकन, चिंतन एवं यथार्थ अनुभव पर आधारित होती है तथा उसका एक अर्थ–संबंधी आधार होता है। उसके द्वारा बनाये जाने वाले अर्थ या विशेषताएँ उससे सम्बद्ध संपूर्ण वर्ग या समूह में पायी जाती है। अवधारणा शब्दों द्वारा गुण–समूहीकरण का नाम है। अवधारणा के अंतर्गत आने वाली घटनाओं, वस्तुओं, क्रियाओं आदि को 'तथ्य' कह दिया जाता है। वास्तव में, अवधारणा किसी घटना, गतिविधि, वस्तु या विचार को देखने या अवलोकन के नियमों को कहते हैं। वे नियम विशेष उद्देश्य को सामने रखकर बनाये जाते हैं।

अवधारणा का महत्त्व इसी से स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों के एक वर्ग या समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा होती है। अर्थात् अवधारणा के माध्यम से एक घटना या प्रक्रिया को केवल कुछ शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि विद्यार्थियों के एक वर्ग में कक्षा से भाग जाने की प्रकृति सामान्य रूप से पाई जाती है तो इस संपूर्ण स्थिति को 'कक्षा पलायन' (Truancy) की अवधारणा द्वारा समझाया जा सकता है। अवधारणा के महत्त्व को समझाते हुए गुडे और हॉट ने लिखा है कि "अवधारणा को विकसित करने की प्रक्रिया इन्द्रिय जनित बोध को प्राप्त करने व उससे निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है।" इस प्रकार तथ्यों के एक वर्ग या समूह के गुणों को समझना, उनका अध्ययन करना, उन्हें व्यवस्थित व पृथक् करना सम्भव होता है। इस प्रकार तथ्यों के एक समूह में पाए जाने वाले गुणों को एक नाम दे देने से विचार आगे बढ़ सकता है। अतः विचारों को पनपने के लिए अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक है। किन्तु अवधारणा का निर्माण वस्तुपरक ढंग से किया जाना चाहिए। उससे यथार्थ तथा सुस्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यह निश्चित अर्थ को बताने वाली, बोधगम्य सामान्य तथा सदैव एकार्थक होनी चाहिए।

5. तुलना एवं व्याख्या (Comparison and Interpretation) : जब संकलित तथ्यों का वैज्ञानिक वर्गीकरण कर लिया जाता है और अवधारणाओं का निर्माण भी कर लिया जाता है तो तथ्यों के सामान्य प्रतिमान (Pattern) स्पष्ट हो जाते हैं। तब इन प्रतिमानों की तुलना

करनी सम्भव होती है। तुलनात्मक विश्लेषण किसी भी वैज्ञानिक निष्कर्ष के लिए बहुत आवश्यक है। तुलना करने से विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों का न केवल स्पष्टीकरण होता है बल्कि उनका तुलनात्मक महत्त्व भी हमारे लिए स्पष्ट हो जाता है। तुलना करने से न केवल विभिन्न तथ्यों का स्पष्टीकरण ही हो जाता है, बल्कि हम उनकी गहराइयों की और विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एकत्र तथ्यों का विश्लेषण करके हम जो निष्कर्ष निकालते हैं, उस क्रिया की व्याख्या करते हैं। शोधकर्त्ता व्याख्या करते समय कार्य–कारण के संबंध को स्पष्ट करने की कोशिश करता है। बिना कार्य–कारण के व्याख्या का कोई औचित्य नहीं है। कार्य–कारण सहित व्याख्या करना ही विज्ञान का लक्ष्य माना जाता है। शोधकर्त्ता को यह ध्यान देना चाहिए कि विषय से संबंधित व्याख्या स्पष्ट और सरल हो जिससे उसका लाभ अन्य लोग भी उठा सकें। जहाँ तक हो जटिलता को दूर किया जाना चाहिए।

6. सिद्धांतों का प्रतिपादन (Formulation of Theories) : घटनाओं और तथ्यों की वैज्ञानिक–व्याख्या नए सिद्धांतों का निर्माण करती है। ये सिद्धांत संकलित तथ्यों के जटिल, अमूर्त तथा अस्पष्ट संबंधों को निश्चित करते हैं और संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त कर देते हैं। ये सिद्धांत वास्तव में व्याख्या के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों का अति संक्षिप्त रूप होते हैं। विभिन्न शोधकर्त्ता अपने अनुसन्धान विश्लेषण और व्याख्या के आधार पर अलग–अलग सिद्धांतों को प्रतिपादित करते रहते हैं।

सिद्धांत के प्रतिपादन का अर्थ यह है कि अनुसन्धान के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हो गई है और यह व्याख्या का अंतिम चरण है और सबसे महत्त्वपूर्ण भी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि इनके प्रतिपादन में आवश्यक सावधानी बरती जाए। सिद्धान्त को स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए। इसमें भाषा का प्रयोग सरल रूप में किया जाना चाहिए तथा सिद्धांत को प्रस्तुत करने की प्रणाली भी बड़ी सरल होनी चाहिए ताकि अन्य लोग भी इसको समझ सकें। इसके विपरीत यदि इसे जटिल, अस्पष्ट और असंगत रूप में प्रस्तुत किया गया तो अनुसन्धान के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति न होगी। प्रतिपादित सिद्धान्त इस प्रकार का हो कि उसके विश्लेषण से संपूर्ण अध्ययन का क्षेत्र और मूल निष्कर्ष स्पष्ट हो जाये। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सिद्धांत की वास्तविक उपयोगिता स्वतः ही कम हो जाएगी। सामाजिक अनुसन्धानों में सिद्धांतों के प्रतिपादन में बड़ी कठिनाई आती है क्योंकि घटनाओं की प्रकृति में एकरूपता, समानता और स्थिरता नहीं है अतः

इसके कारण अनुसन्धानकर्त्ता को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिन–जिन सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में शोध कार्य हो चुके हैं उनकी सहायता से शोध कार्य में कठिनाई नहीं आती क्योंकि पहले वाले शोध कार्य को दिशा एवं निर्देशन प्रदान करते हैं। नए–नए अनुसन्धानों से कई छिपे हुए तथ्यों को प्रकाश मे लाया जाता है और पुराने सिद्धांतों में संशोधन या परिवर्तन कर उन्हें वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप दिया जाता है।

3.6 सम्पादन, वर्गीकरण, संकेतीकरण तथा सारिणीयन

(Editing, Classification, Codification and Tabulation)

सामाजिक अनुसन्धान और सामाजिक सर्वेक्षण में जो सामग्री एकत्र की जाती है उसे 'आधार सामग्री' कहते हैं। इस आधार सामग्री की जाँच, निरीक्षण या त्रुटियों के सुधार को सम्पादन कहते हैं सामग्री को एकत्र करने के बाद उसका सूक्ष्म अनुवीक्षण करना ही सम्पादन कहलाता है। प्रगणकों, साक्षात्कारकर्त्ताओं तथा सूचनादाताओं से जो अनुसूचियाँ एवं प्रश्नावलियाँ प्राप्त होती हैं उनका अनुवीक्षण या सम्पादन करना आवश्यक होता है। शोध के लिए प्रलेखों या अवलोकन से जो सामग्री प्राप्त होती है उसका भी सम्पादन करना अनिवार्य होता है। सम्पादन का मुख्य उद्देश्य प्राप्त सामग्री या तथ्यों में रहने वाली त्रुटियों, असंगतियों, संदेह या अपूर्णताओं का निरीक्षण द्वारा पता लगाना है। विद्वानों का अनुभव है कि अनेकों चतुर शोधकर्त्ताओं से भी सामग्री–संकलन में त्रुटियाँ हो जाती हैं। सम्पादन की आवश्यकता उस स्थिति में विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है जिसमें शोधकर्त्ता तथा सामग्री–संकलनकर्त्ता अच्छे प्रशिक्षित और अनुभवी नहीं होते हैं। सामग्री के सम्पादन से शोधकार्य वैज्ञानिक एवं त्रुटि रहित होता है। सम्पादन के द्वारा शुद्ध निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

प्राथमिक और द्वैतीयक सामग्री का सम्पादन निम्नानुसार किया जाता है –

प्राथमिक सामग्री का सम्पादन (Editing of Primary Data) : प्राथमिक सामग्री के सम्पादन में अग्रलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखा जाता है – (1) प्राथमिक संकलित सामग्री शोधकार्य से सम्बन्धित होनी चाहिए, (2) निरर्थक एवं असम्बन्धित सामग्री को निकाल देना चाहिए, (3) संदेहयुक्त सामग्री की पुनः जाँच करनी चाहिए, (4) सामग्री में विश्वसनीयता, सत्यता एवं प्रमाणिकता का ध्यान रखना चाहिए, (5) सामग्री का परीक्षण वस्तुनिष्ठ होना चाहिए, (6) सामग्री में इच्छानुसार परिवर्तन नहीं करना चाहिए, (7) जहाँ तक सम्भव हो सामग्री

तुलनात्मक होनी चाहिए, (8) सामग्री में एकरूपता बनाए रखनी चाहिए, (9) सामग्री को व्यवस्थित रखना चाहिए जिससे संकेतीकरण एवं सारिणीयन में सुविधा हो सके।

दैतीयक सामग्री का सम्पादन (Editing of Secondary Data) : प्राथमिक सामग्री की तुलना में द्वैतीयक सामग्री का सम्पादन निम्नलिखित कारणों से अधिक आवश्यक होता है। द्वैतीयक सामग्री का संकलन दूसरी संस्थाओं, शोधकर्त्ताओं एवं साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा किया जाता है। उस समय जो सम्पादन किया गया था उसकी प्रमाणिकता संदेहपूर्ण हो सकती है। इसीलिए द्वैतीयक सामग्री का सम्पादन करने के साथ–साथ अनुवीक्षण करना भी आवश्यक होता है। इसके लिए सामग्री की जाँच करना आवश्यक है कि सामग्री संकलन में विश्वसनीयता की जाँच की गई थी अथवा नहीं? द्वैतीयक सामग्री–संकलन के स्रोतों की विश्वसनीयता की जाँच–पड़ताल करनी चाहिए।

द्वैतीयक सामग्री का अध्ययन करना चाहिए कि वह वर्तमान अनुसन्धान के लिए अनुकूल है या नहीं? सामग्री पर्याप्त है अथवा और सामग्री एकत्र करने की आवश्यकता तो नहीं है इसकी जाँच करनी चाहिए। वर्तमान शोध में द्वैतीयक सामग्री का उपयोग किस सीमा तक किया जा सकता है इसका भी अध्ययन करना चाहिए। इस सामग्री के स्रोतों की विज्ञान जगत में कैसी साख है? इसका भी पता लगाना चाहिए। उपयुक्त आधारों पर द्वैतीयक सामग्री का निरीक्षण, परीक्षण एवं सम्पादन करने के बाद ही शोध में उपयोग करना चाहिए। ऐसा वैज्ञानिकों का आग्रह है।

अनुसन्धानकर्त्ताओं का प्रशिक्षण भली प्रकार न हुआ हो, या वे अनुभवी न हों, तब तो सम्पादन का महत्त्व बहुत ही बढ़ जाता है। इसलिए सम्पादन बहुत आवश्यक है। इसमें मुख्यतया तीन बातों का निरीक्षण किया जाता है– (i) पूर्णता, (ii) शुद्धता, और (iii) समानता।

(i) पूर्णता (Totality) : सम्पादक को यह देखना होता है कि उसे एक स्रोत विशेष से सारी सामग्री प्राप्त हो गयी है या नहीं। प्रश्न सूचियों में कभी–कभी कुछ प्रश्नों के उत्तर भूल से छूट जाते हैं। इसी कारण प्रेक्षण के अभिलेख में कोई आवश्यक जानकारी देने से रह जाती है। सम्पादक के द्वारा इसे पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है।

(ii) शुद्धता (Accuracy) : सम्पादक केवल यही नहीं देखता कि क्या सभी प्रश्नों के उत्तर आ चुके हैं या नहीं, बल्कि यह भी देखता है कि वे उत्तर शुद्ध हैं या नहीं। अशुद्धता का एक लक्षण है असंगति। यदि कोई दो उत्तर मेल न खाये तब उनमें से एक के गलत की

सम्भावना है। यह भी हो सकता है कि साक्षात्कारकर्त्ता जल्दी में गलत उत्तर लिख गया हो। इस प्रकार गलतियों को अवश्य सुधारना चाहिए।

(iii) समानता (Similarity) : यदि किसी शोध कार्य में साक्षात्कारकर्त्ता का उपयोग किया जाता है तो यह सम्भावना रहती है कि साक्षात्कारकर्त्ताओं ने प्रश्नों के अलग–अलग अर्थ लगाये हों। इस त्रुटि से बचने के लिए सम्पादक विभिन्न साक्षात्कारकर्ताओं द्वारा भरी हुई प्रश्न सूचियों की तुलना करता है और जरूरत के अनुसार उनसे पूछता है कि उन्होंने किस प्रकार का क्या अर्थ लगाया है।

विभिन्न सम्पादकीय कार्यों को सम्पादित करते हुए किसी भी प्रकार की गड़बड़ी के पता लगने पर इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि उत्तरदाताओं के साथ पुनः सम्पर्क स्थापित करते हुए पैदा हुए संदेहों का निराकरण किया जाये।

अनुसन्धानकर्त्ता को यह देख लेना चाहिए कि सूचनादाताओं द्वारा दी गयी जानकारी अनुसन्धान के अनुकूल है या प्रतिकूल। यदि प्रतिकूल या अनावश्यक है तो उसे तथ्य–समग्री में स्थान नहीं देना चाहिए। यदि सम्पादनकर्त्ता खुद गलती को सुधार सकता है, जिसमें सूचनादाता की स्वयं की आवश्यकता नहीं रहती है, तो उसी वक्त सुधार कर देना चाहिए, साथ में यह भी ध्यान रखें कि मौलिक विवरण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आना चाहिए। मौलिक तथ्यों को तोड़ना–मरोड़ना नहीं चाहिए।

सम्पादन की प्रक्रिया के दौरान प्रमुख रूप से निम्नलिखित कार्य संपादित किए जाते हैं–

1. आँकड़ों की विश्वसनीयता (Reliability), यथार्थता या शुद्धता (Accuracy) तथा प्रमाणिकता (Validity) की जाँच करना।
2. अन्य संग्रहीत तथ्यों के साथ आँकड़ों की समरूपता (Homogenity) की जाँच करना।
3. आँकड़ों को एकरूपतापूर्ण ढंग से भरे जाने के लिए उनकी जाँच करना।
4. पूर्णता के लिए आँकड़ों की उपयुक्तता की जाँच करना।
5. सारिणीकरण की दृष्टि से आँकड़ों की उपयुक्तता की जाँच करना।
6. आँकड़ों को इस प्रकार व्यवस्थित करना ताकि श्रेणीकरण, संकेतीकरण, बारम्बारता आवंटन (Frequency Distribution) तथा सारिणीकरण के दौरान अधिक से अधिक सावधानी का अनुभव किया जा सके।

विभिन्न सम्पादकीय कार्यों को सम्पादित करते हुए किसी भी प्रकार की गड़बड़ी के दृष्टिगत होने पर इस बात का प्रयास किया जाता है कि उत्तरदाताओं के साथ सम्पर्क

स्थापित करते हुए उत्पन्न हुए संदेहों का निराकरण किया जाए। उत्तरदाताओं से पुनः सम्पर्क स्थापित करने हेतु या तो दूरभाषी (Telephone) का सहारा लिया जाता है अथवा पत्र–व्यवहार किया जाता है अथवा व्यक्तिगत रूप से उनसे मिला जाता है।

सम्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान निम्नांकित उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है :

1. यथार्थता एवं सत्यता की प्राप्ति करना (To get Accuracy and Truth Fulness) :

यथार्थता का पता लगाने के लिए यह आवश्यक होता है कि सम्पादक को उत्तरदाताओं के विषय में पहले से ही पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध हो। गणितीय रूप में दी गई सूचना के आधार पर पता लगाया जाना चाहिए। कुछ साक्षात्कारकर्त्ता अपनी तीव्र कल्पनाशक्ति तथा निर्धारित किए गए उत्तरदाताओं के अतिरिक्त अन्य उत्तरदाताओं का साक्षात्कार करते हुए धोखा देने का प्रयास करते हैं और इन धोखेबाज साक्षात्कारकर्त्ताओं से निपटने का एकमात्र उपाय "जाँच साक्षात्कार" (Check Interview) है।

ईस्टवुड ने यह बताया है कि "डाक प्रश्नावली की यथार्थता एवं सत्यता का पता लगाने हेतु प्रश्नावली में एक या दो ऐसे सत्याभासी प्रश्न जोड़ दिए जायें जिनका उत्तर देने की कोई सम्भावना न हो। उदाहरण के लिए, किसी उत्पाद पदार्थ (Product) के ऐसे नाम दे दिए जायें जो वास्तव में पाए ही न जाते हों।" भ्रम उत्पन्न करने वाली अथवा अस्पष्ट रूप से भरी गई सूचना को स्पष्ट रूप प्रदान किया जाता है। कभी–कभी एक व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई सूचना में यथार्थता की कमी को उसकी अकेली अनुसूची के सम्पादन का पता तभी चल पाता है जबकि अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये उत्तरों के सन्दर्भ में इसकी जाँच की जाए।

2. अनुकूलता के विषय में आश्वस्त होना (Assurance about Suitability) : अनुकूलता की पूर्ण जाँच करने के लिए सभी सम्बन्धित उत्तरों की पूर्व निर्धारित जाँच के क्रम में क्रमबद्ध रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिए। परस्पर विरोधी उत्तरों के प्राप्त होने पर यह निश्चित करने का प्रयास किया जाना चाहिए कि इनमें से कौन–सा गलत है। यदि यह निश्चित करना सम्भव न हो सके तो सभी विरोधी उत्तरों को अस्वीकृत कर देना चाहिए।

3. एकरूपता की प्राप्ति करना (To get Uniformity) : उत्तरों के सही होने के बावजूद भी इन्हें संकेतबद्ध करना तब तक सम्भव नहीं होता जब तक कि इन्हें परिमापन की एकरूपतापूर्ण इकाइयों में परिवर्तित नहीं कर दिया जाए। कभी–कभी ऐसा होता है कि

सूचना आवश्यकता से अधिक सूक्ष्म रूप में दी हुई होती है। सम्पादन की प्रक्रिया में इन पर उचित ध्यान दिया जाता है।

4. पूर्णता का आश्वासन देना (Providing Assurance about Completeness) : कभी–कभी सूचनादाता के अत्याधिक व्यस्त होने के कारण साक्षात्कारकर्त्ता को जल्दी–जल्दी प्रश्न पूछ कर उत्तर भी प्रायः सूक्ष्य रूप में भरने पड़ते हैं। इस प्रक्रिया में अनेक प्रश्न बिना पूछे एवं बिना भरे रह जाते हैं। दूसरे प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर इन बिना पूछे प्रश्नों के उत्तर भरने का प्रयास किया जाता है। जो अवैज्ञानिक एवं त्रुटिपूर्ण कार्य है। सम्पादक को इस प्रकार के उत्तरों और साक्षात्कारकर्त्ताओं का पता लगाना चाहिए तथा उचित कार्यवाही करनी चाहिए। सम्पादक का कर्त्तव्य है कि वह साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा लिखी गई टिप्पणियों पर विशेष ध्यान दे तथा सूचनाओं को नियमानुसार स्पष्ट करवा कर पूर्ण करवाए। जहाँ तक सम्भव हो अज्ञात सूचनाओं को सामग्री में से अलग किया जाए। सम्पादक को स्पष्ट करना चाहिए कि कौन–कौन सामग्री, उत्तर एवं जानकारियाँ पूर्ण एवं विश्वसनीय हैं और कौन–कौन नहीं है। यह कार्य सम्पादक का है, उस इसे निष्ठापूर्वक सम्पन्न करना चाहिए।

5. अनुसूची की स्वीकृति एवं अस्वीकृति (Acceptance and Rejection of Schedule) : अनेक अनुसूचियाँ साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा झूठी भर दी जाती हैं। सम्पादक के द्वारा निरीक्षण की गई अनुसूचियों के परिणामस्वरूप उसे निर्णय लेना होगा कि कौन–कौन सी अनुसूचियों की सामग्री को उपयोग में लाया जाए तथा किन–किन अनुसूचियों (झूठी) को रद्द किया जाए। यह उत्तरदायित्व सम्पादक का है। उसे ऐसे निर्णय लेने में कठोर होना चाहिए। सम्पादक को यह स्पष्ट करना होगा कि उसने अनुसूचियों को क्यों अस्वीकृत किया है। उसे उन आधारों को स्पष्ट करना होगा जिनके आधार पर अनुसूचियों को स्वीकृत एवं अस्वीकृत किया गया है।

6. मदों की पुर्नव्यवस्था (Rearrangement of Items) : जिस क्रम से प्रश्नावली या अनुसूची में प्रश्नों को क्रमबद्ध किया एवं पूछा जाता है उसी क्रम में उनका उपयोग शोधकार्य में नहीं किया जाता है। शोधकार्य में सामग्री का उपयोग संकेतीकरण, वर्गीकरण और सारिणीयन के बाद किया जाता है। यह आवश्यक नहीं कि इनका क्रम प्रश्नावली और अनुसूची के समान हो। इसलिए सम्पादक को सामग्री के मदों को पुनः व्यवस्थित करना पड़ता है।

शोधकर्त्ता का प्रयास तो यही होना चाहिए कि यथासंभव मदों का क्रम एक ही बना रहे। मदों के क्रम–परिवर्तन से त्रुटियों के होने की संभावना रहती है।

7. सुझावों को बनाए रखना (Maintaining Suggestions) : सम्पादक को इस सत्य का ध्यान रखना चाहिए कि जो उपयुक्त एवं तर्कसंगत राय सूचनादाताओं और साक्षात्कारकर्त्ताओं ने दी है, उन्हें बनाए रखें। उसकी सहायता से शोधकार्य एवं शोध प्रतिवेदन को वस्तुनिष्ठ, अर्थपूर्ण और सार्थक बनाने में पर्याप्त सहायता मिलती है। एक अच्छे पक्षपातरहित शोधपरिणामों के लिए यह आवश्यक है।

3.6.1 वर्गीकरण (Classification)

सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अध्ययनकर्त्ता अपने अध्ययन–विषय से संबंधित तथ्यों के एकत्रीकरण के लिए अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची व प्रश्नावली आदि की सहायता लेता है। परन्तु खाली इस तरह तथ्यों के एकत्रीकरण से अध्ययन–विषय के बारे में कुछ भी पता नहीं चल सकता। जब तक कि उसे एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान न किया जाए और उसके लिए तथ्यों का वर्गीकरण व सारिणीयन आवश्यक होता है। सामग्री चाहे प्राथमिक स्रोतों से एकत्रित की गई हो या द्वैतीयक स्रोतों से एक बार उसका सम्पादन कर लेने के पश्चात् वह इस योग्य हो जाता है कि फिर हम उसे विभिन्न वर्गों, श्रेणियों या भागों में विभाजित करें। यही प्रक्रिया सामग्री का वर्गीकरण माना जाता है। जब वर्गीकृत तथ्यों को एक तालिका के रूप में पंक्तियों में व्यवस्थित कर देते हैं तो यह सारिणीयन कहलाता है। वर्गीकरण किसी भी वैज्ञानिक विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। तथ्यों का वर्गीकरण व सारिणीयन सामाजिक अनुसंधान का एक अनिवार्य अंग बन गया है।

वर्गीकरण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Classification) :

किसी समस्या के सर्वेक्षण के दौरान एकत्रित किये गए तथ्य बिखरी हुई दशा में होते हैं। इसमें किसी भी प्रकार की व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। अतः विश्लेषण कार्य के लिए उन्हें सीधे प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है, उन्हें उपयोगी बनाने के लिए समस्त एकत्रित तथ्यों को उनकी समानता, भिन्नता या किसी अन्य आधार पर कुछ निश्चित श्रेणियों में व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। इसी को वर्गीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए किसी क्षेत्र के विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के अध्ययन में हमें विद्यार्थियों से प्राप्त सूचनाओं, प्राध्यापकों या प्राचार्यों से प्राप्त सूचनाओं, प्रशासन विभाग के

अधिकारियों से प्राप्त सूचनाओं को अलग–अलग रखना होगा। पुनः विद्यालयों के अनुसार या छात्र–छात्राओं के अनुसार अथवा आयु समूहों, कक्षाओं या वैवाहिक स्तर आदि के अनुसार सूचनाओं का वर्गीकरण करना होगा। ऐसा कर लेने के पश्चात् ही विश्लेषण या व्याख्या तथा विभिन्न प्रकार की तुलनायें कर पाना सम्भव होगा।

कोनोर (Connor) के अनुसार, "वर्गीकरण तथ्यों को उनकी समानता तथा निकटता के आधार पर समूहों तथा वर्गों में क्रमबद्ध करने तथा व्यक्तिगत इकाइयों की भिन्नता के बीच पाए जाने वाले गुणों की एकात्मकता को प्रकट करने की एक प्रक्रिया है।"

एल्हान्स (Elhance) के अनुसार "सादृश्यताओं और समानताओं के अनुसार तथ्यों को समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को तकनीकी रूप में वर्गीकरण कहा जाता है।"

कैनी एवं कीपिंग (Kenny and Keeping) के अनुसार, "सांख्यिकीय अनुसंधान में सामग्री का संकलन कर लेने के पश्चात् प्रथम कार्य इस सामग्री में क्रमबद्धता लाना होता है। सामान्यतः हमारे पास सैकड़ों अवलोकन होते हैं जिनका लेखा एक मनमाने क्रम से, अवलोकन किया गया होता है। परन्तु एक अवलोकन समूह का विश्लेषण करने के लिए, जिससे उसके बारे में बुद्धिमतापूर्वक निर्णय किए जा सकें अथवा दो समूहों में तुलना की जा सके, उचित वर्गीकरण आवश्यक और प्राथमिक महत्त्व का होता है।"

पी. एच. मान (P.H. Mann) के अनुसार, "वर्गीकरण आवश्यक रूप से उन वस्तुओं जिनमें कुछ समानतायें पाई जाती हों, को एक साथ रखने का एक रूप है ताकि उन्हें सरलतापूर्वक प्रयोग किया जा सके।"

सेक्राइस्ट के अनुसार, "वर्गीकरण सामग्री को उनकी सामान्य विशेषताओं के आधार पर क्रम एवं समूहों में क्रमबद्ध तथा विभिन्न लेकिन सम्बन्धित भागों में अलग करने की विधि है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि वर्गीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो संकलित तथ्यों को संक्षिप्त स्पष्ट और सरलतम बनाने के साथ–साथ उन्हें उनकी समानता और विभिन्नताओं के आधार पर कुछ निश्चित वर्गों या समूहों में व्यवस्थित करती है।

वर्गीकरण के उद्देश्य (Objects of Classification) :

सामाजिक अनुसन्धान में वर्गीकरण का अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि इसके द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

1. संक्षिप्त तथा बोधगम्य समूहीकरण (Brief and Tangible Grouping) : वर्गीकरण का प्रथम उद्देश्य जटिल, बिखरे हुए, परस्पर असम्बद्ध तथ्यों को थोड़े से, समझने योग्य तथा तर्कसंगत समूह में रखना है। स्नातक परीक्षा देने वाले हजारों परीक्षार्थियों के प्राप्तांकों की विशाल सूची को देखकर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। पर उन्हीं प्राप्तांकों के आधार पर जब हम परीक्षार्थियों का प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा असफल श्रेणियों में वर्गीकरण कर देते हैं तो उन्हें समझना व कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालना सरल हो जाता है।

2. समानता तथा भिन्नता का स्पष्टीकरण (Clarification of Similarity and Dissimalitiry) : वर्गीकरण का दूसरा उद्देश्य इकाइयों की समानता तथा असमानता को स्पष्ट करना है। यह स्पष्टीकरण अन्य सम्बन्धित बातों की जानकारी में सहायक सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ, यदि वर्गीकरण से किसी समुदाय के लोगों के व्यावसायिक समूह स्पष्ट हो जाते हैं तो प्रत्येक व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक विशेषताओं का हमें स्वतः ही ज्ञान हो जाता है।

3. तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा (To Afford Comparative Study) : वर्गीकरण के द्वारा दो वर्गों के तुलनात्मक अध्ययन का कार्य सरल हो जाता है क्योंकि वर्गीकरण के द्वारा कुछ समान गुणों के आधार पर विभिन्न इकाइयों को अलग–अलग श्रेणियों में बाँटा जाता है और उन श्रेणियों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। उदाहरणार्थ, यदि दो जिलों के लोगों को शिक्षित व अशिक्षित दो वर्गों में बाँट दिया जाए तो तुलनात्मक रूप में हम यह बता सकते है कि किस जिले के लोग अधिक संख्या में शिक्षित हैं।

4. तथ्यों के महत्त्व का ज्ञान (Knowledge of Importance of Facts) : बिखरे हुए तथ्यों को देखकर उनके महत्त्व के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। पर वर्गीकरण के द्वारा जब वही तथ्य थोड़े से वर्गों में विभक्त हो जाते हैं तो उनकी वास्तविकता स्वतः ही प्रगट हो जाती है और उन्हें समझने के लिए बुद्धि पर अनावश्यक जोर नहीं देना पड़ता है।

5. विश्लेषण व व्याख्या में सरलता (Convenience in Analysis and Interpretation) : वर्गीकरण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य तथ्यों को विश्लेषण व व्याख्या के लिए सरल बनाना है। तर्कसंगत रूप में तथ्यों को कुछ श्रेणियों में बाँट देने पर ही यह सम्भव होता है कि

उनकी सांख्यिकीय विवेचना की जाए। माध्य मूल्य, विचलन तथा सहसम्बन्ध आदि को जानने के लिए वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक प्रक्रिया है।

6. **परिशुद्ध निष्कर्ष निकालने के कार्य को सरल बनाना (To Make Easy Valid Generalization) :** वर्गीकरण उचित निष्कर्ष निकालने के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि वर्गीकरण के द्वारा संकलित तथ्य संक्षिप्त तथा बोधगम्य हो जाते हैं। उनमें पाई जाने वाली समानता व भिन्नता स्पष्ट हो जाती है और तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। इस प्रकार तथ्यों की भिन्न–भिन्न विशेषताओं के स्पष्टीकरण से परिशुद्ध निष्कर्ष निकालना सम्भव होता है।

वर्गीकरण के प्रमुख आधार (Main Basis of Classification) : एकत्रित तथ्यों को हम किस भाँति वर्गीकरण करेंगे, यह तथ्यों की प्रकृति, प्रकार तथा अध्ययन के उद्देश्य पर निर्भर करता है। फिर भी वर्गीकरण के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं–

1. गुणात्मक (Qualitative)
2. परिमाणात्मक (Quantitative)
3. सामयिक (Chronological)
4. भौगोलिक (Georaphical)

1. **गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative Classification) :** गुणात्मक आधार पर वर्गीकरण उन तथ्यों का किया जाता है जिन्हें अंकों में प्रकट नहीं किया जा सकता। अतः ऐसे तथ्यों का वर्गीकरण उनके गुणों या लक्षणों के आधार पर किया जाता है। एल्हॉड के शब्दों में, "उन सभी इकाइयों को जिनमें एक विशेष लक्षण विद्यमान है, एक समूह में व्यवस्थित किया जाता है और जिन इकाइयों में वह लक्षण नहीं है उन्हें दूसरे समूह में व्यवस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को उनके अध्ययन किये जाने वाले विषयों के आधार पर वर्गीकृत किया जाए।

2. **परिमाणात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification) :** परिमाणात्मक वर्गीकरण उस समय किया जाता है जब किसी परिमापन योग्य विशेषता के संदर्भ में मदों के अंतर्गत भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ ऊँचाई, आयु, आय–व्यय वजन आदि से संबंधित तथ्यों का गणनात्मक आधार पर ही वर्गीकरण किया जाता है।

3. **सामयिक वर्गीकरण (Chronological Classification) :** इस आधार पर किये गए वर्गीकरण में 'समय' को वर्गीकरण का आधार माना जाता है अर्थात् इसमें तथ्यों का वर्गीकरण समय

के आधार पर किया जाता है। इस आधार पर वर्गीकरण करना काफी आसान होता है क्योंकि विभिन्न समय या अवधि के अंतर्गत तथ्यों को रखना मुश्किल नहीं होता। उदाहरण के लिए, विभिन्न वर्षों में खाद्यान्नों के भावों की क्या स्थिति रही। एक अर्थ में काल श्रेणियाँ परिमाणात्मक आवंटनों के समान होती हैं क्योंकि श्रेणी का प्रत्येक अनुवर्ती वर्ष या महीना पहले दिए गए वर्ष से एक से कम अथवा अधिक होता है।

4. **भौगोलिक वर्गीकरण (Geographical Classification) :** संकलित तथ्यों का स्थान अथवा भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार भी वर्गीकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रान्तों में बी.कॉम कक्षाएँ पास करने वाले विद्यार्थियों का वर्गीकरण भौगोलिक आधार पर किया गया वर्गीकरण भौगोलिक वर्गीकरण कहलाता है।

वर्गीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Classification) :

एलहान्स, कॉनर, इलर्सिक आदि ने वर्गीकरण की विशेषताओं का वर्णन किया है। इनके आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताओं को निश्चित किया जा सकता है–

1. **व्यापकता (Extensiveness) :** वर्गीकरण की प्रथम विशेषता यह है कि यह इतना व्यापक होना चाहिए कि एकत्र सामग्री की सभी इकाइयाँ किसी–न–किसी वर्ग में अवश्य सम्मिलित की जा सकें। कोई भी इकाई छूटनी नहीं चाहिए। अगर कुछ इकाइयाँ निश्चित वर्ग में नहीं आ पाती हैं तो ऐसी स्थिति में एक "विविध" वर्ग बना लेना चाहिए। वर्गों का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वर्ग पूर्ण एवं व्यापक हो।

2. **स्पष्टता एवं निश्चितता (Clarity and Definiteness) :** सभी वर्गों का निर्माण इस प्रकार किया जाए कि वह स्पष्ट, सुनिश्चित एवं सरल हो। कौन सी इकाई किस वर्ग में रखी जाए, इस बारे में कोई दुविधा या अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए। एक इकाई मात्र एक वर्ग में ही आनी चाहिए। इकाई के वितरण में किसी प्रकार का आंशिक सन्देह भी नहीं होना चाहिए।

3. **स्थिरता (Stability) :** वर्गीकरण में स्थायित्व होना जरूरी है। यह श्रेष्ठ वर्गीकरण का आवश्यक लक्षण है। संगृहित सामग्री का जितनी बार वर्गीकरण किया जाए उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं आना चाहिए। भारतीय जनगणना के अन्तर्गत व्यावसायिक वर्गीकरण में यही दोष निहित है। इसमें विभिन्न व्यवसायों को अलग–अलग रूप में परिभाषित किया गया है। इस कारण तुलना करना कठिन हो जाता है। वर्ग विशिष्ट में रखे जाने वाले मदों को एक बार निर्धारित करने के बाद उनमें परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

4. अनुकूलता (Suitability) : शोध के उद्देश्य के अनुसार वर्ग की रचना की जानी चाहिए। उदाहरणार्थ मजदूरों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने में सामाजिक प्रस्थिति के लक्षणों के अनुसार वर्गीकरण करना चाहिए। उसमें राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण होना चाहिए।

5. सजातीयता (Homogenity) : प्रत्येक वर्ग की इकाइयों में परस्पर समान गुण होने चाहिएँ अर्थात् उनमें सजातीयता होनी चाहिए। जिस गुण के आधार पर वर्गीकरण किया गया है उसी गुण के अनुसार एक वर्ग की सभी इकाइयाँ होनी चाहिएँ। उस गुण का अन्य वर्गों में अभाव होना चाहिए।

6. लचीलापन एवं परिवर्तनशीलता (Flexibility and Changeability) : एक आदर्श वर्गीकरण वही होता है जिसमें वर्गीकरण लोचदार हो। नवीन परिस्थितियों के उभरने पर आवश्यकतानुसार वर्गों में परिवर्तन एवं संशोधन करना संभव हो।

7. शोध के अनुरूप (According to Research) : वर्गीकरण का आधार शोध के अनुरूप होना चाहिए। अगर दो श्रमिक समूहों का अध्ययन ग्राम–नगर के आधार पर किया जा रहा है तो बुद्धिलब्धि पर आधारित वर्गीकरण अर्थहीन होगा क्योंकि निवास स्थान का सम्बन्ध बुद्धिलब्धि से नहीं होता है।

8. उपयुक्त आकार (Suitable Size) : वर्गीकरण के अन्तर्गत आने वाले सभी वर्ग न तो बहुत अधिक विस्तृत हों और न ही बहुत संकीर्ण। अध्ययन की सामग्री की मात्रा अर्थात् संख्या एवं गुण देखकर दो वर्गों की संख्या निर्धारित करनी चाहिए। वर्ग की तुलना एवं विश्वसनीयता की दृष्टि से वर्गों की संख्या एवं आकार ठीक–ठीक होने चाहिएँ।

वर्गीकरण की प्रक्रिया

वर्गीकरण की प्रक्रिया का सार वर्गों, कोटियों अथवा श्रेणियों के विकास में निहित है। श्रेणियों के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राप्त की गई मौलिक सामग्री को कुछ समूहों में इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि वह अर्थपूर्ण प्रतीत होने लगे। कुछ श्रेणियाँ तो आँकड़ों से स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु कुछ का निर्माण करना पड़ सकता है। कुछ श्रेणियों की सूचना संग्रह के पूर्व ही निर्मित की जा सकती हैं जैसे कि प्रतिबन्धित प्रश्नों (Structured Question) के सन्दर्भ में तथा कुछ का निर्माण सूचना संग्रह का कार्य समाप्त होने पर किया जाता है।

वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्माण करते समय निम्न नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

1. **अनुसन्धान उद्देश्यों के लिए सार्थकता (Relevence for Research Objectives) :** बनाई गई श्रेणियों को अनुसन्धान उद्देश्यों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए।

2. **पूर्णता (Comprehensiveness) :** श्रेणियों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि संग्रहीत समस्त सूचना किसी न किसी श्रेणी के अन्तर्गत अवश्य ही वर्गीकृत की जा सके। "ज्ञात नहीं" अथवा "कोई प्रत्युत्तर नहीं" के लिए भी समुचित प्रावधान किया जाना चाहिए।

3. **पारस्परिक पृथकता (Mutual Exclusiveness) एवं स्वतन्त्रता** : श्रेणियों में किसी भी प्रकार की परस्पर व्यापकता नहीं पाई जानी चाहिए तथा इसमें स्पष्ट रूप से पृथकता दिखाई देनी चाहिए।

4. **स्पष्ट परिभाषा (Clear Definition) :** प्रत्येक श्रेणी की स्पष्ट परिभाषा की जानी चाहिए ताकि किसी प्रकार के सन्देह एवं भ्रम की गुँजाइश न रह सके।

5. **श्रेणियों की व्यापकता (Comprehensiveness of Categories) :** श्रेणियों का निर्माण इस दृष्टि से किया जाए कि इनका प्रयोग करते हुए सूचना के साराँश रूप का उचित अनुमान लगाने के अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रत्युत्तरों को भी समझना सम्भव हो सके। साथ ही साराँश एवं विस्तार के बीच उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

6. **एकीकता (Unitariness) :** श्रेणियों का विकास इस प्रकार किया जाना चाहिए कि अध्ययन की प्रत्येक इकाई को केवल एक ही श्रेणी में केवल एक बार ही सम्मिलित किया जा सके।

7. **वर्गीकरण का एक सिद्धान्त (One Classification Principle) :** प्रत्येक श्रेणी का निर्माण वर्गीकरण के एक ही सिद्धान्त को प्रयोग में लाते हुए किया जाना चाहिए।

8. **प्रबन्ध का एक स्तर (One Level of Discourse) :** श्रेणियों के निर्माण की सम्पूर्ण योजना में अधिक सरलता एवं कहीं अधिक जटिलता का समावेश नहीं होना चाहिए।

अप्रतिबन्धित प्रश्नों का प्रयोग करते हुए श्रेणियों के निर्माण में यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक उत्तरदाता द्वारा प्रदान किये गये उत्तरों को साराँशबद्ध किया जाए। फिर इन सभी उत्तरदाताओं के प्रत्युत्तरों में सामान्यता को ध्यान में रखते हुए काफी बड़ी संख्या में श्रेणियों का निर्माण किया जाए, और बाद में इन श्रेणियों को सामान्य विशेषताओं के आधार पर एक–दूसरे के साथ सम्मिलित करते हुए अन्तिम रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली श्रेणियों की संख्या को सीमित किया जाए।

वर्गीकरण के प्रकार (Types of classification) : वर्गीकरण दो प्रकार का होता है :

(i) गुणात्मक वर्गीकरण

(ii) संख्यात्मक वर्गीकरण।

(i) **गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative Classification) :** इस प्रकार के वर्गीकरण का आधार कोई गुण होता है। इकाइयों की गणना किसी एक विशेष अथवा अनेक गुणों के आधार पर की जाती है कि कितनी इकाइयों में वह विशेष गुण विद्यमान है और कितनी में नहीं। उदाहरण के लिए, साक्षरता के आधार पर कितने व्यक्ति साक्षर हैं तथा कितने निरक्षर। इसी प्रकार धर्म, व्यवसाय आदि के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार जब तथ्यों को गुणात्मक विशेषताओं अर्थात् गुणों के आधार पर जैसे शिक्षा, धर्म, रोजगार आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है तो इस प्रकार का विभाजन गुणात्मक वर्गीकरण कहलाता है।

(ii) **संख्यात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification) :** जब वर्गीकरण का आधार गुण के स्थान पर कोई ऐसे चल मूल्य (Variable) होते हैं जिनकी प्रत्यक्ष माप की जा सकती है, तो इस प्रकार के वर्गीकरण को संख्यात्मक वर्गीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए, ऊँचाई, लम्बाई, भार, आय आमदनी इत्यादि। गुणों के अनुसार वर्गीकरण तो उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर भी हो सकती पर चल मूल्यों में ऐसा नहीं होता। उसकी उपस्थिति तो प्रत्येक इकाई में होती है पर उसकी मात्रा में अवश्य अन्तर होता है।

3.6.2 संकेतीकरण (Codification)

तथ्यों का वर्गीकरण करने के पश्चात् संख्यात्मक विवेचना के लिए उत्तरों का संकेतन करना होता है। इसका अर्थ है बड़े–बड़े वर्गात्मक उत्तरों को संकेतों या प्रतीकों (Symbols) के द्वारा व्यक्त करना। यह काम सूचना–सम्पादन करते समय भी किया जा सकता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि भिन्न–भिन्न उत्तरों को सांकेतिक श्रेणियों में इस प्रकार रख दिया जाए कि उनकी आवश्यक विशेषताएँ स्पष्ट हो जाएँ।

आधुनिक अनुसन्धान में संकेतन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुसन्धानों में कार्य की कुशलता, समय की बचत और शुद्धता की दृष्टि से संकेतन प्रणाली को काम में लाया जाता है। इसके अंतर्गत तथ्यों को संकेतन संख्या दे दी जाती है और इन संकेतन

संख्याओं को गिनकर हम यह बता सकते हैं कि किस वर्ग में कुल कितने (Items) की संख्या है। सावधानीपूर्वक सम्पन्न किया गया संकेतन, अनुसन्धान की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है।

3.16 संकेतीकरण की परिभाषाएं :

संकेतीकरण की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

गुडे तथा हॉट के अनुसार, ''संकेतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा तथ्यों को वर्गों में संगठित किया जाता है और प्रत्येक पद को जो जिस वर्ग में आता है, एक संख्या या संकेत (Symbol) प्रदान किया जाता है। इस प्रकार संकेतों को गिनकर हम बता सकते हैं कि किसी दिए हुए वर्ग में पदों की संख्या कितनी है, परन्तु आधारभूत प्रक्रिया वर्गीकरण की है।"

सेलिज एवं अन्य के अनुसार, "संकेतीकरण तकनीकी प्रणाली है जिसके द्वारा तथ्यों को श्रेणीबद्ध किया जाता है। संकेतीकरण के द्वारा मूल तथ्यों का संकेतों में परिवर्तन किया जाता है,–उन्हें गिना एवं सारिणीयन भी किया जा सकता है।"

कर्लिंजर ने पहले संकेत की परिभाषा दी है और उसके बाद संकेतीकरण की दी है जो निम्नलिखित है, "एक संकेत प्रतीतों का समुच्चय है जिसे वस्तुओं के समुच्चय को कई कारणों से प्रदान किया जाता है। बहु–प्रतिगतन विश्लेषण में, संकेतीकरण जनसंख्या के सदस्यों या निदर्शन को संख्या प्रदान करता है जो सदस्यों के समूह या उप–समुच्चय को स्वतंत्र तरीकों से निर्धारित नियमों के अनुसार इंगित करते हैं।" इस सम्बन्ध में मोजर ने लिखा है कि, "सर्वेक्षण में संकेतन का उद्देश्य एक प्रश्न के उत्तरों का अनेक अर्थपूर्ण श्रेणियों में इस प्रकार वर्गीकरण करना है जिससे उनकी आधारभूत विशेषताओं को ज्ञात किया जा सके।"

संकेतीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Coding) :

संकेतीकरण की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। जिनको वैज्ञानिकों द्वारा इसकी परिभाषाओं एवं अर्थ में स्पष्ट किया गया है।

1. इसके द्वारा मूल तथ्यों एवं सामग्री को संकेतों में परिवर्तित करके सारिणीयन एवं गणना के लिए उपयुक्त बनाया जाता है।
2. गुडे एवं हॉट के अनुसार इसकी प्रमुख प्रक्रिया तथ्यों का वर्गीकरण करने की है।
3. यह मूल या मौलिक सामग्री के प्रत्येक पद को वर्ग के अनुसार संकेत प्रदान करती है।
4. यह तथ्यों को श्रेणीबद्ध करने के लिए आधार प्रदान करती है।

5. यह तथ्यों के विश्लेषण के कार्य को मितव्ययी बनाती है। इसके द्वारा विस्तृत सामग्री कम समय एवं न्यून धन के द्वारा विभिन्न वर्गों एवं उप–वर्गों में बाँटी जाती है।

6. संकेतीकरण ही ऐसी प्रक्रिया है जो गुणात्मक तथ्यों को परिमाण में परिवर्तित करके सांख्यिकीय विश्लेषण के उपयुक्त बनाती है।

7. यह तथ्यों को शुद्धता प्रदान करती है।

8. इसके द्वारा शोधकर्त्ताओं एवं सामग्री–विश्लेषणकर्त्ताओं की न्यून आवश्यकता पड़ती है।

संकेतन के लाभ

(Advantages of Coding)

1. यह शुद्धता को प्रोत्साहन देता है।
2. यह समय और स्थान की बचत करता है।
3. पुनः सारिणीयन करने से छुटकारा मिलता है या उसे कम से कम कार्य करना पड़ता है।
4. अनुसन्धानकर्त्ता को अधिकतम श्रम से बचाता है।

संकेतीकरण प्रक्रिया के स्तर (Stage of Coding Process) : सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री का संकेतीकरण तीन स्तरों पर सम्पन्न किया जाता है, जो निम्नानुसार है–

1. **उत्तरदाताओं के स्तर पर संकेतीकरण (Coding at Respondents Stage) :** प्रश्नावली और अनुसूची में अनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनके सम्भावित उत्तर प्रश्नों के नीचे विकल्प के रूप में दिए होते हैं। शोधकर्त्ता इन सम्भावित उत्तरों को संकेत भी प्रदान कर देता है। उत्तरदाताओं को निर्देश दे दिए जाते है कि उन्हें प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार देने हैं। प्रश्नावली के उत्तर पहले से ही संकेतबद्ध होने के फलस्वरूप उत्तरदाता के स्तर पर उत्तरों का संकेतीकरण स्वतः ही हो जाता है।

2. **साक्षात्कर्त्ताओं के स्तर पर संकेतीकरण (Coding at Interviewers's Stage) :** साक्षात्कर्त्ता जब अनुसूची के द्वारा सूचनादाताओं से सूचना एकत्र करता है तब वह उत्तरों का संकेतीकरण साथ–साथ करता चला जाता है। प्रश्नावली और अनुसूची में प्रमुख अन्तर होता है कि प्रश्नावली में उत्तरदाता स्वयं प्रश्नों के उत्तर भरता है जबकि अनुसूची में साक्षात्कर्त्ता सूचनादाता से प्रश्नों को पूछता है और सूचनादाता द्वारा दिए गए उत्तरों को साक्षात्कर्त्ता स्वयं अनुसूची में भरता है। इसलिए जिस प्रकार से उत्तरदाता अपने स्तर पर उत्तरों का संकेतीकरण करता है लगभग उसी प्रकार से साक्षात्कर्त्ता भी उत्तरों का

संकेतीकरण करता है। जो प्रश्न खुले होते हैं, उनके सम्भावित उत्तर विकल्प के रूप में प्रश्नों के नीचे नहीं दिए जाते हैं; इनका संकेतीकरण बाद में कार्यालय के स्तर पर किया जाता है।

3. कार्यालय के स्तर पर संकेतीकरण (Coding at the Level of Office) : सभी उत्तरदाता प्रश्नावलियों के उत्तर भर कर और सभी साक्षात्कर्त्ता सूचनादाताओं से अनुसूचियाँ भर कर शोध संस्थान केन्द्र को भेज देते हैं। इस प्रकार से सभी प्राप्त प्रश्नावलियाँ और अनुसूचियाँ जो कार्यालय को प्राप्त होती हैं, उनका संकेतीकरण कार्यालय में नियुक्त किए गए संकेत निर्धारकों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार से कार्यालय अन्तिम स्तर है जहाँ पर संकेतीकरण का बचा हुआ कार्य सम्पन्न किया जाता है।

संकेतकों का चयन

(Selection of Coders)

बड़े पैमाने पर किए जाने वाले अनुसन्धानों में संकेतकों की नियुक्ति अनिवार्य हो जाती है। संकेतकों के संकेतीकरण पर आँकड़ों पर अशुद्ध विश्लेषण और उसका उचित अर्थापन निर्भर करता है। अतः संकेतकों का चयन करने में अनेक सावधानियाँ रखनी चाहिएँ। संकेतक ऐसा संवेदनशील व्यक्ति होना चाहिए जो शब्दों के गूढ अन्तरों को पहचान सके। उसको अनुसन्धान विषयों के मूल संप्रत्यय स्पष्ट होने चाहिएँ क्योंकि तभी वह उद्देश्य के अनुकूल संकेतीकरण कर सकेगा। यह तभी सम्भव है जबकि वह बुद्धिमान हो। संकेतीकरण एक उबाने वाला यान्त्रिक कार्य है जिसे बार–बार दोहराना पड़ता है। अतः संकेतक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो शीघ्र उबे नहीं।

संकेतकों का प्रशिक्षण

(Training to Coders)

संकेतकों का प्रशिक्षण निम्नलिखित सोपानों में होना चाहिए–

1. अनुसन्धान के उद्देश्य अच्छी प्रकार समझा देने चाहिएँ। उन्हें अच्छी प्रकार प्रेरित करने के लिए अनुसन्धान कार्य के पीछे अनुसन्धानकर्त्ताओं की प्रेरणाओं से अवगत करा देना चाहिए।
2. आँकड़ा–सामग्री की सभी कोटियों तथा साँकेतिक नामों को अच्छी प्रकार सोदाहरण समझा देना चाहिए। उन्हें प्रत्येक कोटि और सांकेतिक नाम के पीछे तार्किकता समझ में आ जानी चाहिए।

3. संकेतकों को संकेतीकरण का अभ्यास कराना चाहिए। इस अभ्यास से उनकी त्रुटियों का पता लगेगा और सांकेतिक नामों को समझने की कमियाँ दूर हो जाएँगी। आवश्यकता पड़ने पर सामूहिक चर्चा की जानी चाहिए।

4. जब यह निर्णय हो जाए कि वे सांकेतिक नाम एक ही मनोरचना के आधार पर दे रहे हैं तो अन्तः संकेतक विश्वसनीयता (Inter-Coer-Reliabiality) का मापन कर लेना चाहिए। विश्वसनीयता बहुत अधिक आने पर (नौ से कम नहीं) मुख्य आँकड़ा–सामग्री का इन संकेतकों का इन संकेतकों द्वारा संकेतीकरण आरम्भ किया जा सकता है।

सावधानियाँ (Precautions) : तथ्य–सामग्री को एकत्र करने के बाद उसकी जाँच की जानी चाहिए ताकि सम्भावित गलती को उसी समय दूर किया जा सके। यदि एक बार जाने या अनजाने में गलती रह गई और उसका पता नहीं लगाया गया तो वह आगे जाकर परिणामों को बहुत प्रभावित करेगी। इसलिए संकेतनकर्त्ता को चाहिए वह तथ्यों की तुरन्त जाँच कर ले। तथ्यों को सम्पादित करना चाहिए। इससे यह लाभ होता है कि अनुसन्धानकर्त्ता तथ्यों के संकलन करने के गुण को सुधार सकता है, उसकी कई गलतफहमियाँ दूर हो सकती हैं। जहाँ आवश्यक हो, निरीक्षणकर्त्ता की भी जाँच व्यवस्थित ढंग से होनी चाहिए ताकि कई समस्याएँ उसी समय दूर हो सकें।

संकेतन प्रक्रिया की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि तथ्य–सामग्री को एकत्र करने के तुरन्त बाद उसकी जाँच की जाये। उन तथ्यों को सही ढंग से सम्पादित किया तथा त्रुटियों को निकाला जाना चाहिए। जाँच में अनेक बातें देखी जाती हैं–

(i) सभी मदों को भरकर पूर्णता लाई जाये। खाली स्थान को भरते समय यह ध्यान देना चाहिए कि जो प्रश्न पूछे जा रहे हैं उनकी क्या प्रकृति है। गलत ढंग से भरे गए खाली स्थान गलत परिणाम ला सकते हैं।

(ii) साक्षात्कारक या अवलोकनकर्त्ता का लेख सुपठनीय होना चाहिए। जब संकेतनकर्त्ता को सामग्री प्रदान की जाए, उस वक्त ही उसको देख लेना चाहिए कि अक्षर पढ़ने योग्य है या नहीं। वह उस वक्त तो साक्षात्कारकर्त्ता से सही जानकारी प्राप्त कर सकता है।

(iii) उसके लेखन में बोधगम्यता हो। कभी–कभी ऐसा होता है कि रिकार्ड किया गया उत्तर साक्षात्कारकर्त्ता या निरीक्षणकर्त्ता के समझने योग्य है।

(iv) उत्तरों में सुसंगति देखी जाये। किसी साक्षात्कार व निरीक्षण में असंगतपूर्ण बातें संकेतन में कई समस्याएँ पैदा कर देती हैं। उदाहरण के लिए, सफेद और नीग्रो लोगों के संबंधों

पर कोई साक्षात्कार लिया गया हो, जिसमें उत्तरदाता एक बार तो यह उत्तर देता है कि उसने कभी नीग्रो परिवार की जानकारी या उसका निरीक्षण नहीं किया, लेकिन कभी बीच में यह उत्तर देता है कि वह कभी–कभी उनके परिवार में भी चला जाता है। ऐसी असंगतपूर्णता को दूर किया जाना चाहिए। अन्यथा संकेतन के लिए गम्भीर समस्या पैदा हो जाएगी।

(v) सभी साक्षात्कारकर्त्ताओं अथवा अवलोकनकर्त्ताओं को निर्देश दिये जायें ताकि ये एकरूप कार्य विधि को अपनाएँ। संकेतन करने के बाद ठीक ढंग से वर्गीकरण करने की योजना बनायी जानी चाहिए। तथ्य अपने आप कुछ नहीं कहते। उनका अध्ययन करने के लिए उपयुक्त ढंग से वर्गीकरण तथा सारिणीयन किया जाना चाहिए।

3.6.3 सामग्री का सारिणीयन

(Tabulation of Data)

सूचनाओं के वर्गीकरण तथा संकेतन करने के पश्चात् सामग्री को और भी स्पष्ट करने के लिए तथ्यों का सारिणीयन किया जाता है। सारणी के माध्यम से विभिन्न प्रकार के तथ्यों को तुलनात्मक स्तर पर लाया जाता है। एक अच्छी सारणी में शीर्षक, खाने, रेखाएँ, अंक उनका क्रम, प्रतिशत आदि लिखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। सामग्री का सारिणीयन बड़े स्तर के अध्ययनों में इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इसी प्रक्रिया के द्वारा गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों ही प्रकार के तथ्यों को एक सांख्यिकीय रूप दिया जाता है और अधिक मात्रा में फैले हुए आँकड़ों को एक संक्षिप्त स्वरूप प्रदान करके उनका एकीकरण कर लिया जाता है। जहोडा ड्यूट्स, कूक आदि ने लिखा है कि, "जिस प्रकार संकेतन को तथ्यों के श्रेणीबद्ध करने की प्राविधिक पद्धति कहा जाता है, उसी प्रकार सारिणीयन को सांख्यिकीय तथ्यों के विश्लेषण की प्राविधिक प्रक्रिया का अंग माना जाता है।"

सी.ए. मोजन ने 'Survey Methods in Social Investigation' में लिखा है कि "मौलिक रूप से सारिणीकरण विभिन्न कार्यों में से प्रत्येक के अन्तर्गत पाए जाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या की गणना से अधिक और कुछ नहीं हैं।"

जहोदा एवं अन्य ने 'Research Methods in Social Relation' में लिखा है कि "सारिणीयन आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण की प्राविधिक प्रक्रिया का एक अंग है। इसके

अन्तर्गत आवश्यक क्रिया उन उत्तरदाताओं की संख्या को निर्धारित करने के लिए गणना करने की है जो विभिन्न श्रेणियों में पायी जाती है।"

ग्रेगरी एवं वार्ड के अनुसार, "सारिणीयन वर्गीकृत आँकड़ों को सारिणी के रूप में संक्षिप्त करने की प्रविधि है जिससे उसे अधिक सुगमता से समझा जा सके तथा कोई भी निहित तुलना अधिक शीघ्रता से की जा सके।"

डी.एन.एलहंस ने 'Fundamentals of Statistics' में सारिणीयन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "विस्तृत अर्थ में सारिणीयन आँकड़ों को कुछ स्तम्भों और पंक्तियों में प्रस्तुत करने की एक व्यवस्थित क्रमबद्धता है...यह एक ओर आँकड़ों के संकलन और दूसरी ओर आँकड़ों के अन्तिम विश्लेषण के बीच की एक प्रक्रिया है।"

सारिणीयन के उद्देश्य (Objectives of Tabulation) : सारिणीयन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैः

1. **सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण (Systematic Presentation) :** सारिणीयन का मुख्य उद्देश्य अनुसन्धान द्वारा प्राप्त सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना है, जिससे सामग्री एक स्थान पर रखी जा सके, और वह बोधगम्य हो सके।

2. **बोधगम्य सूचनाएँ (Understandable Information) :** सारिणीयन का यह उद्देश्य है कि वर्गीकृत तथ्यों को संक्षिप्त, सुविधाजनक एवं समझने योग्य स्थिति में रखा जाए, जिससे वे बोधगम्य हो सकें।

3. **तथ्यों का स्पष्टीकरण (Clarification of Facts) :** संकलित सामग्री को स्पष्ट करने के लिए उन्हें सारणियों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे समस्त सूचना एक साथ मिल जाती है। इससे निष्कर्ष निकालने में सुविधा रहती है, और समस्या का स्पष्टीकरण सरलता से हो जाता है।

4. **सुविधाजनक तुलना (Convenient Comparison) :** सारिणीयन द्वारा विभिन्न तथ्य अलग–अलग शीर्षकों में वर्गीकृत किए जाते हैं, इससे परस्पर उनकी तुलना करना, निष्कर्ष निकालना एवं व्याख्या करना सरल हो जाता है।

5. **संक्षिप्तिकरण (Summarization) :** सारिणीयन का उद्देश्य तथ्यों को छोटे रूप में प्रदर्शित करना है, जिससे विस्तृत सूचना एक ही दृष्टि में मिल सके। इसी विशेषता के कारण पी. वी. यंग ने इसे 'सांख्यिकीय सारणियों की संकेत–लिपि' कहा है।

श्रेष्ठ सारणी की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Table) : सारणी एकत्रित तथ्यों को सरल, बोधगम्य तथा आकर्षक बनाने का एक साधन है और एक साधन के रूप में इसे अधिक से अधिक उत्तम प्रकृति का होना चाहिए। इसके लिए नीचे दिये गये गुणों का होना जरूरी है:

1. **आकर्षक (Attractive) :** सारणी यदि एक चित्र जैसा प्रभाव जमाने के उद्देश्य से बनायी गयी हो तो उसकी आकृति तथा बनावट विभिन्न प्रकार से आकर्षक होनी चाहिए। उसमें शीर्षक शब्द तथा अंक, लाइनें खींचने का कार्य इत्यादि बड़ी स्वच्छता तथा सुलेख के साथ होना चाहिए।

2. **समुचित आकार (Adequate Size) :** एक उच्चस्तरीय सारणी का आकार समुचित होना चाहिए। 'समुचित' का मतलब है कि आकार न बहुत बड़ा हो और न ही बहुत छोटा। यदि आकार बड़ा होगा तो सारणी की सरलता नष्ट हो जायेगी। सारणी का एक उद्देश्य एकत्रित तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान करना है। आकार बहुत बड़ा होने पर इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। यदि सारणी का आकार छोटा होगा तो कुछ तथ्यों की विशेषताएँ प्रकट नहीं हो पाती हैं और न ही तुलनात्मक अध्ययन पूर्णतया किया जा सकता है।

3. **तुलना की सुविधा (Comparability) :** एक अच्छे किस्म की सारणी में तथ्यों को इस प्रकार व्यवस्थित रूप में सजाकर प्रस्तुत किया जाता है कि विभिन्न तथ्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना हमारे लिए सरल हो जाए।

4. **सम्पूर्ण सूचनाएँ (Full Information) :** सारणी का बाहरी रूप ऐसा होना चाहिए जिससे सभी प्रकार की सूचनाएँ एक क्रम या व्यवस्था के अनुसार शीर्षकों, उपशीर्षकों तथा विभिन्न खानों में प्रस्तुत की जा सकें। कोई भी अधिक आवश्यक सूचनाएँ सारणी में से छूट जाना सारणी को अनुपयोगी बना सकता है।

5. **स्पष्टता (Clarity) :** एक उत्तम सारणी का स्पष्ट तथा सरल होना बहुत आवश्यक है। सारणी इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिए कि साधारण व्यक्ति भी उसे देखकर समझ सके। सारणी के स्पष्ट होने पर हम किसी भी आँकड़े को तुरन्त ढूँढ सकते हैं।

6. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Approach) :** यदि सारणी को वैज्ञानिक ढंग से बनाया जाए तब उसमें समय की बचत के साथ–साथ सारी सूचनाएँ अंतर्सबंधित होते हुए भी एक क्रम से लगी हुई होंगी।

7. **उद्देश्य के अनुकूल (In accordance with the purpose) :** सारणी का निर्माण इस ढंग से किया जाना चाहिए कि अध्ययन के उस उद्देश्य की पूर्ति हो जिस उद्देश्य से सारणी को तैयार करना आवश्यक माना गया है।

सारणियों के प्रकार

(Types of Tables)

(1) उद्देश्य के आधार पर (On the Basis of Objective).

(2) बनावट के आधार पर (On the Basis of Construction).

(3) आवृति के आधार पर (On the Basis of Frequency).

1. **उद्देश्य के आधार पर (On the Basis of Objective) :** उद्देश्य के आधार पर सांख्यिकीय सारणी दो प्रकार की होती है– सामान्य उद्देश्यीय सारणी और विशिष्ट उद्देश्यीय सारणी अथवा संक्षिप्त सारणी।

(अ) सामान्य उद्देश्यीय सारणी (General Purpose Table) : क्राकसटन तथा काउडेन का कथन है 'सामान्य उद्देश्यीय सारणी का प्राथमिक तथा प्रायः एकमात्र उद्देश्य समंकों को ऐसे रूप में प्रस्तुत करना होता है कि व्यक्तिगत इकाइयाँ पाठक द्वारा तुरन्त ढूँढी जा सकें। इस प्रकार की सारणी का कोई विशेष उद्देश्य नहीं रहता और यह प्रायः किसी प्रकाशित रिपोर्ट के पीछे संलग्न रहती है। इसमें समस्त सूचना ज्यों की त्यों रखी जाती है, किसी विशेष प्रकार की तुलना के दृष्टिकोण से नहीं' इस प्रकार की सारणियों से हमें केवल कुछ विषयों के संदर्भ का ज्ञान होता है और किसी भी इकाई के बारे में जानने में सुविधा होती है। इस प्रकार की सारणियों का कोई विशिष्ट उद्देश्य नहीं रहता; और किसी विषय का संदर्भ ढूँढने में आसानी हो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार की सारणी को किसी प्रकाशित रिपोर्ट के अंत में लगा दिया जाता है।

(ब) संक्षिप्त सारणी (Summary Table) : इस प्रकार की सारणी प्रायः एक या अधिक सामान्य उद्देश्यीय सारणियों की सहायता से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए तैयार की जाती है। क्राकसटन तथा काउडेन के अनुसार, "संक्षिप्त सारणी जो प्रायः आकार में अपेक्षाकृत छोटी होती है किसी एक निष्कर्ष अथवा कुछ निकट संबंध वाले निष्कर्षों को अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से रखने के लिए तैयार की जाती है।" वास्तव में संक्षिप्त सारणी सामान्य उद्देश्यीय सारणी का एक छोटा रूप होती है जिसको कि कुछ तथ्यों की

विशेषताओं को विशिष्ट रूप से प्रदर्शित करने के उद्देश्य से तैयार किया जाता है। इसीलिए संक्षिप्त सारणी में उन सभी तथ्यों को छोड़ दिया जाता है जोकि विशिष्ट उद्देश्य से संबंधित है।

2. बनावट के आधार (On the Basis of Construction) : सामान्यतः सारणियों को हम चार भागों में बांटते हैं :

(i) **एक गुणीय सारिणीयन (One Way Tabulation) :** इस प्रकार की सारिणीयन में केवल एक ही गुण या विशेषता को दिखाया जाता है। जैसे परीक्षार्थियों के प्राप्तांक–

प्राप्तांक	विद्यार्थी
0-10	5
10-20	4
20-30	10
30-40	12
40-50	4

(ii) द्विगुणीय सारिणीयन (Double way Tabulation) : इस प्रकार की सारिणीयन में किसी घटना या तथ्यों की दो विशेषताओं या गुणों को दिखाया जाता है। जैसे निम्नलिखित सारणी में छात्राओं द्वारा प्राप्तांक को प्रदर्शित किया गया है–

प्राप्तांक	छात्रों द्वारा	छात्राओं द्वारा
0-10	4	10
10-20	9	12
20-30	10	14
30-40	6	17
40-50	8	5

(iii) त्रिगुणी सारिणीयन (Tripple way Tabulation) : इस प्रकार की सारणी में किसी घटना या तथ्य से सम्बन्धित तीन परस्पर विशेषताओं को आँकड़ों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जैसे निम्न सारणी में छात्र एवं छात्राओं के द्वारा प्राप्तांकों को छात्र तथा उनकी वैवाहिक स्थिति–इन तीनों गुणों को हम इस प्रकार प्रस्तुत करेंगे–

प्राप्तांक	छात्र			छात्राएँ			कुल योग		
	वि	अवि	योग	वि	अवि	योग	वि	अवि	अन्तिम योग
0-10	2	1	3	5	1	6	7	2	9
10-20	3	4	7	2	1	3	5	5	10
20-30	0	3	3	4	2	6	4	5	9
30-40	2	5	7	5	0	5	7	5	12
40-50	6	2	8	3	4	7	9	6	15

(iv) **बहुगुणीय सारिणीयन (Manifold Tabulation) :** किसी घटना अथवा सदस्य के बारे में तीन से अधिक प्रकार के परस्पर सम्बन्धित आँकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए बहुगुणीय सारणी की आवश्यकता पड़ती है।

उदाहरण – सारणी में छात्र, छात्राओं, प्राप्तांक तथा कॉलेजों के बारे में परस्पर संबंध प्रदर्शित करने के लिए।

कॉलेज	प्राप्तांक	छात्र			छात्राएँ			कुल योग		
		वि	अवि	योग	वि	अवि	योग	वि	अवि	अन्तिम योग
जाट कॉलेज रोहतक	0-10	2	4	6	5	2	7	7	6	13
	10-20	3	3	6	2	4	6	5	7	12
	20-30	4	5	9	0	1	1	4	6	10
	30-40	2	4	6	2	3	5	4	7	11
	40-50	0	1	1	0	2	2	6	3	3
यूर्निवसिटी कॉलेज रोहतक	0-10	6	5	11	3	5	8	9	10	19
	10-20	7	8	15	8	7	15	15	15	30
	20-30	9	8	17	10	8	18	19	16	35
	30-40	9	7	16	9	7	16	18	14	32
	40-50	5	4	9	7	4	11	12	8	20

3. आवृत्ति के आधार पर सारणी (On the Basis of Freqecy) : आवृत्ति के आधार पर सारणी दो प्रकार की होती है। एक को आवृत्ति सारणी (Freqency Table) और दूसरी को संचयी आवृत्ति सारणी (Cumulative Frequency Table) कहते हैं।

(अ) आवृत्ति सारणी (Frequency Table) : जब खंडित श्रेणियों (Discrete Series) अथवा अखंडित श्रेणियों (Continuous Series) को सारणी में प्रदर्शित किया जाता है तो उसे आवृत्ति सारणी कहते हैं।

(ब) संचयी आवृत्ति सारणी (Cumulative Frequency Table) : इसमें प्रत्येक समूह या वर्ग की आवृत्ति को अलग–अलग प्रदर्शित नहीं करते बल्कि पिछली आवृत्ति में जोड़कर प्रदर्शित करते हैं।

सारिणीयन का लाभ अथवा महत्त्व

(Advantage or Importance of Tabulation)

सारिणीयन का वर्गीकृत सामग्री को प्रस्तुत करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाउले (Bowley) ने बताया है कि "साँख्यिकीय अनुसन्धान की सामान्य योजना में सारिणीयन का कार्य उत्तर को, जिससे अनुसन्धान का सम्बन्ध है, सुलभ रूप में क्रमबद्ध करना है।" पाडेन (Paden) के विचार में, "एक साँख्यिकीय सारिणी का कार्य साधारण प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त विश्लेषण के उपयोगी यन्त्र के रूप में कार्य करना भी है।" सारिणीयन के महत्त्व को निम्नांकित बिन्दुओं में रखकर समझा जा सकता है–

1. **सरलता (Simplicity)** : सारिणीयन के द्वारा आँकड़ों को ऊपर से नीचे की ओर तथा बायें से दाहिनी ओर सफलतापूर्वक देखकर उनसे सम्बन्धित निष्कर्षों और प्रवृत्तियों को समझना भी एक सरल कार्य है। साथ ही इसके द्वारा संख्यात्मक त्रुटियों को दूर करके अधिक यथार्थ निष्कर्ष दिए जा सकते हैं।

2. **उद्देश्य की स्पष्टता (Clarity of Objects) :** सारिणीयन इस दृष्टिकोण से भी एक उपयोगी प्रणाली है कि उसके अन्तर्गत विभिन्न सारिणीयों का निर्माण अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। जिससे अध्ययन के उद्देश्यों को समझना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि विभिन्न सारिणीयों में किसी विशेष समूह की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवृत्ति सम्बन्धी विशेषताओं का समावेश होता है तो सरलता से यह समझा

जा सकता है कि अध्ययन का उद्देश्य एक विशेष समूह की सामाजिक–आर्थिक विशेषताओं को ज्ञात करना है।

3. **तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study) :** सारिणी के अन्तर्गत आँकड़ों को अनेक खानों और पंक्तियों में इस प्रकार व्यवस्थित करके प्रस्तुत किया जाता है कि विषय के विभिन्न पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन करना सम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त सारिणीयों द्वारा प्रतिशत, अनुपात, माध्य अथवा औसत आदि के प्रदर्शन के कारण भी तुलनात्मक अध्ययन करना सरल हो जाता है।

4. **वस्तुनिष्ठता (Objectivity) :** सारणियों का निर्णय करना एक मनमाना कार्य नहीं होता बल्कि इनके निर्माण में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है। सारणियाँ इसलिए भी वैज्ञानिक होती हैं कि इनके अर्थ में सार्वभौमिकता का गुण होता है। एक सारणी को देखने वाले सभी अनुसन्धानकर्त्ता उसका एक जैसा अर्थ लगाते हैं। इनके फलस्वरूप सारिणीयों के माध्यम से किसी विशेषता का कहीं अधिक वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करना सम्भव हो जाता है।

5. **मितव्ययता (Economy) :** सारिणीयन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा आँकड़ों के विशाल समूह को बहुत कम समय में ही व्यवस्थित करके महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सारिणीयन की सहायता से प्रतिवेदन को संक्षिप्त बनाना अथवा कम पृष्ठों में ही अधिक से अधिक सूचनाएँ दे सकना सम्भव हो जाता है। इससे अध्ययनकर्त्ता के समय में भी बहुत बचत होती है।

6. **साँख्यिकीय विवेचन (Statistical Interpretation) :** सारिणीयन के अभाव में आँकड़ों का साँख्यिकीय विवेचन नहीं किया जा सकता। वर्तमान युग में जैसे–जैसे माध्य, माध्यिका, बहुलाँक, विचलन तथा सह–सम्बन्ध आदि के रूप में साँख्यिकीय विवेचन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, सारिणीयन के द्वारा तथ्यों को प्रदर्शित करना भी अनिवार्य हो गया है।

7. **चित्रमय प्रदर्शन (Diagrammatic Presentation) :** रिपोर्ट के प्रस्तुतीकरण में आँकड़ों के चित्रमय प्रदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। दण्ड चित्रों अथवा ग्राफ के रूप में इन तथ्यों को केवल तभी प्रदर्शित किया जा सकता है जब पहले उन्हें सारणियों में व्यवस्थित कर लिया जाए। इस दृष्टिकोण से भी सामाजिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में सारिणीयन के महत्त्व की अवहेलना नहीं की जा सकती।

सारिणीयन की सीमाएँ (Limitations of Tabulation) : सारिणीयन से जहाँ अनेक लाभ हैं वहीं इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं, जिनके कारण यह पूर्णतया दोषों से मुक्त नहीं है। कुछ सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **केवल संख्यात्मक सूचनाएँ (Only Quantitative Information) :** सारिणीयन के द्वारा केवल संख्यात्मक सूचनाओं को ही स्पष्ट किया जा सकता है, गुणात्मक सूचनाएँ इस विधि से प्राप्त नहीं हो पातीं। किन्तु सामाजिक अनुसन्धानों में अधिकांश सूचनाएँ गुणात्मक प्रकृति की होने के कारण सारणियों से उन्हें व्यक्त करना कठिन होता है। यह इस विधि की सीमा है।

2. **विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता (Necessity of Specialized Knowledge) :** सारणियाँ गणितीय ज्ञान पर आधारित होती हैं और गणितीय ज्ञान सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन होता है, इन्हें तो विशेष शिक्षित व्यक्ति ही समझ सकता है। अतः सारिणीयन के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। इसकी यह भी एक सीमा कही जा सकती है।

3. **पूर्ण परिशुद्धता का अभाव (Lack of Complete Purity) :** सारिणीयन में प्रदर्शित सूचनाएँ पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नहीं होती हैं क्योंकि उन्हें सापेक्षित रूप से विभिन्न पदों के अन्तर्गत दिखाया जाता है। ऐसा करने में कभी–कभी वे गलत अथवा असम्बद्ध रूप में भी प्रदर्शित की जाती हैं अथवा कभी–कभी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को भी सही स्थान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप वे पूर्णतया विशुद्ध नहीं हो पाती हैं।

4. **नीरस एवं रूचिहीन (Dry and Disintrested) :** सारिणीयन के आँकड़े प्रायः नीरस होते हैं। उनमें केवल संख्याएँ होती हैं जिन्हें समझना अरूचिकर प्रतीत होता है, उन्हें समझने के लिए अधिक बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। इसलिए सारणियाँ अनाकर्षक, अरूचिकर तथा नीरस दिखाई देती हैं।

सारणी निर्माण के आवश्यक नियम एवं सावधानियाँ

(Rules and Precautions in preparing Tables)

सारणी निर्माण एक साधारण कार्य नहीं है बल्कि एक ऐसा कार्य है जो कि अनुसन्धानकर्त्ता के अनुभव, कार्यकुशलता और विशुद्ध ज्ञान पर आधारित होता है। सारणी का निर्माण मनमाने ढंग से नहीं किया जाता है बल्कि उसके कुछ निश्चित नियम होते हैं

जिनका पालन करना आवश्यक होता है। इन नियमों को और सम्बन्धित सावधानियों को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :

1. सारणी का शीर्षक (Heading of the Table) : सारणी का एक उचित कथन संक्षिप्त शीर्षक होना चाहिए। यह आवश्यक है कि यह शीर्षक मोटे अक्षरों में लिखा जाए और वह स्पष्ट एवं आकर्षक हो। शीर्षक ऐसा हो जिससे सारणी का विषय, वर्गीकरण का आधार आदि स्पष्ट हो सके। वास्तव में सारणी को देखकर ही यदि उसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है तो शीर्षक सार्थक होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि शीर्षक इतना लम्बा न हो कि वह दो–तीन लाइनों में लिखा जाए पर इतना छोटा भी न हो कि उसका अर्थ भी स्पष्ट न हो।

2. स्तंभों का आकार (Size of Columns) : स्तम्भों का आकार निर्धारित करते समय उस कागज से आकार का ख्याल रखना चाहिए जिस पर कि सारणी को बनाना है। अनावश्यक रूप में केवल स्तम्भों के बड़ा कर देने से ही उचित सारणी का निर्माण नहीं हो जाता है। वास्तव में तथ्यों के विवरण के आधार पर स्तम्भों की लम्बाई–चौड़ाई निश्चित की जानी चाहिए। प्रायः प्रथम स्तम्भ सबसे बड़ा होता है क्योंकि इसमें खंडित या अखंडित श्रेणियों के वितरण लिखे जाते हैं। इसी प्रकार यह भी देख लेना चाहिए कि प्रत्येक स्तम्भ में हमें कितनी बड़ी व छोटी संख्या लिखनी हैं, इसी संख्या के आकार के अनुसार स्तम्भों या कॉलमों का आकार निश्चित करें जिससे कि संख्याओं को सरलता से लिखा जा सके।

3. अनुशीर्षक (Captions) : प्रत्येक स्तम्भों व कॉलमों का अनुशीर्षक होता है जिसे कि बहुत ही स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिए जिससे कि यह स्पष्ट हो जाए कि एक कॉलक विशेष में किन तथ्यों के आँकड़ों को प्रस्तुत किया गया है। कभी–कभी बहुत बड़ी संख्या को प्रदर्शित करने के लिए कुछ संकेतों का प्रयोग किया जाता है। जैसे जनसंख्या 'लाखों में' अथवा .00,000 व्यक्तियों में'। इस प्रकार के संकेतों को अनुशीर्षक के साथ ही जरूर लिख देना चाहिए।

4. पंक्तियों में सूचना लिखना (Writing in Rows) : तथ्यों का संख्याओं को पंक्तियों में लिखने की कई विधियाँ होती हैं। अनुसन्धान के उद्देश्य के अनुसार किसी एक विधि को अपनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कतारों को वर्णमाला के अनुसार एक क्रम से लिखा जा सकता है। उसी प्रकार स्थान के अनुसार, समय के अनुसार और महत्त्व के अनुसार भी सूचनाओं को अथवा तथ्यों को पंक्तियों में लिखा जा सकता है।

5. **स्तम्भों का क्रम (Sequence of Columns) :** कतारों के समान ही कॉलमों को भी कई प्रकार के क्रमों में लिखा जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता होती है :

(क) प्रथम कॉलमों में प्रायः विवरण लिखा जाता है जिससे कि आगे लिखी संख्याओं का परिचय प्राप्त हो।

(ख) अधिक महत्त्वपूर्ण सूचना यथासम्भव बायीं ओर के कॉलमों में लीखी जानी चाहिए।

(ग) तुलना की जाने वाली संख्याओं को पास–पास देना चाहिए जैसे पुरुष–स्त्री, शिक्षित–अशिक्षित।

(घ) संख्याओं के प्रतिशत माध्य अथवा अनुपात को उन संख्याओं के बगल में ही रखना चाहिए।

6. **स्तम्भों का विभाजन (Division of Columns) :** यदि आँकड़ों या तथ्यों को कई वर्गों तथा उपवर्गों में विभाजित करके प्रदर्शित करना है तो उसी अनुसार कॉलमों का भी विभाजन कर देना चाहिए। पर यह विभाजन इस प्रकार का होना चाहिए कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग से सरलतापूर्वक पृथक किया जा सके। इसके लिए प्रायः उपवर्ग की रेखा पतली तथा वर्गों की रेखा गहरी अथवा लाल स्याही से बनाई जाती है। योग वाले कॉलम की रेखा भी इसी प्रकार से कुछ गहरी खींची जाती है।

7. योग (Total) : यदि कॉलमों को कई उपवर्गों में विभाजित किया गया है तो प्रत्येक उपवर्ग का योग अलग–अलग देना चाहिए। जैसे यदि जनसंख्या को पुरुष–स्त्रियों तथा विवाहित–अविवाहित में बाँटा गया है तो दोनों उपयोग भी पृथक्–पृथक् दे देने चाहिएँ। वैसे भी प्रत्येक कॉलम का योग अवश्य होना चाहिए। आवश्यकतानुसार प्रत्येक कॉलम का योग खड़े और पड़े दोनों रूप में दे देना अधिक सुविधाजनक होता है।

8. **टिप्पणियाँ (Notes) :** यदि सारणी में उल्लेखित संख्याओं या स्वयं सारणी के सम्बन्ध में कोई विशेष बात बतलानी हो तो उसे सारणी के नीचे एक या एकाधिक टिप्पणियों द्वारा प्रकट कर देना चाहिए। इसी प्रकार की टिप्पणियों में प्रायः सूचना के स्रोतों का अथवा कुछ विशिष्ट अपवादों का उल्लेख किया जाता है। टिप्पणी यदि किसी विशेष संख्या से सम्बन्धित है तो कोई चिन्ह जैसे तारक आदि लगाकर यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि अमुक टिप्पणी अमुक आँकड़े से सम्बन्धित है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कुछ मदों से सम्बन्धित आँकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। ऐसी स्थिति में उस कॉलम को खाली नहीं

रखना चाहिए बल्कि कोई चिन्ह बनाकर नीचे टिप्पणी में उसे स्पष्ट कर देना चाहिए जिससे कि यह शक न रहे कि वह स्थान भूल से छूट गया है।

3.7. अपनी प्रगति जांचिए :

(क) आँकड़ा विश्लेषण (सामग्री विश्लेषण) का अर्थ परिभाषित करें।

(ख) अनुसंधान कार्य में आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया की आवश्यकता क्यों है?

(ग) आँकड़ों के विश्लेषण के आधार बताओ।

(घ) विश्लेषण के चरों को परिभाषित कीजिए।

(ड़) आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया में अवधारणाओं के निर्माण की आवश्यकता को बताओ।

(च) आँकड़ों के सम्पादन की प्रक्रिया का वर्णन करो।

(छ) प्राथमिक व दैतीयक सामग्री के सम्पादन में क्या अंतर है?

(ज) सम्पादन के समय किन तीन बातों का निरीक्षण किया जाता है?

(झ) आँकड़ों के वर्गीकरण से आपका क्या अभिप्राय है?

(ञ) वर्गीकरण के प्रमुख आधारों के नाम बताओ।

(ट) आँकड़ों के वर्गीकरण के प्रकार बताओ।

(ठ) संकेतीकरण से क्या अभिप्राय है? संकेतीकरण की प्रक्रिया के स्तर बताओ।

(ड) आँकड़ों के सारिणीयन से क्या अभिप्राय है?

(ढ) बनावट के आधार पर सारिणीयों के प्रकार बताओ।

(ण) सारिणीयन के कोई तीन लाभ व महत्व बताओ।

3.8. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) आँकड़ों के विश्लेषण से अभिप्राय अनुसंधान के प्रश्नों का सामग्री की कोटियों, क्रमबद्धता, जोड़–तोड़ और संक्षिप्तीकरण के उत्तर प्राप्त करना है।

(ख) तथ्यों को अर्थपूर्ण व सार्थकता प्रदान करने के लिए विश्लेषण की आवश्यकता होती है। तथ्यों का संकलन तब तक अर्थहीन होता है जब तक उनका विश्लेषण न किया जाए, विश्लेषण के माध्यम से कार्य–कारण संबंधों का ज्ञान होता है तथा अनुसंधान में परिणामों की घोषणा संभव हो जाती है।

(ग) आँकड़ों के विश्लेषण के दो आधार होते हैं :

– इकाइयां (Units)

– चर (Variables)

(घ) चर मूल्यों का समूह होते हैं, जिस पर वर्गीकरण आधारित होता है। किसी भी अनुसंधान कार्य में तीन प्रकार के चर निहित होते हैं – स्वतंत्र चर, आश्रित चर, मध्यस्थ चर।

(ड़) आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया में तथ्यों के एक वर्ग की संक्षिप्त अभिव्यक्ति अवधारणा के माध्यम से ही संभव है। यह संपूर्ण परिस्थिति या प्रक्रिया को केवल एक–दो शब्दों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझा सकती है।

(च) सामाजिक अनुसंधान में सर्वेक्षण के माध्यम से जो आधार सामग्री तैयार की जाती है, उस आधार सामग्री की जाँच, निरीक्षण या त्रुटियों के सुधार को ही सम्पादन कहते हैं।

(छ) प्राथमिक सामग्री प्राथमिक स्रोतों से प्राप्त होती है। अंत उसके सम्पादन में सरलता होती है जबकि दैतीयक सामग्री का सम्पादन करने के साथ–साथ अनुवीक्षण करना भी आवश्यक होता है। जिससे स्रोतों की विश्वसनीयता की जाँच–पड़ताल हो सके।

(ज) सम्पादन के समय मुख्यतः इन तीन बातों का निरीक्षण किया जाता है – पूर्णता, शुद्धता व समानता।

(झ) आँकड़ों का वर्गीकरण : सादृश्यताओं और समानताओं के अनुसार तथ्यों को समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को तकनीकी रूप में वर्गीकरण कहते हैं।

(ञ) वर्गीकरण के आधार :

- गुणात्मक
- परिमाणात्मक
- भौगोलिक
- सामयिक

(ट) वर्गीकरण के प्रकार :

- गुणात्मक वर्गीकरण
- संख्यात्मक वर्गीकरण

(ठ) संकेतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा तथ्यों को वर्गों में संगठित किया जाता है और प्रत्येक पद को जो जिस वर्ग में आता है, एक संख्या या संकेत प्रदान किया जाता है।

संकेतीकरण के स्तर :

- उत्तरदाताओं के स्तर पर संकेतीकरण
- साक्षात्कारकर्त्ताओं के स्तर पर संकेतीकरण
- कार्यालय के स्तर पर संकेतीकरण

(ड) सारिणीयन :

यह आँकड़ों को कुछ स्तम्भों और पंक्तियों में प्रस्तुत करने की एक व्यवस्थित क्रमबद्धता है, जिससे उन्हें अधिक सुगमता से समझा जा सके तथा कोई भी निहित तुलना अधिक शीघ्रता से की जा सके।

(ढ़) बनावट के आधार पर सारणियों के चार प्रकार होते हैं : –

- एक गुणीय सारिणीयन
- द्वि गुणीय सारिणीयन
- त्रिगुणी सारिणीयन
- बहुगुणीय सारिणीयन

(ण) सारिणीयन के लाभ / महत्त्व

- सरलता
- उद्देश्य की स्पष्टता
- तुलनात्मक अध्ययन

3.9 माध्य प्रवृत्तियों की माप : समानान्तर माध्य, माध्यांक, बहुलक माध्य व मानक विचलन

(Measures of Central Tendencies : Arithmetic Mean, Median, Mode, Mean Deviation and Standard Deviation)

संख्यात्मक तथ्यों का वर्गीकरण और सारणीयन करने से ही वे इतने सरल और स्पष्ट नहीं हो पाते कि उनसे शीघ्र ही कोई निष्कर्ष निकाला जा सके। इनकों अधिक सरल और स्पष्ट बनाने के लिए चित्रों एवं ग्राफों की सहायता ली जाती है, परन्तु इनसे निकाले गये निष्कर्ष भी विश्वसनीय होंगे अथवा नहीं यह अनुसन्धानकर्त्ता पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी कक्षा में 50 छात्र हैं और उनके कद संबंधी आँकड़े एकत्रित किये जाएं तो इन आँकड़ों को देखकर यह बताना कठिन होगा कि कक्षा के विद्यार्थी लम्बे

कद के हैं या छोटे कद के। इसी प्रकार यदि फर्म के श्रमिकों की आय की तुलना दूसरे फर्म के श्रमिकों की आय से करनी है तो केवल उनके द्वारा प्राप्त की जाने वाली आयों के आँकड़ों से ही किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता कि किस फर्म के श्रमिकों को अधिक आय मिल रही है। यह तुलना तभी सम्भव है जबकि दोनों फर्मों के श्रमिकों की आय से सम्बन्धित ऐसी संख्याएं प्राप्त हो सकें जोकि दोनों फर्मों के श्रमिकों की आय का अलग–अलग प्रतिनिधित्व कर सकें। इन प्रतिनिधित्व संख्याओं की तुलना करके यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किस फर्म के श्रमिकों को अधिक आय मिल रही है।

अतः वर्गीकृत और सारणीयन आँकड़ों को अधिक सरल संक्षिप्त और विश्वसनीय बनाने के लिए एक ऐसी संख्या ज्ञान कर ली जाए जोकि उस श्रेणी का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। जिससे आसानी से निष्कर्ष भी निकाला जा सके। ऐसी संख्या को ही सांख्यिकीय माध्य कहते हैं। ऐसी संख्या श्रेणी विस्तार के मध्य में होती हैं इसलिए इस माध्य को केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप (Measure of Central Tendency) भी कहते हैं।

एक ऐसी संख्या अथवा समंक जो कि पूरी श्रेणी के गुणों का प्रतिनिधित्व करे उसे केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि एक कक्षा में सांख्यिकीय पेपर में 100 में से 60 के आस पास नम्बर आते हैं तो 60 सांख्यिकीय माध्य कहलाएगा, इसी प्रकार यदि किन्हीं पाँच छात्रों के वजन के आँकड़े क्रमशः 43, 47, 45, 46, 44 हैं तो यह कहा जाएगा कि पाँचों छात्रों के कद एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु ध्यान से देखने पर 45 एक ऐसा अंक है जो कि पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए 45 को सांख्यिकी में माध्य अथवा केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप कहा जाएगा।

परिभाषाएँ – विभिन्न विद्वानों ने इसे निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है :

1. क्राक्सटन और काउडेन के अनुसार, "माध्य समंकों के विस्तार के अन्तर्गत स्थित एक ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग समंकमाला के सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है।"

2. एलहान्स के अनुसार, "यह स्पष्ट है कि एक ऐसी संख्या जिसका प्रयोग सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है, वह श्रेणी न तो न्यूनतम मूल्य रखती है और न ही उच्चतम मूल्य, बल्कि वह मूल्य तो इन दोनों सीमाओं के बीच का एक मूल्य होता है जहाँ श्रेणियों की अधिकांश इकाइयाँ एकत्र हो जाती हैं। ऐसे अंक (मूल्य) केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप अथवा माध्य कहलाते हैं।"

3. पी. वी. यंग के अनुसार "विशाल अंकों को संक्षिप्त करने के लिए आवृत्ति वितरण अत्यधिक उपयोगी है, लेकिन संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया सम्पूर्ण श्रेणी की विशेषताओं को एक अथवा अधिक–से–अधिक कुछ महत्त्वूपर्ण अंकों में संकुचित करने के द्वारा बहुत अधिक आगे बढ़ाई जा सकती है। ये अंक माध्य के रूप में जाने जाते हैं तथा वे एक चरण के विशिष्ट मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

4. ए. ई. वाघ ने 'Elements of Statistical Methods' में लिखा है कि "एक औसत मूल्यों के एक समूह में से चुना गया वह मूल्य है जो उसका किसी रूप में प्रतिनिधित्व करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि औसत सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला और केन्द्रीय मूल्य को प्रकट करने वाला एक अंक होता है जो कि उन श्रेणियों के न्यूनतम एवं अधिकतम 'मूल्य' के बीच की एक स्थिति में होता है। इस प्रकार औसत को देखकर ही सम्पूर्ण श्रेणियों की केन्द्रीय विशेषता या मूल्य का पता लगाना हमारे लिए आसान होता है। इस अर्थ में औसत विशाल संख्याओं का संक्षिप्तीकरण करने का एक साधन बन जाता है। और भी स्पष्ट रूप से 'औसत' समस्त श्रेणी का एक मूल्य (केन्द्रीय) प्रस्तुत करता है जिससे अनुसन्धानकर्त्ता के समक्ष उस समूह का मुख्य लक्षण स्पष्ट हो जाता है।

3.9.1 सांख्यिकीय माध्य की उपयोगिता एवं उद्देश्य (Utility and objectives of statistical average) : सांख्यिकीय माध्य की निम्नलिखित उपयोगिताएँ हैं –

1. संक्षिप्त एवं सरल रूप प्रस्तुत करना (Summarization and Precision) : माध्य का मुख्य कार्य सांख्यिकीय श्रेणी को संक्षिप्त एवं सरल रूप में प्रस्तुत करना है ताकि कोई भी व्यक्ति इनको समझ सके, इनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। उदाहरण के लिए यदि किसी देश के निवासियों की आय को व्यक्तिगत रूप में व्यक्त किया जाए तो आँकड़े जटिल और विशाल हो जाएंगे और इनसें कोई निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता। इसके विपरीत यदि औसत प्रति व्यक्ति आय के रूप में व्यक्त किया जाए तो समंक सरल, संक्षिप्त एवं समझने योग्य बन जाते हैं। आर. एल. बाऊले (R. L. Bowley) के अनुसार माध्यों के प्रयोग से जटिल समूहों और विशाल संख्याओं को कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों अथवा संख्याओं में प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. नीति निर्धारण में सहायक (Helpful in Policy Making) : माध्य का दूसरा उद्देश्य नीतियों का निर्धारण है। यदि देश की प्रगति के सम्बन्ध में कोई नीति निर्धारित करनी है तो देश

की औसत प्रति व्यक्ति आय द्वारा सहायता मिल सकती है। माध्यम द्वारा कीमत स्तर और उत्पादन स्तर आदि में होने वाले परिवर्तनों को भी ज्ञात किया जा सकता है और इस जानकारी के आधार पर नीतियों का निर्माण किया जा सकता है। बैंक अधिकारी भी धन रखने से सम्बन्धित नीतियों को बनाने के लिये यह देखता है कि औसत रूप में कितनी राशि एक दिन में बैंक से निकाली जा सकती है। देश की प्रगति से सम्बन्धित, कर्मचारियों का उपयुक्त महंगाई भत्ते से सम्बन्धित नीतियों को भी माध्य द्वारा आसानी से बनाया जा सकता है।

3. तुलनात्मक अध्ययन में सहायक (Helpful in Comparative Study) : माध्यों की सहायता से विभिन्न समूहों का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हो जाता है। माध्य समूह को संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है। जिससे कार्य सरल हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि दो फर्मों के श्रमिकों की आय के बारे में यह निष्कर्ष निकालना हो कि किस फर्म के श्रमिक को अधिक आय मिल रही है और किसको कम तो उनकी व्यक्तिगत आयों को तुलना करना चाहें तो यह व्यावहारिक नहीं होगा लेकिन यदि उनका माध्य निकाल लिया जाए तो यह तुलना आसान हो जाएगी। जैसे यदि एक फर्म के श्रमिकों का औसत 300 रुपये है और दूसरी फर्म के श्रमिकों का औसत 350 रुपये है तो यह कहा जा सकता है कि दूसरी फर्म के श्रमिकों को अधिक वेतन मिल रहा है।

4. समग्र का प्रतिनिधित्व करना (Representing whole) : माध्य का पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करना भी मुख्य उद्देश्य है। माध्य पूरे समूह की विशेषताओं को व्यक्त करता है। इसलिए इसे प्रतिनिधित्व संख्या भी कहते हैं।

5. सांख्यिकीय विश्लेषण का आधार (Basis of Statistical Analysis) : सांख्यिकीय विश्लेषण में भी माध्यों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। सहसम्बन्ध (Correlation) काल माला का विश्लेषण (Analysis of time series), सूचकांक (Index Number), अपकिरण (Dispersion), विषमता (Skewness) आदि के अध्ययन में माध्य आधार रूप में प्रयोग किए जाते हैं। अतः माध्य के बिना सांख्यिकीय विश्लेषण सम्भव नहीं है।

आदर्श माध्य के गुण

(Properties of an Ideal Average)

माध्य पूरे समूह का प्रतिनिधत्व करता है। ऐसे मूल्य में निम्न गुण होने चाहिये ताकि समंकों का ठीक रूप से प्रतिनिधित्व हो सके।

1. **समझने में सरल (Easy to Understand) :** सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग समंकों को संक्षिप्त तथा सरल बनाने के लिए किया जाता है। अतः माध्य ऐसा होना चाहिए जो सुगमता से समझा जा सके, अन्यथा इसका प्रयोग बहुत ही सीमित होगा।

2. **गणना में सुगम (Easy to Compute) :** माध्य की गणन–क्रिया सरल होनी चाहिये ताकि इसका प्रयोग व्यापक रूप से हो सके। यद्यपि इनका निर्धारण यथा–सम्भव सरल होना चाहिये तथापि विशेष परिस्थितियों में परिणामों की शुद्धता के लिये अधिक कठिन माध्यों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

3. **श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित (Based on all the Items of the Series) :** माध्य श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिये ताकि एक या अधिक मूल्यों में परिवर्तन होने से माध्य में भी परिवर्तन हो सके। यदि माध्य श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित नहीं है तो वह पूरे समूह का ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

4. **न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्यों पर अनुचित प्रभाव से बचाव (Should not be Unduly Affected by Extreme items) :** यद्यपि माध्य सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिये तथापि किसी विशेष मूल्य का माध्य पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये अन्यथा माध्य समंकों का सही प्रतिरूप व्यक्त नहीं करेगा।

5. **स्पष्ट व स्थिर (Rigidly defined) :** माध्य की परिभाषा स्पष्ट शब्दों में व्यक्त होनी चाहिये ताकि जो भी व्यक्ति दिये हुये समंको से माध्य निकाले वह एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे। इसलिये यह आवश्यक है कि माध्य गणितीय सूत्र के रूप में दिया जाये। यदि माध्य के परिगणन में व्यक्तिगत प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा तो फल भ्रामक तथा अशुद्ध होंगे।

6. **बीजगणितीय विवेचन सम्भव (Capable of Algebraic Treatment) :** एक अच्छे माध्य का बीजगणितीय विवेचन सम्भव होना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि दो कारखानों में मजदूरों की संख्या तथा औसत आय से सम्बन्धित समंक दिये गये हों तो दोनों कारखानों के मजदूरों की आय का सामूहिक माध्य निकालना सम्भव होना चाहिए।

7. **निदर्शन की भिन्नता का कम–से–कम प्रभाव (Least Effect of Fluctuations of Sampling) :** यदि एक ही समग्र में से उचित रीति द्वारा विभिन्न निदर्शन लेकर माध्य निकाले जायें तो उन माध्यों में बहुत अधिक अन्तर नहीं होना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि एक विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को दस भागों में बांटकर 10 निदर्शन लिये गए हैं तो उनके परिणामों में बहुत अधिक असमानता नहीं होनी चाहिये।

केन्द्रीय प्रवृत्ति या माध्य की सीमायें (Limitations of measure of Central Tendency or Average) : सांख्यिकीय माध्यों की सीमायें निम्नलिखित हैं –

1. **विचित्र संख्याएं (Ridiculous numbers) :** जब माध्य किसी अविभाज्य इकाइयों के किसी अंश या भिन्न के रूप में निश्चित होता है, तो बड़ा हास्यपद सा लगता है। उदाहरण के लिये 2½ व्यक्ति प्रति परिवार, 1½ पशु प्रति परिवार, 3½ डॉक्टर प्रतिशत व्यक्ति इत्यादि।

2. **व्यक्तिगत इकाइयों की अवहेलना (Neglegence of Individual Units) :** इस अध्ययन में इकाइयों के सामूहिक गुणों पर ही ध्यान दिया जाता है तथा उनके व्यक्तिगत या विशिष्ट गुणों पर ध्यान नहीं दिया जाता।

3. **दुरुपयोग (Misuse) :** यदि माध्य का चुनाव सहीं ढंग से नहीं किया गया तो इसका दुरुपयोग हो सकता है और इसके परिणाम प्रभावित हो सकते हैं।

4. **गणितीय त्रुटियां (Mathematical Error) :** माध्य ज्ञात करते समय गणितीय त्रुटियाँ रह जाने की आशंका रहती है। इन त्रुटियों के कारण माध्य गलत हो सकता है।

5. **निष्कर्षों की अविश्वसनीयता (Unfaithfulness of Conclusions) :** माध्य द्वारा सामान्यतः वास्तविक वस्तु–स्थिति का चित्रण सम्भव नहीं हो पाता बल्कि भ्रमपूर्ण परिणाम निकलते हैं। इससे प्राप्त निष्कर्ष विश्वसनीय नहीं होते हैं।

6. **अनिश्चित तुलनाएं (Uncertain comparisons) :** माध्य द्वारा विभिन्न अंक समूहों में जो तुलना की जाती है तथा इस आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनमें निश्चितता का अभाव रहता है जिससे कभी माध्य द्वारा तुलना से कभी–कभी सही निष्कर्ष निकालना आसान नहीं होता।

माध्यों की उपरोक्त सीमाओं के बावजूद इनका प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। सामाजिक एवं धार्मिक, राजकीय, तुलनात्मक, परिवर्तनों के क्षेत्रों, सह–सम्बन्ध का पता लगाने और विभिन्न तथ्यों के गणितीय विश्लेषण आदि में इनका उपयोग किया जाता है।

माध्यों के प्रकार

(Types of Mean)

माध्य के अनेक प्रकार वर्गीकृत किए गए हैं। एक माध्य को सामान्यतः निम्नांकित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :–

1. गणितीय माध्य (Mathematical Mean)

(A) अंकगणितीय माध्य (Mathematical Mean)

(B) गुणोत्तर माध्य (Arithmetic Average or Mean)

(C) हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)

(D) द्विघातीय माध्य (Quadratic Mean)

2. स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of Mean)

(A) मध्यका (Median)

(V) बहुलक या भूयिष्ठक (Mode)

3. व्यापारिक माध्य (Commercial Mean)

(A) चल या गतिशील माध्य (Moving Mean)

(B) प्रगतिशील माध्य (Progressive Mean)

(C) संग्रथित माध्य (Composite Mean)

उपरोक्त समस्त माध्यों को केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप कहा जाता है। इन्हें प्रथम दर्जे के माध्य (First Order Mean) भी कहा जाता है, लेकिन यहाँ हम तीन प्रकार के प्रमुख औसत का पृथक शीर्षकों में विस्तार से उल्लेख करेंगे –

1. अंकगणितीय माध्य (Mean),

2. बहुलक या भूयिष्ठक (Mode),

3. मध्यका (Median).

अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Mean) : इसे समानान्तर माध्य भी कहते हैं। यह वह माध्य होता है जो कि समूह में आने वाले सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। समानान्तर माध्य सबसे अधिक प्रचलित माध्य है क्योंकि यह सरल है। इसको माध्य भी कहते हैं। समानान्तर माध्य को समक्ष पदों के मूल्यों के योग को पदों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त किया

जाता है। अतः इसको निकालने के लिए समस्त पदों का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रतिनिधित्व और भी बढ़ जाता है।

परिभाषाएँ : विभिन्न विद्वानों ने इसे निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है –

घोष तथा चौधरी के अनुसार, "समान्तर माध्य जिसे कि समान्तर माध्य या केवल मध्यक भी कहते हैं यह वह परिणाम है जो कि किसी चल में पदों के मूल्यों के योग को उनकी संख्या से भाग देकर प्राप्त होता है।"

सेक्राइस्ट के शब्दों में, "किसी श्रेणी के पदों के मूल्यों के योग में उनकी संख्या से भाग देने से प्राप्त संख्या समान्तर माध्य है।"

किंग के शब्दों में, "किसी श्रेणी के पदों के मूल्यों के योग में उनकी संख्या का भाग देने से जो मूल्य प्राप्त होता है, उसे समान्तर माध्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

एफ. सी. मिल के अनुसार, "समान्तर माध्य एक वितरण के केन्द्र बिन्दु है।

क्राक्सटन और काउडेन के अनुसार, "किसी समंक श्रेणी का समान्तर माध्य उस श्रेणी के मूल्यों को जोड़कर उसकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।"

अतः उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य वास्तव में औसत निकालना है।

समान्तर माध्य की विशेषताएँ

(Characteristics of Mean)

1. समान्तर माध्य केन्द्रीय प्रवृत्ति के आकलन की एक सरलतम प्रणाली है। मदों की कुल संख्या का मदों के मूल्यों के कुल योग में भाग देने से माध्य प्राप्त हो जाता है।
2. इसमें प्रत्येक व्यक्तिगत इकाई के मूल्य को समान रूप से महत्त्व दिया जाता है।
3. इसमें मदों के मूल्यों को विशेष महत्त्व दिया जाता है।
4. समान्तर माध्य के आकलन में प्रत्येक मद की तथा उसके मूल्य की गणना केवल एक बार की जाती है।
5. कुल मदों की संख्या की समान्तर माध्य से गुणा करने पर मदों के मूल्यों के योग का आकलन किया जा सकता है।

सरल समान्तर माध्य के परिगणन की विधि

(Method of Calculating Simple Arithmetic Mean)

सरल समान्तर माध्य का निर्धारण अत्यन्त सुगम है। इसकी गणन–क्रिया की व्याख्या निम्न भागों में की गई है :

1. व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन (Calculation of Arithmetic Mean in Individual Observations)
2. खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन (Calculation of Arithmetic Mean in Discrete Series)
3. खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन (Calculation of Arithmetic Mean in Continuous Series)

व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन

(Calculation of Arithmetic Mean in Individual Series)

व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है :

(i) प्रत्यक्ष रीति (Direct Method),

(ii) लघु रीति (Short-cut Method).

(a) **प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) :** इस रीति के अन्तर्गत सब मदों के मानों को जोड़कर मदों की संख्या से भाग दे दिया जाता है। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे समान्तर माध्य कहते हैं। सूत्र से रूप में :

$$\bar{X} = \frac{X_1+X_2+X_3+X_4+\cdots X^n}{N}$$

X_1, X_2 आदि श्रेणी के विभिन्न मान (Different Values of the Variable);

N = मदों की संख्या (Number of Observations)

संक्षिप्त रूप में,

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$$

$\overline{X}$ = समान्तर माध्य (Arithmetic Means), N = मदों की संख्या (Number of Observation).

ΣX = चल X के विभिन्न मानों का योग (Sum of the different values of the variable X)

उदाहरण – एक कक्षा में 10 विद्यार्थी हैं। सांख्यिकी की एक मासिक परीक्षा में उनके अंक इस प्रकार हैं :

रोल नम्बर : 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10

अंक : 90, 65, 45, 58, 62, 72, 70, 40, 25, 33

समान्तर माध्य ज्ञात कीजिये।

हल : समान्तर माध्य का परिगणन प्रत्यक्ष रीति द्वारा

रोल नं. (Roll No)	अंक (X)
1	90
2	65
3	45
4	58
5	62
6	72
7	70
8	40
9	25
10	33
N = 10	$\Sigma X = 560$

$$\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{560}{10}$$ अर्थात् औसत अंक = 56

(b) संक्षिप्त विधि (Short-cut Method) : लघु रीति से समान्तर माध्य की गणना इस प्रकार से ही जाएगी।

(i) सबसे पहले दिए गए मूल्यों में से या, बाहर से किसी भी संख्या को कल्पित माध्य माना जाता है।

(ii) प्रत्येक पद–मूल में से कल्पित माध्य (A) को घटाकर विचलन ज्ञात किया जाता है।

(iii) उपर्युक्त विचलनों का योग कर लिया जाता है।

सूत्र $\overline{X} = A + \frac{\Sigma d}{N}$ A = कल्पित माध्य

Σd = विचलनों का बीजगणितीय योग

N = पदों की संख्या

उदाहरण

छात्रों के नाम	प्राप्तांक	विचलन (d) A= 25 (X-A)
A	15	-10
B	38	+13
C	13	-12
D	95	+70
E	65	+40
F	62	+37
G	18	-7
H	48	+23
I	53	+28
J	71	+26
N = 10		Σd = 208

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma d}{N} = 25 + \frac{208}{10} = 25 + 20.8 = 45.8$$

विच्छिन्न श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन

(Calculation of Arithmetic Mean in Discrete Series)

उपर्युक्त दोनों विधियों द्वारा विच्छिन्न श्रेणी में भी समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु विच्छिन्न श्रेणी में आवृत्तियाँ होती है इसलिए सूत्र भिन्न हैं। जब प्रत्यक्ष विधि का प्रयोग किया जाता है जो सूत्र इस प्रकार होगा :

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fX}{N}$$

ΣfX = चल तथा आवृत्तियों का गुणाओं का योग (Sum of the products of frequency and the variable), N = आवृत्तियों का योग (Number of observations or Σf)

विधि : 1. चल के प्रत्येक मूल्य को उसकी आवृत्ति से गुणा किजिए और सभी गुणनफलों को जोड़ लीजिये।

2. प्राप्त गुणनफल को आवृत्तियों के कुल योग से भाग दीजिये।

उदाहरण : एक कक्षा के 60 विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त निम्न अंकों से औसत अंक निकालिये :

अंक	विद्यार्थियों की संख्या	अंक	विद्यार्थियों की संख्या
20	8	50	10
30	12	60	6
40	20	70	4

हल : अंकों को X से तथा विद्यार्थियों की संख्या को f से प्रदर्शित कीजिए :

समान्तर माध्य का परिगणन प्रत्यक्ष रीति द्वारा

अंक X	विद्यार्थियों की संख्या f	fX
20	8	160
30	12	360
40	20	800
50	10	500
60	6	360
70	4	280
	N= 60	ΣfX = 2,460

$\overline{X} = \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{2.460}{60}$ = 41 अंक

लघु विधि (Short-cut method) जब लघु विधि का प्रयोग किया जाता है तो सूत्र इस प्रकार होगा :

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma d}{N}$$

विधि :

1. एक कल्पित समान्तर माध्य लीजिये।
2. चल मूल्यों को कल्पित समान्तर माध्य से हटाकर विचलन (deviations) निकालिये।
3. प्राप्त विचलनों को उनकी आवृत्तियों से गुणा कीजिये और जोड़ लीजिये अर्थात्, Σfd निकालिये।
4. इस प्रकार प्राप्त योग को कुल आवृत्ति से विभाजित कीजिये।
5. भागफल यदि धन में आये तो कल्पित समान्तर माध्य में जोड़ दीजिये और ऋण में आये तो कल्पित समान्तर माध्य में से घटा दिजिये। इस प्रकार प्राप्त संख्या समान्तर माध्य होगी।

उपर्युक्त प्रश्न को लघु रीति द्वारा हल किया गया है।

समान्तर माध्य का परिगणन लघु विधि द्वारा

अंक X	विद्यार्थियों की संख्या f	(X- 40) d	fd
20	8	- 20	- 160
30	12	- 10	- 120
40	20	0	0
50	10	+10	+100
60	6	+20	+120
70	4	+30	+120
	N = 60	Σfd = 60	

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma fd}{N} = 40 + \frac{60}{60} = 40 + 1 = 41$$

अखण्डित (सतत) श्रेणी का माध्य निकालना

(Calculation of Mean in Continuous Series)

यदि वर्गान्तरों (Class Intervals) : की आवृत्ति आ बारम्बारता (Frequency) दी हुई है तो भी माध्य निकालने की दो विधियाँ हैं एक तो प्रत्यक्ष विधि और दूसरी संक्षिप्त या लघु विधि। इन दोनों विधियों के सम्बन्ध में यहाँ अलग–अलग विवेचना की जाती है।

(क) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) : प्रत्यक्ष विधि द्वारा अखण्डित श्रेणियों का माध्य बिल्कुल उसी तरह निकाला जाता है जैसे प्रत्यक्ष विधि द्वारा खण्डित श्रेणियों का माध्य निकाला जाता है। केवल इसमें एक चरण अधिक इस रूप में हो जाता है कि इसमें वर्गान्तरों (Class Intervals) का मध्य–मूल्य या मध्यमान निकाल लिया जाता है और इस प्रकार अखण्डित श्रेणी खण्डित श्रेणी में बदल जाती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष विधि को हम निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं –

(क) प्रत्येक वर्गान्तर का मध्यमान मालूम कीजिए। यह मध्यमान किसी वर्गान्तर की उच्चतर सीमा (Upper Limit) तथा निम्नतर सीमा (Lower Limit) के योग का आधा होता है। इस प्रकार यदि कोई वर्गान्तर सीमा (Class Interval) 10 - 15 है तो इसका मध्यमान $\frac{10+15}{2}$ = 125 होगा।

(ख) प्रत्येक वर्गान्तर की आवृत्ति (f) से उसी वर्गान्तर के मध्यमान (x) को गुणा कीजिए और उनका गुणनफल (fx) मालूम कीजिए।

(ग) तत्पश्चात् उपरोक्त गुणनफलों का योग (Σ fx) तथा आवृत्तियों का योग (Σ *fx* अर्थात् n) ज्ञात कीजिए।

(घ) गुणनफलों के योग (Σ fx) का आवृत्तियों के योग (n) से भाग देकर लब्धि मालूम कीजिए।

(ङ) यही लब्धि माध्य होगा।

अतः संक्षिप्त विधि के सूत्र को हम इस प्रकार लिख सकते हैं –

माध्य $M = \frac{\Sigma fx}{n}$

यदि संकेताक्षर n के स्थान पर Σ f का प्रयोग किया जाये तो माध्य का सूत्र इस प्रकार होगा।

$$M = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

उपरोक्त दो सूत्रों में से किसी भी सूत्र की सहायता से माध्य की गणना की जा सकती है। उत्तर या परिणाम एक ही होगा। उदाहरणः निम्न सारणी में भारत इलेक्ट्रोनिक्स लि॰ के 65 कर्मचारियों की साप्ताहिक मजदूरी का आवृत्ति बंटन दिया हुआ है। प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य की गणना कीजिये।

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या
50 - 60	8
60 - 70	10
70 - 80	16
80 - 90	14
90 - 100	10
100 -110	5
110 - 120	22

हलः प्रत्यक्ष विधि (जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है) द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये हमें सर्वप्रथम मध्यमान (x) ज्ञात करने उसी आधार पर fx और फिर Σ fx एवं Σ *f* अर्थात् n मालूम करना होगा। यह कार्य उपरोक्त सारणी को इस प्रकार प्रस्तुत करने का सम्भव होगा –

सारणी नं॰ 5

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (*f*)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (*x*)	मजदूरी (मध्यमान) और कर्मचारियों की संख्या का गुणनफल (*fx*)
50 - 60	8	$\left(\frac{50+60}{2}\right) = 55$	(8 × 55) = 440
60 - 70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right) = 65$	(10 × 65) = 650
70 - 80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right) = 75$	(16 × 75) = 1200
80 - 90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right) = 85$	(14 × 85) = 1190
90 - 100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right) = 95$	(10 × 95) = 950

100 - 110	5	$\left(\frac{100+110}{2}\right)$ = 105	(5 × 105) = 525
110 - 120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right)$ = 115	(2 × 115) = 230
योग	Σ f अर्थात् *n* = 65		fx = 5185

प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य का (M) सूत्र –

$$M = \frac{\Sigma fx}{n} \text{ अथवा } \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

$$= \frac{5185}{65}\ 79.77$$

= अतः औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपये

(ब) संक्षिप्त विधि (Short-cut Method) : यह संक्षिप्त विधि भी खण्डित श्रेणियों का माध्य निकालने के लिये प्रयोग की जाने वाली संक्षिप्त विधि के ही समान है, केवल इसमें भी वर्गान्तरों का मध्यमान निकाल लिया जाता है। अतः इस संक्षिप्त विधि हो हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :

(क) प्रत्येक वर्गान्तर (Class Interval) का मध्यमान (x) ज्ञात कीजिये। यह मध्यमान किसी वर्गान्तर की उच्चतर सीमा तथा निम्नतर सीमा के योग का आधा होगा।

(ख) किसी वर्गान्तर के मध्यमान को कल्पित माध्य (A) मान लीजिये। पर ऐसा करते समय दो बातों का ध्यान रखिए – प्रथम तो यह कि वह कल्पित माध्य उस वर्गान्तर का मध्यमान हो जिसकी बारम्बारता अर्थात् आवृति (frequency) सब से अधिक हो और द्वितीय वह कल्पित माध्य उस वर्गान्तर का मध्यमान हो जो दिए हुए वर्गान्तरों के लगभग मध्य में हों।

(ग) प्रत्येक वर्गान्तर (Class Interval) के मध्यमान (x) तथा कल्पिन माध्य (A) का अन्तर (x - A) ज्ञात कीजिये अर्थात् कल्पित माध्य से वर्गान्तर के मध्यमानों का विचलन (d) मालूम करना होगा।

(घ) तत्पश्चात् प्रत्येक आवृत्ति (f) से उससे सम्बन्धित विचलन (d) को गुणा करके सभी गुणनफलों (fd) के योग (Σ fd) को मालूम कीजिये।

(ङ) इस प्रकार प्राप्त योग (Σ fd) को आवृत्तियों के योग (Σ f अर्थात् n) से भाग देकर लब्धि ज्ञात कीजिये। इस लब्धि को कल्पित माध्य (A) के साथ जोड़ दीजिये।

(च) यही जोड़ समान्तर माध्य होगा।

इस विधि को यदि एक सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जाए तो वह इस प्रकार होगा –

$M = A + \frac{\Sigma fd}{N}$,   अथवा $A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$

उदाहरणः उदाहरण में दिए गए प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कीजिये।

हलः प्रस्तुत प्रश्न को ऊपर बतायी गयी विधि के अनुसार हल करने के लिये हमें उदाहरण 5 की सारणी को इस रूप में प्रस्तुत करना होगा –

सारणी नं॰ 7

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (*f*)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (*x*)	कल्पित माध्य (A = 75) से मध्यमानों (*x*) का विचलन (*x = A = d*)	कर्मचारियों विचलन तथा की संख्या (आवृत्ति) (*fd*)
50 - 60	8	$\left(\frac{55+60}{2}\right)$ = 55	(55 - 75) = -20	8 × -20 = -160
60 - 70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right)$ =65	(65 - 75) = -10	10 × -10 = -100
70 - 80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right)$ = 75	(75 - 75) = -0	16 × 0 = 0
80 - 90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right)$ = 85	(85 - 75) = +10	14 × 10 = +140
90 - 100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right)$ = 95	(90 - 75) = +20	10 × 20 = +200
100 - 110	15	$\left(\frac{100+110}{2}\right)$ = 105	(105 - 75) = +30	5 × 30 = +150
110 - 120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right)$ = 115	(115 - 75) = +40	2 × 40 = +80
	f अर्थात् *n* = 65			*fd* = (+570 260) = +314

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य का (M) सूत्र –

$M = A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$ अथवा $A + \frac{\Sigma fd}{n}$

यहाँ A = 75 (कल्पित माध्य)

Σ f d = + 310

Σf या n = 65 (कर्मचारियों की कुल संख्या)

$\therefore M = 75 + \frac{310}{65}$

$= 75 + 4.77$

$= 79.77$

अतः औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपये

समान्तर माध्य के गुण (Merits of Mean) : समान्तर माध्य के गुण निम्नलिखित हैं :

1. समानान्तर माध्य को समझना सबसे सरल है।
2. समानान्तर माध्य की गणना कई माध्यों से सरल है।
3. समानान्तर माध्य श्रेणी में आए सभी पदों पर आधारित होता है।
4. समानान्तर माध्य का बीजगणितीय विवेचन सम्भव है।
5. समानान्तर माध्य पर निदर्शन के परिवर्तन का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
6. समानान्तर माध्य स्पष्टतः परिभाषित होता है और इसीलिए इसमें कोई सन्देह नहीं होता।
7. समानान्तर माध्य निकालने के लिए विभिन्न श्रेणियों के अंकों को किसी व्यस्थित क्रम में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अंक जैसे भी दिए होते हैं उसी रूप में उनका प्रयोग करके माध्य निकाला जा सकता है।
8. समानान्तर माध्य निकालने के लिए श्रेणियों के सभी पदों के बारे में जानकारी आवश्यक नहीं है। यदि अंकों का अथवा पद के परिणामों का कुल योग एवं उनकी संख्या मालूम है तो उनके द्वारा समानान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।
9. समानान्तर माध्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।
10. समानान्तर माध्य को विशेष रूप से विभिन्न गतियों का औसत निकालने के लिए प्रयोग किया जाता है।

दोष (Demerits) : समानान्तर माध्य के दोष निम्नलिखित हैं –

1. समानान्तर माध्य गतिशील और प्रतिगामी प्रवृत्तियों अर्थात् बढ़ती हुई प्रवृत्तियों और घटती हुई प्रवृत्तियों की ओर संकेत नहीं करता। कभी–कभी इससे भ्रामक परिणाम प्राप्त होते हैं।
2. समानान्तर माध्य की गणना गुण सम्बन्धी आँकड़ों के लिए नहीं की जा सकती।

3. समानान्तर माध्य निकालने के लिए यह आवश्यक है कि पदमाला के समस्त पदों के मापों का योग अथवा अलग–अलग माप मालूम हो यदि थोड़े से पद छूट जाएँ तो माध्य ज्ञात नहीं किया जा सकता।

4. यह आवश्यक नहीं है कि किसी श्रेणी का समान्तर माध्य श्रेणी भी हो। उदाहरण के लिए 12, 14, 16, 18, 20, 24 का समानान्तर माध्य 17.33 है जो कि इस श्रेणी में नहीं हैं।

5. समानान्तर माध्य न्यूनतम और अधिकतम पदों से अनुचित रूप से प्रभावित हो जाता है।

6. यदि पदों की संख्या अधिक है तो इसे निरीक्षण मार्ग से ही ज्ञात नहीं किया जा सकता। बड़ी संख्या में बड़े–बड़े जोड़, गुणा, भाग आदि करने की आवश्यकता होती है जो कि साधारण व्यक्ति के लिए सरल नहीं होता है।

3.9.2 मध्यका

(Median)

मध्यका (Median) एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है। ऐसे माध्य जो कि किसी समंक–श्रेणी के अन्तर्गत किसी विशेष स्थिति को दर्शाते हैं या जिन्हें किसी विशिष्ट स्थिति पर निर्धारित किया जाता है, स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of Position) कहा जाता है। मध्यका किसी समंक श्रेणी (Statistical Series) के "मध्य वाले पद" के मूल्य को कहते हैं। जबकि किसी समंक श्रेणी के मूल्यों को आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इस प्रकार मध्यका समंक श्रेणी को दो बराबर भागों से विभाजित करती है। मध्यका के एक भाग में सभी पद मध्यका से छोटे एवं दूसरे भाग में सभी पद मध्यका से बड़े होंगे। उदाहरण के लिए, यदि एक परिवार के पाँच भाइयों की लम्बाई क्रमशः 48", 52", 63", एवं 69" है तो 63" लम्बाई मध्यका कही जाएगी। 63" से कम दो भाइयों की लम्बाई है, एवं 63" से अधिक भी दो भाइयों की लम्बाई है। इस प्रकार आरोही अथवा अवरोही, किसी क्रम की श्रृंखला में समस्त श्रेणी अथवा पदों के अर्द्ध बिन्दु पर निर्धारित पद का मूल्य ही मध्यका मानी जाएगी। हमें ध्यान रखना चाहिए कि मध्य पद स्वयं ही मध्यका नहीं होती, बल्कि उस पद का माप अथवा मूल्य मध्यका मानी जाती है।

माध्यिका/मध्यांक का अर्थ व परिभाषा

(Meaning and Definition of Median)

मध्यका को परिभाषित करते हुए कोनोर (Connor) ने 'Statistics in Theory and Practice' में लिखा है कि "मध्यका समंक श्रेणी का वह पद–मूल्य है जो समूह को दो समान भागों में इस प्रकार विभाजित करता है कि एक भाग में समस्त मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग में समस्त मूल्य मध्यका से कम होते हैं।

चतुर्वेदी (Chaturvedi) के अनुसार, "यदि एक श्रेणी (Series) के पदों को उनके परिणामों के आधार पर आरोही अथवा अवरोही क्रमों से लगाया जाए तो बिल्कुल बीच वाली राशि के मान या माप को माध्यिका या मध्यांक कहते हैं।"

घोष तथा चौधरी (Ghosh and Chowdhury) के अनुसार, "मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो कि श्रेणी को दो बराबर भागों में बांटता है जिसमें से एक भाग में मध्यांक से कम और दूसरे भाग में मध्यांक से अधिक मूल्य होते हैं।"

एल्हांस (D.N. Elhance) के शब्दों में, "जब एक समंक माला आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित होती है तो इस समंक माला को दो बराबर भागों में विभाजित करने वाले मध्य मूल्य को हम मध्यांक कहते हैं।"

माध्यिका की विशेषताएँ (Characteristics of Median) :

1. माध्यिका का निर्धारण करने के लिए पदों को आरोही (बढ़ते हुए) या अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।

2. माध्यिका समंकमाला के केन्द्र में स्थित पद का मूल्य होता है।

3. माध्यिका सम्पूर्ण समंक–श्रेणी को दो बराबर–बराबर भागों में बाँटती है तथा विभाजित करती है।

4. माध्यिका को पद–मूल्यों की क्रमिक वृद्धि पर आधारित किया जाता है। जिसके एक ओर मूल्य कम तथा दूसरी ओर अधिक मूल्य होते हैं।

मध्यांक गणना करने की विधियाँ (Methods of Calculation Median) : सबसे पहले मदों को आरोही या अवरोही क्रम में अनुविन्यासित करते हैं।

यदि N विषय संख्या में है M = size of $\left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ item. or

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वें पद का मान}$$

यदि N सम संख्या में है तो – $M = \frac{1}{2}\left[\frac{N}{2} \text{ वे पद का मान} \left(\frac{N}{2}+1\right) \text{ वे पद का मान}\right]$

मध्यांक की गणना भिन्न–भिन्न सारणियों में भिन्न प्रकार से होती है।

I. व्यक्तिगत श्रेणी (Individual Series) : इसमें मध्यांक ज्ञात करने के लिए, हमें सर्वप्रथम वह निश्चित करना पड़ता है कि पदों को आरोही क्रम में या अवरोही क्रम में से किस में रखा जाये। उसके बाद उक्त सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$$\text{मध्यका संख्या} = \frac{N+1}{2}$$

उदाहरण : निम्न समंकों से मध्यांक करो – 520, 20, 340, 190, 35, 800, 1210, 50 व 80

पदों को आरोही क्रम में रखने पर :

क्रम संख्या	पद
1	20
2	35
3	50
4	80
5	190
6	340
7	520
8	800
9	1210

$$\text{मध्यांक} = \frac{N+1}{2} \text{ वां पद} = \frac{9+1}{2} = 5$$

यहाँ 5 वाँ पद 190 है अतः यही मध्यिका है।

II. विच्छिन्न श्रेणी (Discrete Series) : विच्छिन्न श्रेणी में मध्यिका ज्ञात करने की वही रीति है जो व्यक्तिगत श्रेणी में थी। सर्वप्रथम यह जरूरी है कि वह आरोही या अवरोही क्रम में रखे, यहाँ पदों की संचयी आवृत्ति निकालनी पड़ती है, जिससे मध्यिका की क्रम संख्या ज्ञात हो जाती है। इसके पश्चात् सूत्र का प्रयोग करते हैं। जिस संचयी आवृत्ति में यह क्रम संख्या प्रथम बार सम्मिलित होते हैं, उस संचय आवृत्ति के सामने का मूल्य ही मध्यांक होता है।

उदाहरण : निम्न सारणी की मध्यिका ज्ञात कीजिए –

पद आकार	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
आवृत्ति	2	3	8	10	12	16	10	8	6	5	6	4	3	1

हल : यहाँ पद आरोही क्रम में पहले ही अनुविन्यसित है।

पद का आकार	आवृति	संचयी आवृति
2	2	2
3	3	5
4	8	13
5	10	23
6	12	35
7	16	51
8	10	61
9	8	69
10	6	75
11	5	80
12	6	86
13	4	90
14	3	95
15	1	94

मध्यांक M = $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ वाँ पद = $\left(\frac{94+1}{2}\right)$ वाँ पद = $\frac{95}{2}$ 47.5 वाँ पद

यह संचयी आवृत्ति 51 में आता है अतः उसके सामने वाला पद आकार M = 7 मध्यिका है।

III. अखण्डित श्रेणी (Continuous Series) : अखण्डित श्रेणी का मध्यांक मालूम करने के लिए विभिन्न पदों की आवृत्तियों को संचयी आवृत्तियों के रूप में बदल लेते हैं, इसके पश्चात् $\frac{n}{2}$ के सूत्र द्वारा माध्यिका को ज्ञात कर लिया जाता है। यह पद मूल्य के जिस वर्ग में मध्यांक स्थित होता है, उसमें निम्न सूत्र के द्वारा वास्तविक मध्यांक को ज्ञात कर लिया जाता है।

सूत्र (Formula) : $Me = L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1}(m - c)$

Significance of the Formula .

(सूत्र का महत्त्व)

Me = मध्यांक (Median)

L_1 = माध्यांक वर्ग की निम्न सीमा (Lower Limit of Median Class)

L_2 = मध्यांक वर्ग की उच्च सीमा (Upper Limit of Median Class)

F_1 = मध्यांक वर्ग की आवृत्ति (Frequency of Median Class)

$m = \frac{n}{2}$ अर्थात कुल आवृत्तियों की आधी संख्या

(Median number i.e. ($\frac{n}{2}$th item)

C = मध्यांक वर्ग से पहले के वर्ग की संचयी आवृत्ति (Cumulative Frequency of the group just preceding the median class).

उदाहरण : निम्नलिखित सारणी का मध्यांक ज्ञात कीजिए।

भूमि :	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25	25-30	30-35	35-40	40-45
परिवार :	29	195	241	117	52	10	6	3	2

भूमि	परिवार (f)	संचयी आवृत्ति (cf)
0-5	29	29
5-10	195	224
10-15	241	465
15-20	117	582
20-25	52	634
25-30	10	644
30-35	6	650
35-40	3	653
40-45	2	655

मध्यांक $(M) = \frac{n}{2} = \frac{655}{2}$

= 327.5वें पद का मान

उपर्युक्त सारणी में 10-15 वर्गान्तर में मध्यमान स्थित है, इस वर्गान्तर में निम्नलिखित सूत्र के द्वारा मध्यांक की गणना की जा सकती है :

$$Me = L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1} (m - c)$$

$$\therefore\ Me = 10 + \frac{15-10}{241} (327.5 - 224)$$

$$= 10 + \frac{5}{241} \times = 103.5$$

$$= 10 + \frac{517.5}{241}$$

10 + 2.1

= 12.1

$\therefore$ Median = 12.1 उत्तर

Example: Calculate the Median form the following table :

Age :	1-3	4-12	6-14	8-14	10-16	12-16	14-16
No. of Persons :	6	22	45	75	25	21	16

Solution:

Age	Frequency	Cum. Frequency
1-5	6	6
4-12	22	28
6-14	45	73
8-14	75	148
10-16	25	173
12-16	21	173
14-16	16	210

Median = $\frac{n}{2} = \frac{210}{2}$ = 105th

Me = $L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1}(m - c)$

$= 8 + \frac{14-8}{75}(105 - 73)$

$= 8 + \frac{6}{75}(32)$

$= 8 + \frac{192}{75}$

= 8 + 2.5 = 10.5

Median = 10.5 उत्तर

मध्यांक के गुण एवं दोष

(Merits and Demerits of Median)

मध्यांक के कुछ गुण निम्नलिखित हैं :

(1) मध्यांक बहुत सरलता से मालूम किया जा सकता है; और साथ ही इसे समझना भी आसान है। पदों को एक क्रम से लगा देने पर मध्यांक की स्थिति का ज्ञान आसानी से हो सकता है क्योंकि इसकी स्थिति बीचों बीच में होती है।

(2) मध्यांक दिये हुए पदों का ही एक अंश होता है। इसलिये वह सम्पूर्ण समूहों का उचित प्रतिनिधित्व करता है। इसका मान सभी पदों पर आधारित होता है।

(3) यदि पदों की संख्या मालूम हो तो बिना समस्त पदों का परिणाम जाने ही माध्यांक ज्ञात किया जा सकता है। माध्यांक मालूम करने के लिये अन्तिम पदों की आवृत्तियों को जानना भी आवश्यक नहीं है, केवल पदों की संख्या मालूम होनी चाहिये।

(4) समान्तर माध्य की भाँति मध्यांक पर किसी बहुत बड़ी संख्या या छोटी संख्या का अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता है।

(5) कुछ अधिक पदों को जोड़ देने पर भी मध्यांक का आकार अधिक बदल नहीं जाता है।

(6) मध्यांक उस समय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है जबकि अध्ययन का विषय या तथ्य की प्रकृति ऐसी हो जिसे कि निश्चित इकाइयों में मापा नहीं जाता है; जैसे कि बच्चे की बुद्धि आदि।

दोष (Demerits of Median) : मध्यांक के दोष निम्नलिखित हैं :

(1) मध्यांक का मान श्रेणी के सभी पदों पर आधारित नहीं होता।

(2) मध्यांक का बीजगणितीय सूत्र विवेचन योग्य नहीं है।

(3) मध्यांक का मान सिर्फ तभी लगाया जा सकता है जबकि श्रेणी के सभी पद आरोही अथवा अवरोही क्रम में हों।

(4) यदि पद बहुत छोटे या बड़े हो तो मध्यांक को निकालना कठिन होता है।

(5) यदि वर्ग–अन्तराल समान न हो तो मध्यिका का मान समूह को सही प्रदर्शित नहीं करता।

(6) यदि किसी समूह में बहुत से मद होते हैं तो इनकी प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न होती है।

3.9.3 भूयिष्ठक या बहुलक (Mode)

किसी समंक श्रेणी में जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, उसी को बहुलक या भूयिष्ठक (Mode) कहा जाता है। इसी प्रकार भूयिष्ठक समंक श्रेणी का सर्वाधिक सामान्य मूल्य होता है। यह समंक श्रेणी या पदमाला का ऐसा मूल्य या परिणाम है, जो दिये हुए आँकड़ों में सबसे अधिक बार आता है। अंग्रेजी का 'Mod' शब्द फ्रेंच भाषा के 'La Mode' से बना है जिसका आशय 'Most Fashionable' (सर्वाधिक फैशन या रिवाज) है। औसत व्यक्ति अमूक वस्त्र पहनता है, औसत स्त्री अमुक सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करती है, औसत व्यक्ति अमुक नाप के जूते पहनता है आदि कथनों में औसत शब्द का

आशय अधिकाँश से है। यह "अधिकाँश" ज्ञात करने की विधि ही भूयिष्ठक या बहुलक है। बहुलक "सर्वाधिक घनत्व की स्थिति" (Position of greatest density) "मूल्यों के अधिकतम केन्द्रीयकरण का बिन्दु" (Point of highest concentration of value) "सर्वाधिक आने वाले पद का मूल्य" (Most Frequency occuring value) होता है। बहुलक को अनेक विद्वानों एवं साँख्यिकी शास्त्रियों ने परिभाषित किया है।

बहुलक के निर्माता जिजेक (Zizek) के अनुसार–"बहुलक वह मूल्य है जो पदों की श्रेणी अथवा समूह में सबसे अधिक बार आता है, तथा जिसके चारों ओर सबसे अधिक घनत्व में पदों का विवरण रहता है।"

क्राक्सटन एवं काउडन (Croxton and Cowden) के अनुसार, "एक वितरण का बहुलक वह मूल्य है, जिसके निकट श्रेणी की अधिक से अधिक इकाइयाँ केन्द्रित होती हैं। उसे मूल्यों की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी माना जा सकता है।"

केने एवं कीपिंग (Kenny and Keaping) के अनुसार, "वितरण में सर्वाधिक आने वाले पद का मूल्य बहुलक या भूयिष्ठक कहलाता है"

गिलफोर्ड (Gilford) ने लिखा है, "माप के पैमाने पर बहुलक वह बिन्दु है, जहाँ पर वितरण मे सबसे अधिक आवृत्तियाँ केन्द्रित होती हैं।"

एलहान्स (Elhance) के शब्दों में, "बहुलांक एक समंक माला का वह पद है जो सबसे अधिक बार आता है। यह श्रेणी के बहुल मूल्य का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधी है, एक ऐसा प्रतिनिधी जिसे वास्तविक फैशन अथवा प्रचलन कहा जा सकता है।

बहुलक की विशेषताएँ : बहुलक की विशेषताएँ निम्न हैं :

1. बहुलक का मूल्य प्रायः अधिकतम आवृत्तियों से निर्धारित होता है, इकाइयों से नहीं।
2. बहुलक का मूल्य केवल एक सम्भावित मूल्य होता है जो हमेशा अस्थिर रहता है और वर्गीकरण की प्रक्रियाओं से प्रभाविक होता है।
3. बहुलक का मूल्य सबसे अधिक सम्भावित मूल्य होता है जिसके आस–पास सबसे अधिक आवृत्तियाँ केन्द्रित होती हैं।
4. किसी भी एक विभाजन में दो या दो से अधिक बहुलक हो सकते हैं।
5. बहुलक का मूल्य बहुलकता की मात्रा को प्रदर्शित करता है।
6. बहुलक का मूल्य ही केवल ऐसा मूल्य है जो गुणात्मक तथ्यों के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है।

7. बहुलक का मूल्य के लिए तथ्य को उनके आकारानुसार क्रमबद्ध करना पड़ता है।

8. बहुलक के मूल्यों को बीजगणितीय सिद्धांतों द्वारा हल नहीं किया जा सकता।

9. बहुलक का मूल्य खुले वर्गान्तरों (Open and Classes) मे दिए गए तथ्यों से भी निकाला जा सकता है।

बहुलक की गणना

(Calculation of Mode)

बहुलक अधिकतम आवृत्ति का मूल्य होने के कारण उसे निरीक्षण द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। बहुलक के गणना की विधि आवृत्ति के बंटनो पर निर्भर करती है। जो निम्नलिखित प्रकार है :

1. **व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण (Location of Mode in Individual Series) :** व्यक्तिगत श्रेणी मे बहुलक का निर्धारण निम्नलिखित तीन प्रणालियों के द्वारा किया जा सकता है :

(i) निरीक्षण द्वारा,

(ii) खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करके, तथा

(iii) माध्यिका एवं समान्तर माध्य के आधार पर।

(i) निरीक्षण द्वारा बहुलक का निर्धारण : व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने के लिए पद की आवृत्ति का निरीक्षण किया जाता है। जिस पद की आवृत्ति सर्वाधिक होती है वही बहुलक होता है। अगर पद–मूल्य क्रम नहीं होते हैं तो पहले मूल्यों को क्रम से व्यवस्थित किया जाता है उससे निरीक्षण क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित हो जाता है। उदाहरणः एक कक्षा में 20 छात्रों के प्राप्तांक निम्नलिखित हैं, बहुलक ज्ञात कीजिए :

4, 6, 5, 8, 5, 4, 4, 6, 7, 2, 3, 8, 4, 7, 4, 2, 5, 4, 6, 3,

बहुलक का निर्धारण करने के लिए पद–मूल्यों को एक क्रम में निम्नलिखित प्रकार से पुनः व्यवस्थित करना होगा :

2, 2, 3, 3, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 5, 5, 5, 6, 6, 6, 7, 7, 8, 8

पद मूल्यों का क्रम व्यवस्थित करने पर स्पष्ट होता है कि अंग 4 की आवृत्ति सर्वाधिक है। यह छः बार आया है। अतः कक्षा में 20 छात्रों के प्राप्तांक का बहुलक अंक 4 होगा।

(ii) खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करके बहुलक का निर्धारण : जब व्यक्तिगत श्रेणी के अनेक मूल्य दो या दो से अधिक बार पाए जाते हैं तो उन्हें आरोही क्रम के अनुसार व्यवस्थित करके उनके समाने उनकी आवृत्ति लिख दी जाती है। इसके बाद निरीक्षण करके ज्ञात किया जाता है कि किस मूल्य की आवृत्ति सर्वाधिक है। सर्वाधिक आवृत्ति का मूल्य ही बहुलक होगा।

उदाहरणः छात्रों की आयु का बहुलक ज्ञात कीजिए–17, 18, 20, 15, 20, 16, 18, 21, 15, 19, 13, 15, 14, 18, 15, 22, 20, 15, 16, 15, इन आयु श्रेणियों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर :

पद–मूल्य (छात्रों की आयु) वर्षों में	आवृत्ति
13	1
14	1
15	6
16	2
17	1
18	3
19	1
20	3
21	1
22	1

उपर्युक्त पद–मूल्यों की आवृत्ति के निरीक्षण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक आवृत्ति 6 बार पद–मूल्य 15 वर्ष की है, अतः छात्रों की आयु का बहुलक 15 वर्ष होगा।

(iii) माध्यिका तथा समान्तर माध्य के आधार पर बहुलक का निर्धारण : व्यक्तिगत श्रेणियों का बहुलक माध्यिका तथा समान्तर माध्य के द्वारा भी निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं :

सूत्र – $Z = 3M - 2\bar{X}$

संकेताक्षर – Z = बहुलक

M = माध्यिका

$\bar{X}$ = समान्तर माध्य

विच्छिन्न श्रेणी में भूयिष्ठक का निर्धारण

(Determination of Mode in Discrete Series)

विच्छिन्न श्रेणी में भूयिष्ठक ज्ञात करने की दो विधियां हैं : (i) निरीक्षण विधि (Inspection Method), तथा (ii) समूहीकरण विधि (Grouping Method).

1. **निरीक्षण विधि (Inspection Method) :** विच्छिन्न श्रेणी में केवल निरीक्षण द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात किया जा सकता है लेकिन यह तभी सम्भव है जब आवृत्तियाँ नियमित हों अर्थात् श्रेणी के आरम्भ में आवृत्तियां निरन्तर बढ़ती रहें, अधिकतम आवृत्ति लगभग केन्द्र में हो और उसके बाद आवृत्तियां निरन्तर घटने लगें। ऐसे समूह में अधिकतम आवृत्ति बिल्कुल स्पष्ट होती है। निरीक्षण द्वारा उसका मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। निम्न उदाहरण से यह विधि स्पष्ट हो जायेगी :

उदाहरण : **निम्न सारणी 30 व्यक्तियों का वेतन प्रदर्शित करती है। भूयिष्ठक ज्ञात कीजिये** :

वेतन (रु. में)	आवृत्ति	वेतन (रु. में)	आवृत्ति
600	4	750	18
650	6	800	7
700	12	850	3

हल – उपर्युक्त सारणी में आवृत्तियाँ नियमित हैं। अतः निरीक्षण द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात किया जा सकता है। श्रेणी का निरीक्षण करने से पता लगता है कि अधिकतम आवृत्ति 18 हैं जिसका मूल्य 750 है अर्थात् भूयिष्ठक वेतन 750 रु. है।

2. **समूहीकरण विधि (Grouping Method) :** जहाँ आवृत्तियों में अनियमितता (Irregularity) है वहां निरीक्षण द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात करना कठिन है। कभी–कभी दो या दो से अधिक मूल्यों की आवृत्ति सबसे अधिक होती है यह निश्चित करना कठिन होता है कि किस मद को भूयिष्ठक माना जाये। सर्वाधिक आवृत्ति एक होने पर भी भूयिष्ठक मद सर्वाधिक आवृत्ति वाला न होकर दूसरा हो सकता है। भूयिष्ठक का ठीक पता लगाने के लिये समूहीकरण विधि (Grouping Method) का प्रयोग किया जाता हैं जब विधि प्रयोग में लाई जाती है तो दो सारणियाँ बनाई जाती हैं, जो इस प्रकार हैं : **(a) समूहीकरण सारणी (Grouping Table),** तथा **(b)** विश्लेषण सारणी **(Analysis Table) :**

इन दोनों सारणियों के आधार पर भूयिष्ठक ज्ञात किया जाता है।

(a) समूहीकरण सारणी (Grouping Table) : समूहीकरण का उद्देश्य अनियमित आवृत्ति वाले वितरण में आवृत्तियों का सर्वाधिक घनत्व निश्चित करना होता है। समूहीकरण सारणी बनाने की क्रिया इस प्रकार है : एक सारणी बनाई जाती है जिसमें चल–मानों के अतिरिक्त 6 स्तम्भ होते हैं। इन स्तम्भों में आवृत्तियों का दो–दो और तीन–तीन के समूहों में समूहन (Grouping in two's and three's) निम्न क्रम से लिया जाता है :

(i) प्रथम स्तम्भ : प्रथम स्तम्भ में दी हुई आवृत्तियां होती हैं। इन आवृत्तियों में से अधिकतम आवृत्ति को चिन्हित किया जाता है।

(ii) द्वितीय स्तम्भ : दूसरे स्तम्भ में प्रथम स्तम्भ में दी हुई पहली दो आवृत्तियों का योग, फिर इसके आगे वाली दो आवृत्तियों का योग और इसी प्रकार अन्त तक दो–दो आवृत्तियों का योग लिया जाता है।

(iii) **तृतीय स्तम्भ** : प्रथम स्तम्भ में दी हुई आवृत्तियों में से पहले वाली आवृत्ति को छोड़कर दो–दो आवृत्तियों के योग लिये जाते हैं।

(iv) **चतुर्थ स्तम्भ** : प्रथम स्तम्भ में दी हुई आवृत्तियों में से पहली तीन आवृत्तियों का योग फिर आगे की तीन आवृत्तियों का योग, और इसी प्रकार आगे भी तीन–तीन आवृत्तियों का योग लेते हैं।

(v) **पंचम स्तम्भ** : प्रथम स्तम्भ में दी हुई आवृत्तियों में से पहली आवृत्ति को छोड़कर अगली तीन आवृत्तियों का योग, फिर अगली तीन आवृत्तियों का योग और इसी प्रकार आगे भी तीन–तीन आवृत्तियों का योग लेते हैं।

(vi) **षष्ठम स्तम्भ** : प्रथम स्तम्भ में दी हुई आवृत्तियों में से प्रथम दो आवृत्तियों को छोड़कर अगली तीन आवृत्तियों का योग और इसी प्रकार आगे तीन–तीन आवृत्तियों का योग लेते हैं।

उपर्युक्त स्तम्भों में समूहीकरण की संख्यायें लिखने के बाद प्रत्येक खाने की सबसे बड़ी संख्या को मोटे अक्षरों में वृत्त में लिख दिया जाता है ताकि वह अन्य संख्याओं से भिन्न लगे और सुगमता से पहचानी जा सके।

(b) **विश्लेषण सारणी (Analysis Table) :** यह सारणी उन अधिकतम आवृत्तियों (Maximum Frequencies) के आधार पर बनाई जाती है जिन्हें उपर्युक्त समूहीकरण वाली सारणी में रेखांकित (Underline) किया गया है या वृत्त में लिखा गया है। इस सारणी में छहों स्तम्भों

के सामने अधिकतम आवृत्तियों के चल–मूल्यों पर चिन्ह लगाकर उनकी गणना कर ली जाती है जिस मूल्य के सामने सबसे अधिक चिन्ह होते हैं वही भूयिष्ठक मूल्य होता है। विश्लेषण सारणी का प्रारूप नीचे दिया गया है :

विश्लेषण सारणी का प्रारूप

स्तम्भ संख्या	चल के मान					
I II III IV V VI						
योग						

उदाहरण – निम्नलिखित समंकमाला से समूहीकरण विधि द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात कीजिए :

चल :	40,	44,	48,	52,	56,	60,	64,	68,	72,	76
आवृत्ति :	10,	12,	14,	20,	15,	20,	18,	10,	8,	4

हल : **भूयिष्ठक का निर्धारण (समूहीकरण सारणी)**

चल आवृत्ति

I	II	III	IV	V	VI		
40	10						
44	12	22		36			
48	14		26		46		
52	20	34				46	49
56	15		35	55			
60	20	35			53	53	
64	18		38				48
68	10	28		36		22	
72	8		18		22		
76	4	12					

विश्लेषण सारणी

स्तम्भ	चल मूल्य									
संख्या	40	44	40	52	56	60	64	68	72	76
I				1		1				
II					1	1				
III						1	1			
IV				1	1	1				
V					1	1	1			
VI			1	1	1					
योग			1	3	4	5	2			

अर्थात् सारणी से यह स्पष्ट है कि चल मूल्य 60 सबसे अधिक (पांच) बार आया है अर्थात् यही भूयिष्ठक मूल्य है।

3. **अविच्छिन्न या सतत् श्रेणी में बहुलक का निर्धारण (Location of Mode in Continuous Series)** : अविच्छिन्न श्रेणी में अग्रलिखित दो विधियों द्वारा बहुलक निर्धारित किया जाता है:

(i) निरीक्षण विधि।

(ii) समूहन विधि।

(i) निरीक्षण विधि : इस विधि में आवृत्तियों का अवलोकन किया जाता है तथा ज्ञात किया जाता है कि सर्वाधिक आवृत्ति कौन–सी है तथा उसका वर्ग कौन–सा है वही बहुलक वर्ग कहलाता है। अगर सबसे अधिक आवृत्ति वाले वर्ग एक से अधिक होते हैं तो निरीक्षण विधि के स्थान पर समूहन विधि को काम में लेकर बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है तथा अग्र सूत्र से परिकलन किया जाता है –

सूत्र – $Z = \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

संकेताक्षर – Z = बहुलक या भूयिष्ठक

L_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा

f_1 = बहुलक वर्ग की आवृत्ति

f_0 = बहुलक वर्ग से पहले वाले वर्ग की आवृत्ति

f_2 = बहुलक वर्ग से बाद वाले वर्ग की आवृत्ति

i = बहुलक वर्ग की निम्नतम तथा उच्चतम सीमाओं का अन्तर (वर्गान्तर)

उदाहरण – निम्नलिखित समंकों से बहुलक मजदूरी की गणना कीजिए –

मजदूरी (रुपयों में)	:	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
श्रमिकों की संख्या	:	4	7	11	15	11	6	4

मजदूरी (रूपयों में) x	श्रमिकों की संख्या f
0-10	4
10-20	7
20-30	11
30-40	15
40-50	11
50-60	6
60-70	4

उपर्युक्त सारणी का निरीक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि सबसे अधिक आवृत्ति 15 है इसलिए बहुलक वर्ग 30-40 है।

सूत्र – $Z = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

$$Z = 30 + \frac{15-11}{2\times15-11-11} \times 10$$

$$= 30 + \frac{4}{8} \times 10$$

$$= 30 + \frac{40}{8}$$

$$= 30 + 5$$

$$Z = 35$$

अतः बहुलक मजदूरी 35 रुपये है।

(ii) समूहन प्रणाली द्वारा बहुलक की गणना विधि : सबसे पहले खण्डित श्रेणी की तरह इसमें भी समूहन एवं विश्लेषण तालिका के द्वारा बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है। इसके उपरान्त निम्नलिखित सूत्र के द्वारा बहुलक की गणना की जाती है।

सूत्र – $X = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

मजदूरी (रुपयों में)	श्रमिकों की संख्या						अधिकतम आवृत्तियों की संख्या	योग
x	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)		
0-10	3	8						
10-20	5		14	17				
20-30	9	23			28		11	2
30-40	14		27			36	1111	5
40-50	13	22		36			111	3
50-60	9		15		28		1	1
60-70	6							

उपर्युक्त सारणी का निरीक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि सबसे अधिक आवृत्ति 15 है इसलिए बहुलक वर्ग 30-40 है।

सूत्र – $Z = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

$$Z = 30 + \frac{14-9}{2\times14-9-13} \ 10$$

$$= 30 + \frac{5}{6} \times 10$$

$$= 30 + \frac{50}{6}$$

$$= 30 + 8.33$$

$$Z = 38.33$$

बहुलक के लाभ एवं हानियाँ

(Advantages and Disadvantages of Mode)

लाभ **(Merits) :** बहुलक के लाभ निम्नलिखित हैं –

1. इसको ज्ञात करना एवं समझना सरल है।
2. यह न्यूनतम और अधिकतम पदों से प्रभावित नहीं होता।
3. भूयिष्ठक का मान ग्राफ की सहायता से भी निकाला जा सकता है।
4. सभी पदों को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।
5. भूयिष्ठक तब अधिक उपयोगी होता है जब दो या अधिक समग्रों का मिश्रण हो। ऐसी स्थिति में माध्य या मध्यिका केन्द्रीय प्रवृत्ति को भली–भांति नहीं बता सकेगा।
6. इसकी गणना शीघ्रता, सरलता एवं यथार्थता से की जा सकती है।

7. बहुलक समंक श्रेणी का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व मान होता है क्योंकि बहुलक वही होता है जिसकी आवृत्ति पदमात्रा में सर्वाधिक होती है।

8. बड़े पैमाने में उत्पादन करने वाले उत्पादकों के लिए बहुलक अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि बहुलक के आधार पर ही वह उत्पादन के लिए आकार को निर्धारित करते हैं।

9. यह अधिकतम इकाइयों पर प्रत्यक्ष रूप से लागू होता है। इस प्रकार यह अन्य माध्यों से अधिक श्रेष्ठ होता है।

10. यह गुणात्मक तथ्यों को प्रकट करने के लिए भी महत्वपूर्ण रूप से प्रयोग होता है।

दोष (Demerits) : बहुलक के लाभ निम्नलिखित हैं –

1. यह बीजगणितीय रूप में प्रयोग नहीं किया जाता।

2. यह सभी पदों को ध्यान में नहीं रखता।

3. यह प्रायः अनिश्चित होता है। यह विस्तार के साथ बदलता रहता है एक ही समंक से लोग अलग–अलग बहुलक निकाल सकते हैं।

4. इसका प्रयोग सीमित होता है। इसके लिए श्रेणी का बंटन सीमित होना चाहिए और आवृति वक्र में एक ही शिखर हो। यदि आवृत्ति वक्र के एक से अधिक शिखर होंगे तो बहु–भूयिष्ठक श्रेणी हो जाएगी और भूयिष्ठक ज्ञात करना कठिन होगा।

5. कभी–कभी बहुलक का निश्चित माप सरलता से ज्ञात नहीं होता विशेष रूप से तब जबकि एक पदमाला में एक से अधिक बहुलक होते हैं।

6. भूयिष्ठक को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता।

7. बहुलक निकालने के लिए बहुत से सूत्र हैं और उन सबसे बहुलक का मान अलग–अलग आता है।

बहुलक, माध्यिका और समान्तर माध्य की तुलनात्मक उपयोगिता

Comparative Utility of Mode, Median and Arithmetic Mean

1. तीनों माध्यों – बहुलक, माध्यिका और माध्य की अपनी–अपनी विशेषताएँ लक्षण, सीमा तथा गणना की प्रणालियाँ भिन्न–भिन्न हैं, उनके अनुसार इनका उपयोग भी भिन्न–भिन्न है। किस अध्ययन में कौन–से माध्य का प्रकार उपयुक्त होगा यह अध्ययन के तथ्यों, सामग्री, आँकड़ों, उनकी प्रकृति तथा वर्गीकरण आदि पर निर्भर करता है। सामाजिक

अनुसन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में तीनों ही माध्यों का अपना विशेष महत्व है। तथ्यों का औसत निकालकर तीनों निष्कर्षों का सार रूप प्रस्तुत करने में बहुत उपयोगी है।

2. तीनों माध्यों का उपयोग किन्हीं तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करने के लिए विशेष रूप से चयन किया जाता है फिर भी अगर कभी ऐसी स्थिति आ जाए कि तीनों में से सबसे उपयुक्त कौन–सा माध्य है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाए तो समान्तर माध्य का ही चयन करना चाहिए। यह सबसे अच्छा माध्य इस रूप में है कि इसमें प्रत्येक पद के मूल्यों को समान रूप से प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

3. जब आवृत्ति का वितरण असीमित हो तथा श्रेणी में मूल्यों तथा आवृत्ति में क्रमबद्ध वितरण न हो; कुछ में बहुत अधिक तथा कुछ में बहुत कम हो तो माध्यिका का उपयोग करना चाहिए। पूंजीगत और पिछड़े देशों में आय का वितरण बहुत असीमित होता है। वहाँ आय की केन्द्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण करने के लिए माध्यिका सबसे उपयोगी माध्यम है।

4. कई बार अध्ययन में एक से अधिक समंकों का मिश्रण हो जाता है ऐसे तथ्यों के माध्य निर्धारण के लिए बहुलक का उपयोग सर्वश्रेष्ठ रहता है। इस प्रकार के समग्र में समान्तर माध्य अथवा माध्यिका केन्द्रीय प्रवृत्ति का निर्धारण उपयुक्त नहीं कर पाते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि दो समष्टियों के मिश्रण में बहुलक भी दो मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में बहुलक की गणना करना समान्तर माध्य तथा माध्यिका की तुलना में अधिक उपयुक्त रहता है।

निष्कर्षतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि किस अध्ययन में कौन–सा माध्य अधिक उपयोगी होगा यह अनुसन्धानकर्त्ता, तथ्यों तथा आँकड़ों की प्रकृति, सांख्यिकी के उपयोग का स्तर, तथ्यों के चर, वर्गीकरण के आधार के उद्देश्यों आदि के आधार पर स्वयं निर्णय लेकर चयन करें।

3.10 अपनी प्रगति जांचिए :

(त) आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण से क्या अभिप्राय है?

(थ) आँकड़ों के माध्य प्रवृत्तियों (केन्द्रवर्ती मान) का अर्थ बताएँ।

(द) आँकड़ों के माध्य प्रवृत्तियों के माप की कितनी विधियाँ हैं?

(ध) माध्य (मध्यमान) का अर्थ स्पष्ट करो।

(न) मध्यांक का अर्थ बताओ।

(प) बहुलांक का अर्थ परिभाषित करो।

(फ) किसी कक्षा के 5 छात्रों के प्राप्तांक इस प्रकार है :

10, 12, 14, 16, 18

इन प्राप्तांकों का माध्य, मध्यांक व बहुलांक ज्ञात करो।

(ब) अखण्डित श्रेणी से माध्य, मध्यांक व बहुलांक निकालने के सूत्र क्या हैं?

3.11 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(त) वर्गीकृत व सारिणीयन आँकड़ों को अधिक सरल, स्पष्ट व विश्वसनीय बनाने हेतु एक ऐसी संख्या ज्ञात कर ली जाए जो उस श्रेणी का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। उसे ही सांख्यिकीय विश्लेषण कहते हैं।

(थ) माध्य प्रवृत्ति : माध्य मूल्यों के एक समूह में से चुना गया वह मूल्य है जो उसका सही प्रतिनिधित्व करता है। इसे केन्द्रवर्ती प्रवृत्ति का माप इसलिए कहा जाता है क्योंकि व्यक्तिगत चर मूल्यों का अधिकतर उसके आस–पास जमाव होता है।

(द) माध्य प्रवृत्तियों के माप की विधियाँ :

– माध्य / मध्यमान

– मध्यांक

– बहुलांक

(ध) माध्य : इसे समानान्तर मध्यमान भी कहा जाता है। यह एक औसत है जो पद मूल्यों के जोड़ से उसकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।

(न) मध्यांक : किसी समूह के प्राप्तांकों को आरोही व अवरोही क्रम के अनुसार व्यवस्थित करने पर वह बिन्दु जिसके ऊपर तथा नीचे बराबर–बराबर प्राप्तांक की आवृति होती है अर्थात् बिल्कुल बीच वाली राशि के मान या माप को मध्यांक कहते हैं।

(प) बहुलांक : यह अंग्रेजी भाषा के Mode का हिन्दी रूपान्तरण हैं जो फ्रेंच भाषा के "La Mode" से लिया गया है जिसका अर्थ है 'Most Fashionable' अतः बहुलांक वह मूल्य है जो पदों की श्रेणी अथवा समूह में सबसे अधिक बार आता है तथा जिसके चारों ओर अधिक घनत्व में पदों का विवरण रहता है।

(फ) छात्रों के प्राप्तांक = 10, 12, 14, 16, 18

माध्य : $\frac{\sum x}{N}$ $\sum x$ = प्राप्तांकों का कुल जोड़

N = प्राप्तांकों की संख्या

$\frac{\Sigma x}{N} = \frac{70}{5} = 14$ माध्य = 14

मध्यांक : $\frac{N+1}{2} = \frac{5+1}{2}$ = 3 प्राप्तांकों का कुल जोड़

प्राप्तांकों की श्रेणी की तीसरी संख्या = 14 मध्यांक = 14

बहुलांक : (3 मध्यांक – 2 माध्य)

$3 \times 14 - 2 \times 14 = 14$

बहुलांक = 14

(ब) अखण्डित श्रेणी के माध्य, मध्यांक व बहुलांक के सूत्र

माध्य = M = $\frac{\Sigma fx}{N}$ प्राप्तांकों का कुल जोड़

मध्यांक = Me = $L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1} \times i$

बहुलांक = Md = $L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

3.12 सारांश :

इस समस्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शोधकर्त्ता को शोध कार्य के दौरान विभिन्न चरणों से गुजरना पड़ता है। जिसमें विभिन्न माध्यमों से प्राप्त आँकड़ों की विश्लषण प्रक्रिया और विश्लेषण सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके माध्यम से शोधकार्य को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया जाता है। आँकड़ों के विश्लेषण के अंतर्गत उनका वर्गीकरण, सारिणीयन संपादन व संकेतीकरण प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पहलू हैं। जो शोधकर्त्ता शोध प्ररचना से पूर्णरूपेण परिचित हैं, उन्हें विश्लेषण प्रक्रिया में परेशानी नहीं आती है। अनुसंधान में विश्लेषण प्रक्रिया आँकड़ों के व्यवस्थिकरण से उसी प्रकार संबंधित है जैसे कुछ पेजों के समूह को किताब नहीं कहा जा सकता, जब तक उन्हें व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप प्रदान नहीं किया जाता है। विश्लेषण प्रक्रिया आँकड़ों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है। शोधकर्त्ता द्वारा विश्लेषण की प्रक्रिया के अंतर्गत आँकड़ों को सरल, स्पष्ट व बोधगम्य बनाने हेतु इनका संपादन, वर्गीकरण, सारिणीयन व संकेतीकरण प्रदर्शन किया जाता है। सामाजिक शोध में शोधकार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने हेतु आँकड़ों के विश्लेषण की सांख्यिकीय तकनीक का भी प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से

सामाजिक शोध को ना सिर्फ वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जाता है बल्कि आँकड़ों की विश्वसनीयता भी सिद्ध होती है। सामाजिक शोध में सर्वेक्षण के माध्यम से प्राप्त आँकड़ों की श्रेणियों में केंद्रिय प्रवृत्ति मापन की तीन विधियों – माध्य, मध्यांक, व बहुलांक का प्रयोग होता है। यहाँ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी अध्ययन में बहुत से चर होते हैं। इनकी प्रवृत्ति भिन्न–भिन्न होती है। किसके लिए केन्द्रीय प्रवृत्ति मापन की कौन सी इकाई प्रयुक्त करनी है, यह निर्णय शोधकर्त्ता पर निर्भर करता है।

3.13 मुख्य शब्दावली :

- **आँकड़ों का प्रक्रियाकरण** : आँकड़ों के संकलन के पश्चात विश्लेषण के लिए उन्हें विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकत व संपादित करने की प्रक्रिया ही प्रक्रियाकरण कहलाती है।
- **आँकड़ों का विश्लेषण** : संकलित आँकड़ों से सही परिणामों को निकालने हेतु तथ्यों को व्यवस्थित करके सरल, सुव्यवस्थित व बोधगम्य बनाने की प्रक्रिया ही विश्लेषण है।
- **आँकड़ों का संपादन** : प्राप्त तथ्यों की त्रुटियों, असंगतियों व अपूर्णताओं का निरीक्षण कर उन्हें दूर करना ही संपादन है।
- **आँकड़ों का वर्गीकरण** : आँकड़ों में पाई जाने वाली समानता व असमानता के आधार पर उनको व्यवस्थित करके श्रेणियों का निर्माण करना ही वर्गीकरण प्रक्रिया है।
- **आँकड़ों का संकेतीकरण** : आकड़ों के वर्गीकरण के पश्चात् संख्यात्मक विवेचन के लिए उत्तरों का संकेतन करने की प्रक्रिया संकेतीकरण कहलाती है।
- **आँकड़ों का सारणीकरण** : विभिन्न वर्गों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए वर्गीकरण व संकेतीकरण के बाद वर्गों को सारणियों में विभाजन करना ही सारणीकरण करना है।
- **सांख्यिकीय विश्लेषण** : वह विज्ञान जो सामाजिक व्यवस्था को सामूहिक रूप में सभी दृष्टिकोणों से मापता है।

- **केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप** : सांख्यिकीय माध्यों की गणना करना ही केन्द्रीय प्रवृत्ति मापन है।
- **माध्य** : समस्त अंकों के विस्तार के अंतर्गत स्थित ऐसा मूल्य जो श्रेणी के सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है।
- **मध्यांक** : श्रेणी के उस पद का मूल्य जो श्रेणी को दो बराबर भागों में बांटता है।
- **बहुलांक** : समंक श्रेणी का वह मूल्य या परिणाम जो दिए हुए अंकों में सबसे अधिक बार आता है।

3.14 अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(1) शोध कार्य में आँकड़ों के विश्लेषण की उपयोगिता का वर्णन करो।

(2) विश्लेषण की प्रक्रिया के चरणों का वर्णन करो।

(3) आँकड़ों के संपादन की आवश्यकता का वर्णन करो।

(4) वर्गीकरण को परिभाषित करते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन करो।

(5) आँकड़ों के संकेतीकरण के लाभ बताओ।

(6) सारिणीयन की विशेषताओं का वर्णन करो।

(7) केन्द्रीय प्रवृत्ति मापन का अर्थ बताओ।

(8) केन्द्रीय प्रवृत्ति मापन की इकाइयों के नाम बताओ।

(9) सांख्यिकीय में माध्य की उपयोगिता का वर्णन करो।

(10) अनुसंधान कार्य में सबसे अधिक किस केन्द्रीय प्रवृत्ति मापन इकाई का प्रयोग होता है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर दीजिए :

(1) आँकड़ों के विश्लेषण व व्याख्या की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(2) आँकड़ों के संपादन की प्रक्रिया से शोधकार्य के किन उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।

(3) आँकड़ों के वर्गीकरण को परिभाषित करते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन करो।

(4) संकेतीकरण व सारिणीयन की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इनका तुलनात्मक वर्णन करो व अंतर स्पष्ट करो।

(5) सांख्यिकीय विश्लेषण में माध्य प्रवृत्ति मापन की विधियों का विस्तृत वर्णन करो व कौन सी विधि अनुसंधान कार्य में अधिक उपयोगी होती है।

(6) यहाँ समूह के प्राप्तांकों की आवृत्ति–वितरण तालिका के रूप में व्यवस्थित की गयी है। इनके माध्य, मध्यांक व बहुलांक की गणना कीजिए।

(x)	70–74	65–69	60–64	55–59	50–54	45–49	40–44	34–39	30–34
f	2	4	6	8	15	10	7	5	3

(7) माध्य, मध्यांक व बहुलांक की तुलनात्मक उपयोगिता का वर्णन करो।

3.15 आप ये भी पढ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'', यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***

इकाई–4 द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण, अन्तर्वस्तु विश्लेषण, प्रतिवेदन लेखन व सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या

इकाई की रूपरेखा :

4.0 परिचय

4.1 अधिगमन उद्देश्य

4.2 संरचना

4.3 द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण

4.3.1 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण का अर्थ व परिभाषा

4.3.2 प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अंतर

4.3.3 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया

4.3.4 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के गुण या लाभ

4.3.5 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के दोष या सीमाएँ

4.3.6 अपनी प्रगति जांचिए

4.3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.4 अन्तर्वस्तु विश्लेषण

4.4.1. अन्तर्वस्तु विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा

4.4.2. अन्तर्वस्तु विश्लेषण की विशेषताएँ

4.4.3. अन्तर्वस्तु विश्लेषण का महत्त्व

4.4.4. अन्तर्वस्तु विश्लेषण की प्रमुख समस्याएँ

4.4.5. अपनी प्रगति जांचिए

4.4.6. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.5 प्रतिवेदन लेखन

4.5.1. रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य

4.5.2. अनुसंधान–प्रतिवेदन तैयार करने से संबंधित कुछ सामान्य सिद्धान्त

4.5.3. एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ

4.5.4. प्रतिवेदन की रूपरेखा

4.5.5. अनुसंधान–प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियाँ

4.5.6. अनुसंधान–प्रतिवेदन का प्रकाशन

4.5.7. अपनी प्रगति जांचिए

4.5.8. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.6 सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता

4.6.1 वस्तुनिष्ठता का अर्थ तथा परिभाषा

4.6.2 सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का महत्त्व

4.6.3 वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में कठिनाइयाँ

4.6.4 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन

4.6.5. अपनी प्रगति जांचिए

4.6.6. अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 मुख्य शब्दावली

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0. परिचय :

इस इकाई में द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण, अन्तर्वस्तु विश्लेषण, प्रतिवेदन लेखन व सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या पर विस्तृत चर्चा करेंगे। सामाजिक अनुसंधान में आँकड़ों के संकलन के पश्चात् उनका विश्लेषण किया जाता है। संकलित तथ्यों से सही परिणामों को निकालने के लिए तथ्यों को व्यवस्थित करके सरल, सुव्यवस्थित एवं जनसाधारण के समझने योग्य बनाने की प्रक्रिया को आँकड़ों का विश्लेषण कहा जाता है। द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है क्योंकि ये आँकड़े पूर्व में सुव्यवस्थित एवं स्पष्ट होते हैं। द्वितीयक शोध तथा आँकड़ा विश्लेषण अधिक सावधानी व परिश्रम से किया जाए तो यह मितव्ययी रूप से बड़ी से बड़ी शोध समस्याओं को हल कर सकता है। शोधकर्त्ता को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संबंधित विषय से जुड़ा विश्लेषण आसान व सुस्पष्ट हो ताकि उसका आम आदमी लाभ उठा सके। सामाजिक शोध अभिकल्प में अंतर्वस्तु विश्लेषण महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण का संबंध भाषागत अभिव्यक्तियों तथा संचार के अन्य साधनों द्वारा प्राप्त तथ्यों की अंतर्वस्तु से होता है। इसमें तथ्यों का प्रक्रियाकरण, विश्लेषण व विवेचन करने के पश्चात् शोध निष्कर्ष दिए जाते हैं। इन्हीं निष्कर्षों को सामान्यीकरण करने के उद्देश्य से इनका वैज्ञानिकीकरण किया जाता है। यह कार्य शोध प्रतिवेदन लेखन कहलाता है। यह शोधकर्त्ता का अंतिम चरण होता है। प्रतिवेदन लेखन के द्वारा शोध कार्य दूसरों तक पहुंचाया जाता है। सामाजिक विज्ञान के शोध में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करना एक कठिन कार्य है क्योंकि सामाजिक विज्ञान की घटनाएं अमूर्त, जटिल, परिवर्तनशील, गुणात्मक तथा विभिन्नतायुक्त होती हैं। जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयाँ आ जाती हैं जो अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं।

4.1 अधिगमन उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित उद्देश्यों को अच्छी प्रकार समझ सकेंगे

- द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण
- अन्तर्वस्तु विश्लेषण

–	प्रतिवेदन लेखन

–	सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्या को जान पाएंगे।

**4.2	संरचना :**

संरचना किसी भी विषयवस्तु को व्यवस्थित व क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान करना है। संरचित विषय–वस्तु सरल व सुबोधगम्य होती है। उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत इकाई का संरचनात्मक ढ़ाँचा इस प्रकार है।

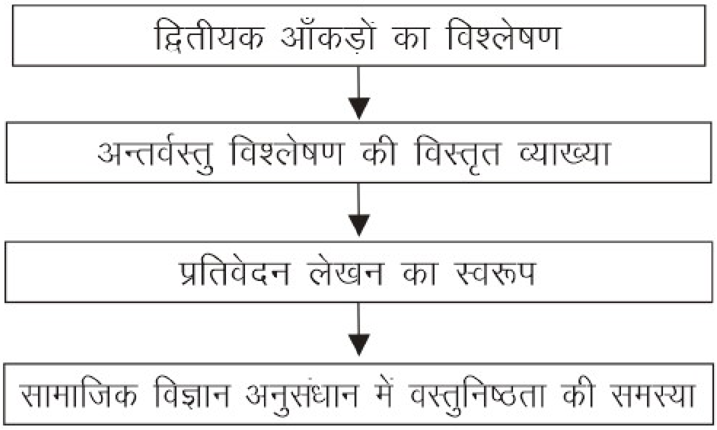

4.3. द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण

सामाजिक अनुसंधान में अनुसंधान अभिकल्प के निर्माण के पश्चात् आँकड़ों का संकलन किया जाता है। अनुसंधानकर्त्ता विभिन्न स्रोतों से बहुत मात्रा में आँकड़ों का संग्रह व संकलन करता है, लेकिन व्यावहारिक रूप में पहले से मौजूद आँकड़ों का प्रयोग अनुसंधान में अधिक प्रचलित है। द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण से अभिप्राय उन आँकड़ों के विश्लेषण से है जो किसी और ने किसी दूसरे प्राथमिक उद्देश्य के लिए किया है। इन पहले से एकत्रित आँकड़ों का अनुसंधानकर्त्ता के द्वारा अपने शोध कार्य में प्रयोग अनुसंधानकर्त्ता के समय व साधनों दोनों की बचत में सहायक है। यह विश्लेषण मौजूदा तथ्यों का पुनः विश्लेषण होता है द्वितीयक आँकड़ें प्राथमिक शोध की प्रारूप रचना में सहायक होने के साथ–साथ प्राथमिक आँकड़ों के संग्रह से प्राप्त परिणामों की तुलना में भी सहायक होते हैं। अतः किसी भी शोधकार्य की शुरूआत करने से पूर्व द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण करना हितकर होता है।

4.3.1 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण का अर्थ व परिभाषा :

शोधकर्त्ता शोध की शुरूआत करने से पूर्व ही यह जान ले कि वह प्रस्तुत विषय के बारे में कितनी जानकारी रखता है और विषय के संबंध में द्वितीयक स्रोतों से जानकारी प्राप्त कर ले और यह जान ले कि प्रस्तुत विषय वस्तु को किसी शोधकर्त्ता, संस्था या सरकारी या गैर सरकारी संस्था ने अपने प्राथमिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग किया है। द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण एक लचीली विधि है जो विभिन्न तरीकों से प्रयोग में लाई जा सकती है। यह एक पहले से प्रयुक्त अनुसंधान तकनीक है जो अनुसंधानकर्त्ता को आसानी से विषयवस्तु से संबंधित आँकड़ों को प्रदान करती है। यह एक व्यवस्थित अनुसंधान तरीका है जो प्राथमिक आँकड़ों के संग्रह से प्राप्त पणिामों की तुलना में भी सहायक होता है।

द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि प्राथमिक व द्वितीयक आँकड़ों में अंतर क्या है। इनके प्राप्ति के स्रोतों में क्या अंतर है।

4.3.2 प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अंतर :

1. प्राथमिक आँकड़ों के संकलन में अधिक धन, समय और श्रम की जरूरत होती है जबकि द्वितीयक आँकड़ों का संकलन तुलनात्मक रूप से कम खर्चीला होता है।

2. प्राथमिक आँकड़ों का संकलन शोधकर्त्ता के द्वारा प्रथम बार किया जाता है जबकि द्वितीयक आँकड़ों अथवा तथ्यों का संकलन एवं प्रकाशन पूर्व में कर लिया जाता है तथा शोधकर्त्ता इन्हें द्वितीय बार प्रयोग करता है।

3. प्राथमिक आँकड़े मौलिक होते हैं जबकि द्वितीयक आँकड़े मौलिक नहीं होते।

4. प्राथमिक आँकड़े अप्रकाशित होते हैं जबकि द्वितीयक आँकड़े प्रकाशित होते हैं।

5. प्राथमिक आँकड़े विश्वसनीय होते हैं। जबकि द्वितीयक आँकड़े पूर्ण अविश्वसनीय नहीं होते हैं।

6. प्राथमिक आँकड़ों में सत्यापन का गुण अधिक होता है जबकि द्वितीयक आँकड़े जिस रूप में हैं उनका उसी रूप में प्रयोग करना होता है।

7. प्राथमिक आँकड़े एक कच्चे माल की तरह हैं जिनके आधार पर अध्ययन को एक स्वरूप दिया जाता है जबकि द्वितीयक आँकड़े एक तैयार माल की तरह हैं, जिनका उपयोग तो किया जाता है लेकिन आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

8. प्राथमिक आँकड़ों का संकलन करने के लिए अनेक अध्ययन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है जबकि द्वितीयक आँकड़ों का प्राथमिक आँकड़ों की अध्ययन प्रविधियों द्वारा संकलन नहीं किया जा सकता है।

9. प्राथमिक आँकड़ों और द्वितीयक आँकड़ों में एक अन्य अंतर समय कारक से संबंधित होता है अर्थात् कोई विशेष तथ्य एक वक्त में एक व्यक्ति के लिए प्राथमिक हो सकता है। कुछ समय पश्चात् वही तथ्य दूसरे अध्ययनकर्त्ता के लिए प्राथमिक आँकड़े द्वितीय आँकड़े बन सकते हैं।

10. प्राथमिक आँकड़ों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची एवं प्रश्नावली द्वारा किया जाता है। जबकि द्वितीयक आँकड़ों का संकलन लिखित प्रलेखों के अंतर्गत विश्लेषण करके किया जाता है।

11. प्राथमिक सामग्री का संकलन शोधकर्त्ता द्वारा समस्या आश्रित पहलुओं को सम्मुख रखकर किया जाता है जबकि द्वितीयक सामग्री के लिए हमें प्रलेखों पर आश्रित रहना पड़ता है।

4.3.3 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया :

अनुसंधान कार्य में शोध क्षेत्र व शोध से संबंधित प्रश्न ही यह निर्धारित करते हैं कि अनुसंधानकर्त्ता किन तरीकों का अनुसरण करेगा। अनुसंधान तरीके में निम्न बातें निहित होती हैं– आँकड़ों का संकलन, आँकड़ों का विश्लेषण व आँकड़ों का प्रतिपादन। द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के अंतर्गत अनुसंधानकर्त्ता अनुसंधान प्रक्रिया में निम्नलिखित चरणों का अनुसरण करता है।

1. अनुसंधान प्रश्नावली का निर्माण : द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रमुखता इस चीज में निहित है कि सैद्धांतिक ज्ञान का प्रयोग इस तरह से हो कि पूर्व में विद्यमान आँकड़ों का अनुसंधान प्रश्नावली में सही से प्रयोग हो। इसी कारण से विश्लेषण प्रक्रिया का प्रथम चरण प्रश्नावली निर्माण होता है। इसके निर्माण के अंतर्गत इस बात का अध्ययन अहम होता है कि प्रश्नावली के निर्माण के अंतर्गत कौन सी बाधाएँ व सहायक पहलू हैं।

2. आँकड़ों के समूह की पहचान : ज्यादातर अनुसंधान कार्य इस बात के साथ शुरू होते हैं कि क्या पहले से ज्ञात पहलू हैं और विषय के किन पहलुओं के संबंध में जानकारी एकत्रित करनी है। आँकड़े जो पहले से विद्यमान होते हैं, वे अनुसंधान प्रश्नों के संबोधन में सहायक होते हैं। अनुसंधानकर्त्ता को आँकड़ों के समूह के निर्माण में आसानी होती है,

क्योंकि उसे पहले से विद्यमान आँकड़ों से संबंधित पहलुओं का ज्ञान होता है। आँकड़ों के संकलन की तकनीक में सर्वेक्षण विधि के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है।

3. आँकड़ों के समूहों का मूल्यांकन : एक बार जब आँकड़ों के समूह का निर्माण हो जाता है तो आवश्यकता उन आँकड़ों के समूह के मूल्यांकन की होती है। इससे एक फायदा होता है अगर आँकड़े पहले से किसी समूह में विद्यमान होते हैं तो उनकी पुनरावृत्ति संभव नहीं होती है। आँकड़ों के समूह के मूल्यांकन के दौरान निम्न चरणों का पालन किया जाता है–

(1) अध्ययन का उद्देश्य क्या है।

(2) सूचनाओं के संग्रह के लिए कौन जिम्मेदार है।

(3) वास्तव में कौन सी सूचना एकत्रित की गई है।

(4) सूचना कब एकत्रित की गई।

(5) आँकड़ों की प्राप्ति के समय कौन सी विधियाँ प्रयुक्त की गई हैं।

(6) प्राथमिक आँकड़ों का प्रबधन।

(7) एक स्रोत से प्राप्त सूचना व दूसरे स्रोत से प्राप्त सूचना में कितनी सामंजस्यता है।

4.3.4 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के गुण या लाभ :

1. द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण, प्राथमिक आँकड़ों के विश्लेषण तथा संग्रहण की तुलना मे अपेक्षाकृत आसान हैं।

2. शोधकर्त्ता द्वितीयक आँकड़ों के संकलन तथा विश्लेषण से अपने समय धन तथा श्रम को बचा सकते हैं।

3. द्वितीयक आँकड़े प्राथमिक आँकड़ों की तुलना में कम खर्चीले होते हैं।

4. समय के साथ द्वितीयक आँकड़ों मे परिवर्तन आसान होता है क्योंकि हमारे प्राथमिक आँकड़े पहले से ही उपस्थित होते हैं।

5. द्वितीयक आँकड़े प्राथमिक आँकड़ों के संग्रह में पूरक के रूप में कार्य करते हैं।

6. द्वितीयक आँकड़ों के संग्रह के लिए विशेष ज्ञान व प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।

4.3.5 द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के दोष या सीमाएँ :

1. यद्यपि द्वितीयक आँकड़े से किसी समूह की स्थिति के बारे में जानकारी मिलती है लेकिन प्राथमिक आँकड़ों की तुलना में यह जानकारी अधूरी होती है।

2. बिना समुचित व्याख्या और विश्लेषण के इनका प्रयोग सही निष्कर्ष नहीं दे सकता है।

3 द्वितीयक आँकड़ों की व्याख्या अनुसंधानकर्त्ता की स्वयं की अभिवृत्तियों से भी प्रभावित होती है।

4 द्वितीयक आँकड़ों की गुणवत्ता निर्धारित करना एक कठिन कार्य होता है।

5. द्वितीयक आँकड़े मुख्य शोधकर्त्ता के उद्देश्यों के अनुसार संग्रहित नहीं किए गए होते हैं। इसलिए यह मुख्य शोधकर्त्ता के उद्देश्यों को पूरा करने में कभी–कभी असमर्थ होते हैं।

6. अधिकांश द्वितीयक आँकड़े अप्रत्यक्ष रूप से संकलित किए जाते हैं इसलिए किसी भी क्षेत्र या समूह की जानकारी उचित एवं स्पष्ट रूप से नहीं मिल पाती है।

7. द्वितीयक आँकड़ों से व्यक्तिगत या सामूहिक मूल्य, विश्वास या समाज में होने वाले समसामयिक बदलावों के कारणों को जान पाना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है।

8. द्वितीयक आँकड़ों के स्रोतों में आपस में विरोधाभास हो सकता है।

4.3.6 अपनी प्रगति जांचिए :

(क) द्वितीयक आँकड़ों से क्या अभिप्राय है?

(ख) द्वितीयक आँकड़ों के स्रोत बताओ।

(ग) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया से क्या अभिप्राय है?

(घ) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया के कितने चरण हैं?

(ङ) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया के कोई दो गुण बताओ।

4.3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(क) द्वितीयक तथ्य वे सूचनाएं व आँकड़े हैं जो अनुसंधानकर्त्ता को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्ट व पत्र–डायरी आदि से प्राप्त होते हैं।

(ख) द्वितीयक आँकड़ों के स्रोतों विभिन्न व्यक्तिगत प्रलेख जैसे जीवन इतिहास, डायरी, पत्र, संस्मरण व सार्वजनिक प्रलेख जैसे – रिकार्ड, प्रकाशित आँकड़े, पत्र–पत्रिकाओं की रिपोर्ट आदि हैं।

(ग) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण का सामान्य अर्थ मौजूदा तथ्यों का पुनः विश्लेषण होता है। यह उन आँकड़ों व सूचनाओं का विश्लेषण है जिन्हें शोधकर्त्ता, संस्था या गैर सरकारी संगठन ने अपने निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पहले प्रयोग किया हो।

(घ) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया के तीन चरण हैं :

- प्रश्नावली का निर्माण
- आँकड़ों के समूह का निर्माण
- आँकड़ों के समूह का मूल्यांकन

(ड़) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया के गुण :

– प्राथमिक आँकड़ों के संग्रहण व विश्लेषण की तुलना में अपेक्षाकृत आसान हैं।

– द्वितीयक आँकड़े प्राथमिक आँकड़ों के संग्रह में पूरक का कार्य करते हैं।

4.4 अन्तर्वस्तु विश्लेषण

अन्वर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का विकास सामाजिक अनुसंधानों में पत्रकारों की प्रेरणा से हुआ। सर्वप्रथम पत्रकारों ने समाचार–पत्रों के माध्यम से अंतर्वस्तु विश्लेषण की परंपरा का प्रारंभ किया। समाचार–पत्रों के विश्लेषण से महत्वपूर्ण निष्कर्ष भी निकाले गए थे। इन्हीं विश्लेषणों से प्रेरित होकर सामाजिक अनुसंधान शोधकर्त्ताओं ने अंतर्वस्तु विश्लेषण को एक प्रविधि के रूप में विकसित किया। एक अध्ययनकर्त्ता जब प्राथमिक तथा द्वितीयक श्रोतों से संकलित किए गए गुणात्मक तथ्यों को व्यवस्थित करने के लिए उन्हें उपयुक्त श्रेणियों में वर्गीकृत करता है तब श्रेणियों में वर्गीकृत करने की इस प्रक्रिया को अंतर्वस्तु विश्लेषण के नाम से जाना जाता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण को एक प्रक्रिया के रूप में भी देखा जाता है। अध्ययन विषय संबंधित गुणात्मक या परिमाणात्मक तथ्यों के अंतर्वस्तु को निश्चित श्रेणियों में वितरित करने की प्रक्रिया को अंतर्वस्तु विश्लेषण कहा जाता है इस प्रविधि का विकास सन् 1926 में माना जाता है। इस प्रविधि के द्वारा सामाजिक शोधकर्त्ता प्रकाशित या अप्रकाशित लेखों या पुस्तकों या अन्य संचार के साधनों का विश्लेषण कर एक वर्गीकृत संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकता है। आरंभ में इस पद्धति का प्रयोग समाचार–पत्रों से संबंधित विभिन्न प्रकार की सामग्री को वर्गीकृत करने के लिए किया जाता था। इसके पश्चात कुछ साहित्यकारों ने साहित्य के क्षेत्र में तथा राजनीति शास्त्रियों ने भी जनमत

संबंधी अध्ययनों के लिए इस पद्धति का उपयोग किया। आज अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में इस पद्धति का उपयोग किया जाने लगा है।

4.4.1 अंतर्वस्तु विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा :

अंतर्वस्तु विश्लेषण का संबंध भाषागत अभिव्यक्तियों तथा संचार के अन्य साधनों द्वारा प्राप्त तथ्यों के अंतर्वस्तु से होता है। समाचार पत्रों, उपन्यासों, भाषणों या संचार के अन्य माध्यमों में व्यक्त तथ्यों का मात्रात्मक विश्लेषण किसी भी प्रशिक्षित शोधकर्त्ता द्वारा किया जा सकता है। अतः अंतर्वस्तु विश्लेषण सामाजिक शोध की ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा विभिन्न स्रोतों से प्राप्त गुणात्मक सामग्री को इस प्रकार श्रेणीबद्ध किया जाता है कि उसमें परिमाणात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकें। इस प्रविधि से वस्तुनिष्ठ, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अंतर्वस्तु विश्लेषण को निम्न प्रकार परिभाषित किया है।

गुडे एवं हॉट के अनुसार, "जब संचार के विभिन्न साधनों, जैसे – पत्रिकाओं, समाचार–पत्रों, रेडियो, कार्यक्रमों अथवा इसी प्रकार की अन्य सामग्रियों के लिए एक गुणात्मक संकेतन का प्रयोग किया जाता है, तब इसी संकेतन को हम अंतर्वस्तु–विश्लेषण कहते हैं।''

पॉलिन यंग के अनुसार, ''अन्तर्वस्तु विश्लेषण का सम्बन्ध भाषागत अभिव्यक्तियों द्वारा अनुसंधान तथ्यों के अन्तर्वस्तु से होता है।''

कटर्लिंगर के अनुसार, ''वस्तु विश्लेषणों को मापने के लिए संचारों के व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और मात्रात्मक ढंग से अध्ययन और विश्लेषण करने की पद्धति है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अंतर्वस्तु सामाजिक शोध की प्रविधि है, जिसमें संचार अथवा भाषागत अभिव्यक्तियों से प्राप्त तथ्यों का अंतर्वस्तु विश्लेषण किया जाता है। इस विधि का मुख्य कार्य गुणात्मक तथ्यों को श्रेणियों में व्यवस्थित करके उन्हें मात्रात्मक अथवा परिणात्मक रूप में प्रस्तुत करना होता है। इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से सत्यता की परीक्षा और पुनर्परीक्षण किया जा सकता है। गुडे एवं हॉट ने अपनी पुस्तक 'मैथड्स इन सोशियल रिसर्च' में अंतर्वस्तु विश्लेषण के बारे में कहा है कि समाचार–पत्रों के विश्लेषण एवं तर्कपूर्ण संरचना के लिए एवं अच्छे तथा विश्वसनीय निष्कर्षों के लिए वैज्ञानिक पद्धति का होना आवश्यक है और वह अंतर्वस्तु विश्लेषण है।

4.4.2 अंतर्वस्तु विश्लेषण की विशेषताएं :

1. संचार सामग्री में प्रवृत्तियों का वर्णन करना : अंतर्वस्तु विश्लेषण में अध्ययन की विषय–वस्तु की प्रकृति एवं परिवर्तनों को लिखा जाता है। आजकल के शोध अध्ययन विषय वस्तु की श्रेणियों का ही अध्ययन करते हैं यद्यपि इनकी अतिरिक्त श्रेणियां अध्ययन को और अधिक मूल्यवान बना सकती हैं। इसके अलावा एक ही व्यवस्था को लगातार काफी समय तक प्रयोग किया जाए तो कुछ नये तथ्य सामने आ सकते हैं।

2 संचार से अंतर्राष्ट्रीय भिन्नताओं को प्रकट करते हैं : अंतर्वस्तु विश्लेषण द्वारा संचार में व्याप्त अंतर्राष्ट्रीय भिन्नताओं को प्रकट किया जा सकता है। एक ही समस्या, जैसे युद्ध अथवा अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भिन्न–भिन्न अर्थों में व्याख्या की जा सकती है।

3. संचार के माध्यमों अथवा स्तरों की तुलना करना : संचार के भिन्न–भिन्न माध्यम, जैसे (समाचार–पत्र, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलिविजन, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि) एवं भिन्न–भिन्न स्तर न केवल जनसमूहों को आकर्षित करते हैं। बल्कि वे समान विषयों को भिन्न भिन्न अर्थों में व्यक्त करते हैं।

4. संचार के स्तरों का निर्माण एवं लागू करना : अंतर्वस्तु विश्लेषण द्वारा संचार स्तर का वर्णन किया जा सकता है। संचार स्तर के मूल्यांकन में संचार स्तरों की स्वीकृति तथा सामग्री विश्लेषण द्वारा संचार की विषय–वस्तु की तुलना की जाती है।

5. विद्वता के विकास को खोजना : अन्तर्वस्तु विश्लेषण का प्रयोग सामाजिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों तथा साहित्य के विभिन्न रूपों में किया जाता है। यह अध्ययनकर्त्ता के लिए क्षेत्रों की रचना एवं विकास के वर्णन के लिए एक लाभदायक साधन बन सकता है।

6. उद्देश्य के विपरीत संचार वस्तु का आडिट करना : प्रत्येक संचार माध्यम का एक स्पष्ट अथवा अस्पष्ट उद्देश्य अथवा उद्देश्यों का पुंज होता है। वस्तु के गुणों की माप उद्देश्यों का सम्मानजनक वर्णन करती है। अतः अंतर्वस्तु विश्लेषण का प्रयोग संचारकर्त्ता के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों के अंतर्गत संचार वस्तु में गलत वर्णन एवं गलतियों को सुधारने के लिए किया जा सकता है।

7. गुणात्मक तथ्यों को मात्रात्मक रूप प्रदान करना : सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत गुणात्मक तथ्य प्राप्त होते हैं, जिनका विश्लेषण प्राय संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में

अंतर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा ही गुणात्मक तथ्यों को मात्रात्मक रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

8. विषय से संबद्ध तथ्यों का संकलन : अंतर्वस्तु विश्लेषण की प्राथमिक आवश्यकता अध्ययन विषय से संबंधित आवश्यक तथ्यों का सावधानीपूर्वक चुनाव होता है। जिन तथ्यों को हम विश्लेषण के लिए चुनते हैं और उनकी सूची तैयार करनी होती है. उदाहरण के लिए यदि हमें समाचार–पत्रों में प्रकाशित कुछ विशेष समाचारों अथवा किसी उपन्यासकार द्वारा रचित उनके उपन्यासों का अंतर्वस्तु विश्लेषण करना है तो सर्वप्रथम हमें विभिन्न श्रेणियों के प्रासंगिक समाचारों अथवा उस उपन्यासकार के उपन्यासों की संपूर्ण सूची तैयार करनी होगी। निदर्शन पद्धति के द्वारा हम उनमें से निर्धारित संख्या में तथ्यों का चुनाव कर सकते हैं परंतु ऐसा तभी करना आवश्यक होता है जब समाचार–पत्रों की संख्या अथवा उपन्यासों की संख्या अधिक हो।

9. अध्ययन अथवा विश्लेषण की इकाइयों का चयन : अंतर्वस्तु विश्लेषण के इस चरण में अध्ययन विषय से संबंधित इकाइयों का निर्धारण और चयन किया जाता है। विश्लेषण से संबंधित ये इकाइयां अनेक प्रकार की हो सकती हैं। जो अग्रलिखित हैं :

(i) शब्द – अंतर्वस्तु विश्लेषण में 'शब्द' सबसे छोटी इकाई के रूप में प्रयुक्त होता है। ये शब्द संकेत अथवा इकाई संकेत के रूप में भी जाने जाते हैं। शब्दों के संगठन के आधार पर ही किसी विचारधारा के महत्व का विश्लेषण किया जाता है। एक लेख में प्रयुक्त शब्दों को अलग–अलग गिना जा सकता है और उसके आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि कौन–सी विचारधारा कितनी महत्वपूर्ण है, उसका क्या औचित्य है? और भविष्य में उसका क्या महत्व रहेगा? उदाहरण के लिए चुनाव भाषणों का विश्लेषण शब्दों के आधार पर ही किया जाता है। इसके अलावा पत्र–पत्रिकाओं में किस अंश को महत्व दिया जाता है इसका अध्ययन विश्लेषण भी शब्दों को इकाई मानकर किया जाता है।

(ii) प्रसंग–अंतर्वस्तु विश्लेषण की दूसरी बड़ी इकाई प्रसंग है। इसे वाक्य अथवा अनुच्छेद भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत विस्तृत विवरण संभव है। प्रसंग सबसे महत्वपूर्ण इकाई है, इसके प्रयोग से किसी व्यक्ति के भाषण अथवा वार्तालाप के महत्व को बताया जा सकता है। सामग्री विश्लेषण की इकाई के रूप में वाक्य अथवा अनुच्छेद का पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष महत्व है। वाक्य तथा अनुच्छेद प्रमुख और गौण दो प्रकार के होते हैं।

(1) प्रमुख वाक्य–सामान्यतः समाचार–पत्रों के मुख्य पृष्ठ पर अथवा मुख्य समाचारों के आरंभ में प्रसारित किया जाता है।

(2) गौण वाक्य –ये सामान्य महत्व के वाक्य होते हैं। अतः सभी प्रमुख एवं गौण वाक्यों को विश्लेषण की इकाई मानकर अंतर्वस्तु विश्लेषण किया जा सकता है।

(iii) पात्र–अंतर्वस्तु विश्लेषण की इकाई के रूप में किसी नाटक, उपन्यास, कहानी, चलचित्र अथवा दूरदर्शन के किसी पात्र का चयन किया जाता है। उदाहरण के लिए शेक्सपीयर के नाटकों से पोर्शिया जैसे चर्चित पात्र के चरित्र को लेकर सरलतापूर्वक विश्लेषण किया जा सकता है।

(iv) मद – मद अथवा आइटम या विषय अंतर्वस्तु विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण इकाई है। यह मद कोई किताब, मैग्जीन का लेख अथवा कहानी, भाषण, रेडियो प्रोग्राम, एक पत्र, पत्रिका, समाचार अथवा प्रचार का साधन, एक संपादकीय अथवा कोर्ट का स्वयं प्रस्तुत वर्णन हो सकता है। इन मदों का विश्लेषण करके किसी देश अथवा क्षेत्र में संचार के साधनों का विकास एवं समृद्धता ज्ञात की जा सकती है, जैसे अन्य समाचार एजेंसियों की तुलना में बी.बी.सी. लंदन की लोकप्रियता का होना इस बात का प्रमाण है कि उसके पास समाचार की मदें अथवा आईटम अधिक हैं तथा विश्वसनीय हैं।

(v) स्थान व समय का भाव–संचार के क्षेत्र में स्थान व समय का माप अंतर्वस्तु विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण इकाई है। स्थान से तात्पर्य किसी समाचार–पत्र, पत्रिका अथवा लिखित साहित्य में किसी व्यक्ति विशेष के विचारों को मिलाने वाले स्थान से है। उदाहरण के लिए भारत के प्रधानमंत्री का विदेश दौरा भारत के विदेश संबंधों को किस प्रकार प्रभावित करता है इसका विश्लेषण इस आधार पर किया जा सकता है कि विदेश की पत्र–पत्रिकाओं में उनकी यात्रा के विवरण को कितना स्थान दिया गया। इसी प्रकार समय का तात्पर्य रेडियो, टेलिविजन अथवा अन्य संचार माध्यमों पर प्रसारित कार्यक्रमों की अवधि से है। तात्पर्य यह है कि किसी कार्यक्रम की लोकप्रियता का मूल्यांकन इस आधार पर हो सकता है कि उसका कुल प्रसारण कितने समय तक हुआ। इसी प्रकार राजनीतिक दलों से संबंधित विचारों अथवा समाचारों के प्रसारण में कितना अधिक समय दिया गया इसे प्रमुख राजनीतिक दल का अन्य दलों के सापेक्ष बढ़ते प्रभाव के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

10. इकाइयों का श्रेणियों में विभाजन : अंतर्वस्तु विश्लेषण की विभिन्न इकाइयों का चुनाव कर लेने के पश्चात उन्हें कुछ निश्चित श्रेणियों अथवा वर्गों में विभाजित कर लिया जाता है, ऐसा करने से व्यवस्थित एवं विश्वसनीय तथ्य प्राप्त करने में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए व्यक्तित्व भेद के आधार पर परंपरागत और आधुनिक अथवा अंतर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व जैसी श्रेणियां बनाई जा सकती हैं। इसी प्रकार यदि कथन को आधार माना जाए तो सभी कथनों को काल्पनिक और वास्तविक, सार्थक और निरर्थक, प्रत्यक्ष व परोक्ष, सामान्य एवं महत्वपूर्ण आदि श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। अर्थात अंतर्वस्तु विश्लेषण में इकाइयों का निर्धारण करने के साथ–साथ इनसे विशेष श्रेणी अथवा वर्ग का निर्माण करना भी आवश्यक होता है।

11. श्रेणियों का परीक्षण : अंतर्वस्तु विश्लेषण की एक अन्य विशेषता है कि इसमें अध्ययन की इकाइयों के आधार पर एक वस्तुनिष्ठ या वैषयिक निष्कर्ष प्राप्त करना होता है। अतः यह आवश्यक है कि इकाई सूची में दी गई प्रत्येक सूची या श्रेणी का परीक्षण करें और उनकी विश्वसनीयता अथवा सार्थकता की जांच करें। श्रेणियों की प्रमाणिकता का परीक्षण करने के लिए यदि पहले से ही कुछ मापदंडों का निर्धारण कर लिया जाए तो यह कार्य अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस प्रकार समान मापदंडों के आधार पर सभी श्रेणियों का परीक्षण संभव हो सकता है।

12. अध्ययन की रूपरेखा तैयार करना : अध्ययन की इकाइयों के निर्माण तथा उनके श्रेणियों में विभाजन एवं परीक्षण के पश्चात अंतर्वस्तु विश्लेषण की वास्तविक रूपरेखा तैयार की जाती है। इस कार्य के लिए संबंधित विषयों अथवा चरों की एक सूची तैयार कर लेना आवश्यक होता है। इसके पश्चात विभिन्न चरों के महत्व को देखते हुए संकेतन का कार्य किया जाता है। इस प्रकार रूपरेखा का निष्कर्ष अध्ययनकर्त्ता को विषय पर केंद्रित करने में सहायक होता है।

13. अंतर्वस्तु की इकाइयों का मापन : अंतर्वस्तु विश्लेषण के इस स्तर पर अध्ययन विषय से संबंधित इकाइयो का सांख्यिकीय प्रविधियों द्वारा मापन, गणन एवं अभिव्यक्तिकरण संपन्न किया जाता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण के इस स्तर से ही विश्लेषण की वास्तविक क्रियाओं का आरंभ होता है। विभिन्न इकाइयों को उनके महत्व के आधार पर जो भार प्रदान किया जाता है, उसकी गणना करके गुणात्मक अध्ययन को परिमाणात्मक स्वरूप में परिवर्तित करना संभव हो पाता है। तात्पर्य यह है कि एक अध्ययनकर्त्ता अंतर्वस्तु की

इकाइयों का माप जितनी अधिक कुशलतापूर्वक कर लेता है, विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष उतने ही वस्तुनिष्ठ अथवा वैषयिक हो जाते हैं।

14. विश्लेषणात्मक व्याख्या : अंतर्वस्तु विश्लेषण की इकाइयों एवं श्रेणियों के परिमाण हैं। ऐसी विश्लेषणात्मक व्याख्या तथ्यों के उचित वर्गीकरण एवं सारणीकरण द्वारा ही संभव हो पाती है। विश्लेषणात्मक व्याख्या के द्वारा तथ्यों में पाई जाने वाली समानताएं एवं विभिन्नताएं स्पष्ट हो जाती हैं। इन्हीं समानताओं और विभिन्नताओं के आधार पर एक विशेष तथ्य की विश्लेषणात्मक व्याख्या करना संभव हो पाता है।

15. प्रतिवेदन निर्माण : अंतर्वस्तु विश्लेषण के लिए तथ्यों, इकाइयों, श्रेणियों के चुनाव एवं परीक्षण तथा अंतर्वस्तु की इकाइयों के मापन और विश्लेषणात्मक व्याख्या करने के पश्चात अध्ययन के संबंध में अंतिम प्रतिवेदन तैयार किया जाता है। इस चरण में अंतर्वस्तु विश्लेषण से संबंधित संपूर्ण प्रक्रिया को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिवेदन के अंतर्वस्तु मुख्य रूप से हम विश्लेषणों का वैज्ञानिक विवरण, उनकी व्याख्या देने के साथ यथासंभव सारणी ग्राफ का चित्र के माध्यम से विश्लेषण को प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ ही आगामी अध्ययनों के लिए नवीन दिशाओं का संकेत भी दिया जाता है, इसी स्तर पर कुछ महत्वपूर्ण, कथनों, उदाहरणों तथा नमूनों की सहायता से प्रतिवेदन को रोचक एवं व्यावहारिक बनाने का भी प्रयत्न किया जाता है।

4.4.3 अंतर्वस्तु विश्लेषण का महत्व :

सामाजिक शोध की प्रविधियों में अंतर्वस्तु विश्लेषण एक नवीन प्रविधि है। जटिल तथ्यों के विश्लेषण करने में विद्वान इसके उपयोग तथा महत्ता को समझते हैं। सामान्यतः अंतर्वस्तु विश्लेषण का उपयोग सभी प्रकार के गुणात्मक तथ्यों के अध्ययन में किया जा सकता है। परंतु फिर भी जनसंचार अथवा समूह संप्रेषण के अध्ययन में अंतर्वस्तु विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अंतर्वस्तु विश्लेषण के महत्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

1. गुणात्मक तथ्यों का—परिमाणात्मक तथ्यों में रूपांतरण : अधिकांश सामाजिक घटनाओं, तथ्यों एवं समस्याओं की प्रकृति गुणात्मक, जटिल एवं सूक्ष्म होती है, जिसके कारण इनका वैज्ञानिक विश्लेषण करना कठिन हो जाता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण इन गुणात्मक, जटिल एवं सूक्ष्म तथ्यों का श्रेणीकरण, सारणीकरण एवं मापन करके उन्हें परिमाणात्मक तथ्यों में रूपांतरित करता है। इस प्रकार इकाई अथवा बहुत सी इकाइयां जब अपनी अमूर्तता से

हटकर परिमाणात्मक रूप ग्रहण कर लेती हैं तब उनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन एवं विश्लेषण करना संभव हो पाता है। उदाहरण के लिए नेताओं के भाषण, वार्तालाप, समाचार पत्र के संपादकीय कथन, कहानी, उपन्यास के पात्र के कथन आदि गुणात्मक तथ्य हैं जिनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन करना कठिन प्रतीत होता है। लेकिन अंतर्वस्तु विश्लेषण में विशेष इकाइयों को आधार मानकर उनका इस प्रकार श्रेणीकरण और मापन किया जाता है कि निष्कर्षों को मात्रात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाना संभव हो जाता है।

2. संचार संबंधी अध्ययनों में उपयोगी : वर्तमान में संचार के विभिन्न साधनों के रूप में जनसंचार एवं अंतः वैयक्तिक साधनों का प्रयोग किया जाता है। इन संचार साधनों की प्रकृति एवं प्रभाव अमूर्त होता है, जिसके कारण इनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन कर कोई निष्कर्ष देना कठिन प्रतीत होता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण द्वारा न केवल विभिन्न संचार साधनों की प्रकृति को समझा जा सकता है बल्कि उनके तुलनात्मक प्रभाव का भी विश्लेषण किया जा सकता है। वृहत संचार माध्यमों के अध्ययन में अंतर्वस्तु विश्लेषण की उपयोगिता इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाती है कि इनके द्वारा सत्तावादी नेतृत्व के स्वरूपों का भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. प्रचार माध्यमों का विस्तार : वर्तमान युग में जनसंचार के विभिन्न साधनों का एक प्रमुख कार्य प्रचार है। अंतर्वस्तु विश्लेषण में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। अंतर्वस्तु विश्लेषण के माध्यम से यह ज्ञात किया जा सकता है कि प्रचार में विभिन्न माध्यम, जनसामान्य को किस रूप में एवं किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। ऐसे विश्लेषण से प्रचार साधनों के प्रभाव का अध्ययन कर नवीन प्रचार साधनों को विकसित किया जा सकता है, इसके अलावा यह भी समझा जा सकता है कि प्रचार के कुछ विशेष साधनों को किस प्रकार अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है अर्थात् अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रचार माध्यमों का विस्तार करने की एक उपयोगी प्रणाली है।

4. राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संचार साधनों का तुलनात्मक अध्ययन : संचार साधनों के रूप में मुख्यतः रेडियो, टेलीविजन, समाचार–पत्र अथवा पत्रिकाएं, इंटरनेट आदि आते हैं। इनमें प्रकाशित तथ्यों एवं सूचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना कभी–कभी आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए भारत जैसे देश में जहां कुछ समाचार–पत्र एवं टेलीविजन चैनल सरकारी प्रभाव में हैं तथा कुछ उद्योगपतियों अथवा अन्य राजनीतिक दलों के प्रभाव में होते हैं इनमें एक ही समाचार की अंतर्वस्तु विभिन्न समाचार–पत्रों एवं न्यूज चैनलो में

भिन्न–भिन्न रूप में प्रकाशित होती है। इसके अतिरिक्त किसी अंतर्राष्ट्रीय समस्या से संबंधित सामग्री को भिन्न–भिन्न रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में अंतर्वस्तु विश्लेषण द्वारा एक तुलनात्मक अध्ययन करके वास्तविकता को ज्ञात किया जा सकता है।

5. व्यक्तित्व संबंधी अध्ययनों में उपयोगी : अंतर्वस्तु विश्लेषण का उपयोग व्यक्तित्व संबंधी अध्ययनों में भी किया जाता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा दिए गए भाषण, वार्तालाप, लेख, कहानी अथवा उपन्यास आदि सामग्री का विश्लेषण करके उस व्यक्ति के व्यक्तित्व में निहित विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों आदि को ज्ञात किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अंतर्वस्तु विश्लेषण द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्वों की श्रेणियों का निर्माण करके व्यक्तित्व के कुछ विशेष प्रारूपों को भी ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद की रचनाओं के आधार पर कहा जाता है कि प्रेमचंद एक साम्यवादी एवं प्रगतिवादी विचारक होने के साथ ही शोषितों और उपेक्षितों के पक्षधर थे तब इस निष्कर्ष का आधार अंतर्वस्तु विश्लेषण ही होता है।

अंतर्वस्तु विश्लेषण की उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जन संचार के क्षेत्र में अंतर्वस्तु विश्लेषण का उपयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है।

4.4.4 अंतर्वस्तु विश्लेषण की प्रमुख समस्याएं :

अंतर्वस्तु विश्लेषण का उपयोग जनसंचार साधनों के प्रभाव एवं सार्थकता का मूल्यांकन करने में किया जाता है। इस प्रविधि के उपयोग में आने वाली अनेक व्यावहारिक समस्याओं का निम्नांकित वर्णन किया जा रहा है–

1. वस्तुनिष्ठता की समस्या : अंतर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा गुणात्मक तथ्यों का श्रेणीकरण करके उन्हें कुछ वस्तुनिष्ठ तथ्यों में परिवर्तित किया जाता है। अध्ययनकर्त्ता द्वारा जिन तथ्यों को वस्तुनिष्ठ रुप में प्रस्तुत करने का दावा किया जाता है, उनकी वस्तुनिष्ठता की जांच किन आधारों पर की जाए यह समस्या आती है। उदाहरण के लिए– अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग करने वाला शोधकर्त्ता यदि किसी नेता द्वारा दिए गए भाषण के वाक्यों को विभिन्न समाचार–पत्रों से संकलित करके उनके आधार पर एक निष्कर्ष देता है तो अन्य लोगों के पास इन भाषणों के अंशों अथवा उन पर आधारित विश्लेषण की वस्तुनिष्ठता का कोई ठोस आधार नहीं होता।

2. समग्र को परिभाषित करने की समस्या : अंतर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा अध्ययन विषय के समग्र को परिभाषित करने की समस्या आती है। उदाहरण के लिए यदि 'राष्ट्रीय प्रेस' के

समग्र माने तो इसकी परिभाषा कैसे की जाए यह अत्यंत कठिन समस्या है। राष्ट्रीय प्रेस के समग्र मानने से व्यावहारिक एवं भावनात्मक कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं।

3. परिमाण की समस्या : जैसा कि विदित है कि अंतर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा गुणात्मक तथ्यों को परिमाणात्मक अथवा मात्रात्मक तथ्यों में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसा करने में अध्ययनकर्त्ता के समक्ष दो प्रमुख कठिनाइयां आती हैं। पहली, विश्लेषण के लिए इकाइयों का निर्धारण किस प्रकार किया जाए, यहां यह ज्ञात है कि जनसंचार के क्षेत्र में इकाइयों के रूप में शब्द, वाक्य, पात्र, मद, स्थान अथवा समय आदि को लिया जाता है, इन्हें चुनने में परिमापन का आधार भावनात्मक हो जाता है। दूसरा गुणात्मक तथ्यों को परिमाणात्मक रूप में परिवर्तित करने में अध्ययनकर्त्ता द्वारा विभिन्न तथ्यों को एक समुचित भार देना, इसमें कठिनाई यह है कि जब गुणात्मक तथ्यों के कार्य कारण संबंध ज्ञात करना कठिन है, तो उन्हें एक समुचित भार किस प्रकार दिया जाए।

4 समय की समस्या : जन संचार साधनों से निदर्शन की एक और समस्या समय की समस्या है। किसी समाचार–पत्र की सामान्य नीति से परिचित होना कठिन कार्य नहीं है। समाचार–पत्र के दैनिक या मासिक प्रकाशन को पढ़कर हम सामान्य नीति का पता लगा सकते हैं। अगर अध्ययनकर्त्ता कई महीनों के समाचार–पत्रों से निदर्शन लेना चाहे तो यह प्रयत्न कठिन कार्य हो जाता है। जब तक अध्ययनकर्त्ता उन घटनाओं का निदर्शन व्यवस्थित रूप से न लेता रहे।

5. श्रेणियों के निर्माण की समस्या : अंतर्वस्तु विश्लेषण में विभिन्न चरों से संबंधित सामग्री को एक–एक श्रेणी में परिवर्तित करके उनका विश्लेषण किया जाता है। इसमें कठिनाई यह है कि शोधकर्त्ता के पास कोई भी ऐसे निश्चित मापदंड नहीं होते जिनको आधार मानकर वह श्रेणियों का निर्माण कर सके। इसके अतिरिक्त समान चरों पर आधारित अंतर्वस्तु को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करने के लिए विभिन्न अध्ययनकर्त्ता अलग–अलग नियमों अथवा मापदंडों का उपयोग करते हैं। इसके फलस्वरूप अध्ययन में अनुरूपता का अभाव हो जाता है।

6 प्रति निदर्शन की समस्या : अंतर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा सामान्यतः किसी कथन, विचार अथवा मूल्य से संबंधित इकाइयों का श्रेणीकरण करके एक सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है तथा इसके द्वारा जनसंचार से संबंधित किसी विशेष साधन के प्रभाव का वास्तविक मूल्यांकन किया जाता है। इस संबंध में समस्या यह आती है कि यदि एक छोटे

से समूह अथवा किसी व्यक्ति विशेष के विचारों, कथनों अथवा शब्दों के आधार पर एक निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया हो तो उसका सामान्यीकरण किस प्रकार किया जाए। अंतर्वस्तु विश्लेषण के लिए अध्ययनकर्त्ता के पास इकाइयों के चुनाव अथवा निदर्शन के लिए कोई ठोस आधार नहीं होता।

उपरोक्त समस्याओं को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि विश्लेषणकर्त्ताओं अथवा अध्ययनकर्त्ताओं को विभिन्न इकाइयों, जैसे–कहानियां, संपादकीय, लेख, मुख्य शीर्ष के आधार पर विश्लेषण करना चाहिए। विश्लेषणकर्त्ता स्वयं भी अपने पढ़ने की आदत में इतना सुधार करे कि वह पढ़ते ही पता लगा सके कि कौन सी इकाइयां उसके निदर्शन का सही प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। ऐसे कार्यों में धैर्य, चतुरता व अनुभव परमावश्यक है।

4.4.5 अपनी प्रगति जांचिए :

(च) अन्तर्वस्तु विश्लेषण का अर्थ परिभाषित करें।

(छ) अन्तर्वस्तु विश्लेषण के कारकों का वर्णन करो।

(ज) अन्तर्वस्तु विश्लेषण के कितने चरण होते हैं?

(झ) अन्तर्वस्तु विश्लेषण की प्रमुख समस्याएँ बताओ।

(ञ) अन्तर्वस्तु विश्लेषण की श्रेणियों को कितने आधारों पर विभाजित किया गया है?

4.4.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(च) अन्तर्वस्तु विश्लेषण साक्षात्कारों, प्रश्नावलियों, अनुसूचियों तथा अन्य लिखित या मौखिक भाषा तथा अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त अनुसंधान तथ्यों के अन्तर्वस्तु का क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा परिमाणात्मक वर्णन के लिए अपनाई जाने वाली एक प्रविधि है।

(छ) अन्तर्वस्तु विश्लेषण के कारण :

- प्रचार के तरीको का पता लगाना
- पाठ्य पुस्तकों का विश्लेषण
- साहित्यिक व मौलिक समस्याएँ

(ज) अन्तर्वस्तु विश्लेषण के 8 चरण होते हैं :

- विषय से संबंधित तथ्यों का चुनाव
- इकाईयों का चयन
- इकाईयों का श्रेणियों में विभाजन
- श्रेणियों का परीक्षण

– अध्ययन रूपरेखा की संरचना

– इकाईयों का मापन

– विश्लेषणात्मक संरचना

– प्रतिवेदन तैयार करना

(झ) अन्तर्वस्तु विश्लेषण की समस्याएँ :

– समग्र को परिभाषित करने की समस्या

– जनसंचार साधनों की समस्या

– निदर्शन की अच्छी प्रविधियों की समस्या

(ञ) अन्तर्वस्तु विश्लेषण की श्रेणियों को दो अन्य आधारों पर बाँटा जा सकता है :

– क्या कहा जा सकता है?

– कैसे कहा जा सकता है?

4.5 प्रतिवेदन लेखन

प्रत्येक सामाजिक सर्वेक्षण अथवा शोध का आधार वैज्ञानिक पद्धति व प्रविधियों द्वारा संकलित तथ्य हैं। पर तथ्यों का ढ़ेर स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि उनका वर्गीकरण व सारणीयन न किया जाए। पर केवल वर्गीकरण व सारणीयन भी निरर्थक है जब तक इनके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करके कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को न निकाला जाए। इन निष्कर्षों को यदि सर्वेक्षणकर्त्ता या शोधकर्त्ता अपने दिमाग में ही भरकर रख दे तो उससे न तो विज्ञान का और न ही किसी और का कोई भला हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण सर्वेक्षण व शोध–कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रयुक्त पद्धति व प्रविधियों, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण व व्याख्या तथा निष्कर्षों व सुझावों को एक लिखित रूप दिया जाए जिससे कि वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके, दूसरे वैज्ञानिक उसी विषय के सम्बन्ध में फिर से अनुसन्धान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकें तथा निष्कर्षों व सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना व सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है। यही सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट कहलाता है।

प्रतिवेदन के स्वरूप के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह किस प्रकार के पाठकों को ध्यान में रखकर लिया गया है। शोध प्रतिवदेन के पाठकों में अन्य सामाजिक वैज्ञानिक बहुधा सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। यदि शोध अनुप्रयुक्त विज्ञान के क्षेत्रों में हो तो उसके पाठकों में उसे प्रयुक्त करने वाले भी होने की सम्भावना है। जैसे यदि लोक प्रशासन या व्यापार प्रबन्ध के क्षेत्र में कोई शोध कार्य हुआ हो तो सम्भवतः प्रशासक या प्रबन्धक भी उसके विषय में जानना चाहेंगे। जन–साधारण के कुछ सदस्य भी उसमें रुचि रखने वाले हो सकते हैं। इन विभिन्न प्रकार के लोगों की रुचि और ज्ञान में भेद होगा। सामाजिक वैज्ञानिक तथा कुछ प्रशासन सांख्यिकीय तथा अन्य प्रकार के विश्लेषण को भी समझने और परखने की स्थिति में होंगे जबकि बहुत से अन्य पाठकों को इस विषय में उतना ज्ञान नहीं होगा। इसलिए प्रतिवेदन लिखते समय शोधकर्त्ता को यह ध्यान रखना होता है कि उसके पाठक मुख्यतया कौन होंगे और फिर इसे उनके अनुरूप बनाना होता है। यह भी हो सकता है कि प्रतिवेदन कई प्रकार से लिखा जाए – जैसे, एक तो वैज्ञानिक पाठकों के लिए और दूसरे जन–साधारण के लिए।

4.5.1 रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य

(Object of preparing the Report)

सर्वश्री गुडे एवं हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि शोध–प्रक्रिया वैज्ञानिक के लिए बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक होती है। फिर भी आगे–पीछे कभी–न–कभी एक ऐसी स्थिति आती है जब कि रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो ही जाता है किसी भी प्रकार के अध्ययन में एक स्थिति ऐसी आती ही है जबकि उसके पश्चात् अध्ययन–कार्य को चालू रखना अनुपयोगी एवं संकलित तथ्यों का और अधिक विश्लेषण व व्याख्या अनावश्यक प्रतीत होने लगती है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि किन्हीं पूर्व शर्तों के अनुसार एक वैज्ञानिक या आरम्भिक विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक निर्धारित समय के अन्दर शोध–कार्य को समाप्त कर उसके निष्कर्षों को प्रस्तुत करे। साथ ही शोध या सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त सामग्री एवं नवीन तथ्य इतने रुचिकर होते हैं कि अनुसन्धानकर्त्ता उसके परिणामों को अन्य लोगों तक पहुंचाने के लिए स्वयं उत्सुक रहता है। अन्त में, जिन–जिन लोगों ने अध्ययन–कार्य में अर्थ, सुझाव, सहायता व समय के रूप में योग दिया है, वे यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि उनके सहयोग या सहायता का

क्या परिणाम निकला। इन सब आवश्यकताओं व माँगों की पूर्ति करने के उद्देश्य से ही सर्वेक्षण के अन्तिम चरण में एक रिपोर्ट तैयार की जाती है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट तैयार करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. ज्ञान का एक प्रलेख प्रस्तुत करना (To present a Document of Knowledge) : प्रत्येक सर्वेक्षण या शोध–कार्य का निष्कर्ष निश्चय ही किसी–न–किसी प्रकार के ज्ञान का एक स्रोत होता है। इसमें पर्याप्त समय, धन तथा परिश्रम भी लग जाता है। इसके बाद भी अगर अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को शोधकर्त्ता केवल अपने ही दिमाग में रख लें तो उस ज्ञान की वास्तविक उपयोगिता स्वतः ही नष्ट हो जाएगी और दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं होगा। अतः उसे एक क्रमबद्ध लिखित रूप प्रदान करना परमावश्यक है जिससे कि वह ज्ञान का एक लिखित प्रलेख (Document) बन जाए और विज्ञान की एक धरोहर के रूप में उसे सुरक्षित रखना सरल हो जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण या शोध की एक रिपोर्ट अवश्य ही तैयार की जाती है।

2. ज्ञान के विस्तार के लिए (For the extension of Knowledge) : रिपोर्ट तैयार करने का यह भी कम महत्वपूर्ण उद्देश्य नहीं है। पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या से न केवल अध्ययन–विषय का ही स्पष्टीकरण होता है और न केवल उस विषय से सम्बन्धित ही कुछ निष्कर्ष निकलते हैं, अपितु इस बात की भी खोज हो जाती है कि उस विषय से सम्बन्धित अन्य कौन–कौन सी समस्याएँ हैं जिनके विषय में आगे और गहन अध्ययन किया जा सकता है। जब अपने शोध–कार्य तथा उसके निष्कर्षों को अनुसन्धानकर्त्ता एक लिखित रूप देने बैठता है तो वह स्वतः ही अन्य ऐसी अनेक नई समस्याओं, नए प्रश्नों तथा विषयों की ओर भी संकेत करता है जोकि शोध या सर्वेक्षण का विषय बन सकते हैं। इस दृष्टिकोण से रिपोर्ट का एक उद्देश्य अनुसन्धान के नए क्षेत्रों (avenues) से हमें परिचिति करवा कर ज्ञान के विस्तार की निरन्तरता को बनाए रखना है।

3. अनुसन्धान के परिणामों को दूसरों के सूचनार्थ प्रस्तुत करना (To present the Results of the Investigation for others' Information) : शोधकर्त्ता के लिए अपने अनुसन्धान के परिणामों को प्रदर्शित करना कई कारणों से आवश्यक हो जाता है। प्रथमतः शोध–कार्य

से प्राप्त निष्कर्षों या परिणामों को सम्बन्धित लोगों अथवा शोध में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के सामने प्रकट करना अनुसन्धानकर्त्ता का कर्तव्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि अनुसन्धान का विषय सार्वजनिक महत्व का है तो उसके परिणामों से लोगों को अवगत कराना आवश्यक हो जाता है। द्वितीयः यदि सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आधार पर ही कोई सरकारी अथवा गैर सरकारी कार्यवाही होनी है तो भी यह काम रिपोर्ट तैयार न होने तक रुका रहता है। तृतीयतः कभी–कभी सरकार किसी विशेष विषय पर सर्वेक्षण इसलिए करवाती है कि उससे सम्बन्धित कोई योजना उसे बनानी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करनी जरूरी हो जाती है। चतुर्थतः जिन लोगों ने सर्वेक्षण–कार्य में अपना धन, परामर्श, सहायता व समय देकर सहयोग प्रदान किया है, उन सभी के मन में सर्वेक्षण के परिणामों को जानने की स्वभाविक इच्छा होती है। उनकी सन्तुष्टि के लिए भी रिपोर्ट को तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त, जब अनुसन्धान–कार्य किसी डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए किया जाता है तो उस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि रिपोर्ट प्रस्तुत न की जाए। अन्त में, प्रायः सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त नवीन तथ्य इतने रोचक व रुचिकर प्रतीत होते हैं कि स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता उनके परिणामों को अन्य लोगों को भी दिखाने व आत्मगौरव प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। अनुसन्धान की एक व्यवस्थित रिपोर्ट तैयार हो जाने से उपरोक्त सभी छः उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है।

4. विषयों में अन्तर्निहित वास्तविक स्थिति को समझाना (To Explain the Actual Conditions Involved) : रिपोर्ट का उद्देश्य केवल अनुसन्धान के निष्कर्षों या परिणामों को व्यक्त करना ही नहीं अपितु उन्हें इसे व्यवस्थित व वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करना है कि अध्ययन–विषय के विभिन्न पक्षों की वास्तविकताएँ स्वतः ही प्रकट हो जाएँ और उस रिपोर्ट को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनमें अन्तर्निहित वास्तविक स्थिति तथा अन्तः सम्बन्धों को स्पष्ट रूप में समझ सके। सर्वेक्षण या शोध की सार्थकता विषय को केवल स्वयं समझ लेने में नहीं अपितु दूसरों को भी समझाने में है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट इस ढंग से तैयार की जाती है कि विषय में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति उसे पढ़कर लाभ उठा सकें तथा अनुसन्धान से प्राप्त नवीन तथ्यों व उनके समाजिक परिणामों को समझ सकें।

5. **वैधता की जाँच (Test of Validity)** : जब तक शोध या सर्वेक्षण रिपोर्ट को तैयार नहीं किया जाएगा, तब तक इस बात की जाँच नहीं की जा सकती कि वह अध्ययन प्रमाणिक व प्रयोग सिद्ध है अथवा नहीं। रिपोर्ट की जाँच करके ही यह बताया जाता है कि अनुसन्धान में शुद्ध तथा यथार्थ सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं अथवा केवल अनुमान और संदेहात्मक सूचना ही अध्ययन का आधार है। रिपोर्ट में वर्णित तथ्य व निष्कर्ष सार्वजनिक रूप से प्रकाशित एक विषय बन जाता है। (यदि रिपोर्ट को सरकार के द्वारा गुप्त न रखा जाए)। अतः यदि किसी को भी अध्ययन की वैधता के सम्बन्ध में सन्देह होता है तो वह स्वयं फिर से अनुसन्धान कर उसके निष्कर्षों की परीक्षा व पुनर्परीक्षा कर सकता है। इस प्रकार की परीक्षा व पुनर्परीक्षा से या तो पहले वाले अध्ययन की वैधता सिद्ध होती है अथवा उसके निष्कर्षों को तथ्यपूर्ण रूप में गलत प्रमाणित किया जाता है। दोनों ही दशाओं में विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि परीक्षा व पुनर्परीक्षा के योग्य होना वैज्ञानिक अध्ययन का सबसे उल्लेखनीय गुण है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो जाता है।

4.5.2 अनुसन्धान प्रतिवेदन तैयार करने से सम्बन्धित कुछ सामान्य सिद्धान्त (General Principles of Preparation of Report)

1. प्रतिवेदन को पाठकों के प्रकार के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए। पाठक तीन श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं– (क) विशेषज्ञ, (ख) जन–साधारण, (ग) प्रयोगिक अनुसन्धानकर्त्ता। प्रतिवेदन का उद्देश्य अनुसन्धानकर्त्ता के साथ–साथ संचार श्रोताओं के साथ संचार करना है।

2. प्रतिवेदन स्पष्ट तथा सार्थक होना चाहिए।

3. प्रतिवेदन के अन्तर्गत विस्तार एवं सूक्ष्मता का उचित समावेश होना चाहिए।

4. प्रत्येक स्थान पर समझने के लिए आवश्यक सूचना अवश्य दी होनी चाहिए।

5. पाठकों को समालोचना हेतु पर्याप्त सूचना प्रदान की जानी चाहिए।

6. धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के निष्कर्षों के साथ ही उन मदों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए जिनसे अनुसन्धानकर्त्ता किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता है।

7. यथासम्भव अध्ययन के परिणामों को अन्य अध्ययनों के परिणामों तथा सामान्य समस्याओं से सम्बन्धित किया जाना चाहिए।

8. यथासम्भव कार्य–रीतियों, विशिष्ट–समस्याओं तथा अन्य शीर्षकों से सम्बन्धित ऐसी सूचना को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो अन्य अनुसन्धानकर्त्ता के लिए अभिरुचिपूर्ण हों।

9. सार्थकता परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए।

10. फुटनोटों (Foot-notes) का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही किया जाना चाहिए।

11. व्यावहारिक अनुसन्धान प्रतिवेदन में यह भी स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए कि अनुसन्धान परिणामों का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है तथा इनकी प्रायोगिकता सम्बन्धी सीमाएँ क्या हैं?

12. प्रतिवेदन का कार्य प्ररचना तैयार होते ही आरम्भ कर दिया जाना चाहिए तथा शीघ्रतिशीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए।

13. अन्तरिम प्रतिवेदन (Interim Reports) तैयार करते रहना चाहिए। ऐसा करना विशेष रूप से व्यावहारिक अनुसन्धान में आवश्यक है।

14. प्रतिवेदन यथासम्भव सूक्ष्म होना चाहिए।

4.5.3 एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Report)

एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है क्योंकि 'अच्छे'–'बुरे' की अवधारणा सबके लिए समान नहीं होती। फिर भी सर्वेक्षण की प्रक्रिया और रिपोर्ट को तैयार करना एक टेकनिकल काम होने के कारण एक अच्छी रिपोर्ट की कुछ आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वे विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. एक अच्छी रिपोर्ट का ऊपरी डाल–डाल स्वच्छ तथा आकर्षक होता है। सफेद रंग के अच्छे किस्म के कागज पर स्पष्ट तथा सुन्दर ढंग के टाइप से रिपोर्ट को छपवाया जाता है। साथ ही, उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिए आकर्षक शीर्षकों, चित्रों, फोटो आदि का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जाता है।

2. रिपोर्ट की भाषा अत्यधिक सन्तुलित होती है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही करना पड़ता है। पर इस सम्बन्ध में, जैसा कि डॉ॰ श्यामचरण दुबे का सुझाव है, विषय का स्पष्टीकरण लेखक का उद्देश्य होता है और इसकी सिद्धि के

लिए पारिभाषिक शब्दावली–सम्बन्धी सैद्धान्तिक मतभेदों के प्रति लेखक किसी भी प्रकार के विशिष्ट–आग्रह अथवा दुराग्रह को अपनाता नहीं। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि पारिभाषिक शब्दावली के अत्यधिक प्रयोग से रिपोर्ट कहीं इतनी बोझल और क्लिष्ट न हो जाए कि उसे समझने के लिए विशेषज्ञों की सहायता लेनी पड़े; दूसरी ओर, रिपोर्ट की भाषा ने आलंकारिक तथा साहित्यात्मक शैली भी इतना उग्र रूप धारण न कर ले कि तथ्यों की वास्तविकताओं पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ जाए या तथ्यों को बढ़ा चढ़ाकर कहने से सत्यता प्रकट न हो सके। अतः भाषा तथा शैली के सौन्दर्य की ओर झुककर रिपोर्ट को अतिश्योक्तिपूर्ण तथा अस्वाभाविक बना देने की प्रकृति से दूर रहकर ही सन्तुलित भाषा में रिपोर्ट को तैयार किया जाता है।

3. एक अच्छी रिपोर्ट में एक ही प्रकार के तथ्यों को बार–बार दोहराया नहीं जाता क्योंकि ऐसा करने से रिपोर्ट को पढ़ते समय पाठक ऊब जाते हैं। तथ्यों में तार्किक क्रम अवश्य रहता है। अर्थात् स्वतन्त्र रूप से समझे जाने वाले तथ्य पहले आ जाते हैं और वे तथ्य बाद में प्रदर्शित किए जाते हैं जिनको समझने के लिए दूसरे तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है।

4. एक अच्छी रिपोर्ट में तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक तौर पर और सुस्पष्ट रूप में होती है ताकि रिपोर्ट को पढ़कर ही लोगों को यह विश्वास हो जाए कि रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है वह काल्पनिक नहीं है अपितु तथ्ययुक्त तथा प्रयोग–सिद्ध है। इसके लिए सूचनाओं के स्रोतों का उल्लेख रिपोर्ट में पृष्ठतल–टिप्पणियों आदि (Footnotes and Reference) के रूप में प्रत्येक अध्ययन में दे दिया जाता है।

5. एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रमाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त रूप में प्रमाण–सहित प्रस्तुत किये जाते हैं अर्थात् उन कारणों का भी उल्लेख किया जाता है जिन पर कि वह निष्कर्ष आधारित है।

6. एक अच्छी रिपोर्ट में व्यावहारिकता का तत्व भी स्पष्ट होता है। अर्थात् उच्चस्तरीय रिपोर्ट इस प्रकार की होती है कि उसे पढ़कर अधिक–से–अधिक लोग लाभ उठा सकें। इस प्रकार की रिपोर्ट से केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं अपितु कुछ व्यावहारिक लाभ भी होता है। अच्छी रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज–सुधार से संबंधित भविष्य–योजनाओं के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान करती है।

7. एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन–पद्धति व प्रविधियों, अध्ययन क्षेत्र, निदर्शन आदि के सम्बन्ध में स्पष्ट तथा विस्तृत विवरण होता है और साथ ही सूचना के सभी स्रोतों का उल्लेख किया जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि यदि किसी भी व्यक्ति को अध्ययन के निष्कर्षों के सम्बन्ध में सन्देह हो तो वह रिपोर्ट में उल्लेखित प्रविधियों आदि की सहायता से उन निष्कर्षों की वैधता की जाँच कर सकता है।

8. एक अच्छी रिपोर्ट के अध्ययन में आई कठिनाइयों तथा सर्वेक्षण की सीमाओं (Limitations) का भी स्पष्ट रूप में उल्लेख होता है। दूसरे शब्दों में, कमियों को छिपाकर अध्ययन के पूर्णतया यथार्थ होने की डींग नहीं हांकी जाती है। ऐसा न करने का एक और उद्देश्य होता है और वह यह है कि अध्ययन की कठिनाइयों व कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने पर भविष्य के अध्ययनों में अन्य सर्वेक्षणकर्त्ताओं द्वारा पहले से ही उनके सम्बन्ध में सचेत रहने तथा उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अवसर मिलता है।

4.5.4 प्रतिवेदन की रूपरेखा
(Outline of Report)

एम. पार्टन ने प्रतिवेदन की निम्नलिखित रूपरेखा प्रस्तुत की हैं :

1. प्रस्तावना सम्बन्धी सामग्री **(Prefeatory Material) :**

(अ) शीर्षक पृष्ठ,

(ब) सन्दर्भ सारिणी,

(स) उदाहरणों, सारिणियों, एवं चार्टों की सूची,

(द) प्रस्तावना, प्राक्कथन अथवा संचारण पत्र,

(य) परिणामों का सारांश, सार अथवा संस्तुतियाँ।

2. प्रतिवेदन का मजमून अथवा विषय **(Subject & Matter of Report) :**

(अ) परिचय

(क) उद्देश्य–समस्या का कथन एवं परिभाषण,

(ख) विषय क्षेत्र–सर्वेक्षण का समय, स्थान एवं सामग्री,

(ग) संगठन एवं कार्यरीति (यहाँ सामान्य विवरण होना चाहिए किन्तु विस्तृत विवरण परिशिष्टों में होना चाहिए)

(i) प्रयोग में लाए गए ढंग एवं प्रविधियाँ,

(ii) अनुसूचियाँ अथवा प्रश्नावलियाँ अथवा प्रयुक्त पत्रों की प्रतिलिपियाँ,

(iii) इन्हें कभी–कभी परिशिष्टों में भी रखा जाता है।

(ब) परिणामों का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण

(क) तथ्यों का प्रतिवेदन–आँकड़ों, सारिणियों, रेखाचित्रों इत्यादि का प्रस्तुतीकरण,

(ख) आँकड़ों का विश्लेषण एवं विवेचन,

(ग) प्रस्तुत किए गए आँकड़ों पर आधारित निष्कर्ष एवं सम्भव संस्तुतियाँ,

(घ) आवश्यक सामग्री का सूक्ष्म साराँश (यदि यह ऊपर एक में नहीं दिया गया है)।

3. पूरक सामग्री (Supplementary Material) :

(अ) परिशिष्ट (इनमें प्रायः सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रतिदर्शन एवं अन्य प्रणालियों का विस्तृत प्रतिवेदन होता है),

(ब) ग्रन्थ सूची,

(स) सूची,

(द) शब्द–संग्रह (यदि परिभाषा की आवश्यकता रखने वाले वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग किया हो)।

यदि अनुसन्धान कार्य विभिन्न चरणों में किया गया है तो रैचले मार्क्स द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित रूपरेखा को प्रयोग में लाया जा सकता है–

शीर्षक (Heading)

1. सामान्य परिचय,

2. सामग्री एवं ढँगों का सामान्य विवरण,

3. प्रथम चरण :

(अ) परिचय

(ब) सामग्री एवं ढँग,

(स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण,

(द) परिणामों पर विचार–विमर्श।

4. द्वितीय चरण :

(अ) परिचय

(ब) सामग्री एवं ढँग,

(स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण,

(द) परिणामों पर विचार–विमर्श

5. तृतीय चरण :

(अ) परिचय

(ब) सामग्री एवं ढँग,

(स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण,

(द) परिणामों पर विचार–विमर्श

6. सामान्य विचार–विमर्श।

4.5.5 अनुसन्धान–प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियाँ (Major Criteria of Research Report)

एक अच्छे प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियाँ निम्नलिखित निश्चित की जा सकती हैं–

1. क्या प्रतिवेदन में शोध समस्या (प्राक्कल्पना) को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है?
2. क्या प्रतिवेदन में अध्ययन की सामग्री एवं विषय–क्षेत्र को स्पष्ट रूप से लिखा गया है?
3. क्या प्रतिवेदन में प्रयोग की गई अवधारणाओं को परिभाषित किया गया है?
4. क्या प्रतिवेदन में तथ्य–संकलन की प्रविधियों का स्पष्ट वर्णन किया गया है?
5. क्या प्रतिवेदन में वर्गीकरण, संकेतीकरण, सारणीयन एवं अन्य उदाहरणों सम्बन्धी सामग्री का उपयोग तर्कसंगत, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से किया गया है?
6. क्या प्रतिवेदन को कहीं तोड़–मरोड़ कर तो प्रस्तुत नहीं किया गया है?
7. क्या शोध की सीमाओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है?
8. क्या पाठकों की दृष्टि से प्रतिवेदन की भाषा, शैली आदि सरल और बोधगम्य है?
9. क्या प्रतिवेदन को व्यवस्थित एवं सावधानीपूर्वक तरीकों से प्रस्तुत किया गया है?
10. क्या परिणामों की शोधकर्त्ता ने अन्य सम्बन्धित उपलब्ध शोध–परिणामों से तुलना की है?
11. क्या शोधकर्त्ता ने विषय से सम्बन्धित भविष्य में शोध की सम्भावनाओं के लिए सुझाव दिए हैं?

4.5.6 अनुसन्धान–प्रतिवेदन का प्रकाशन

(Publication of Research Report)

अनुसन्धान के प्रतिवेदन का प्रकाशन एवं उसकी सफलता अनेक कारकों पर आधारित होती हैं। कुछ प्रमुख कारकों को यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. प्रतिवेदन के विषय की रुचि का क्षेत्र क्या है? उसके पाठक किस वर्ग एवं श्रेणियों के हैं? उनकी सम्भावित संख्या क्या होगी? प्रतिवेदन का पाठक–समाज में महत्त्व क्या होगा?
2. प्रतिवेदन का आकार, पृष्ठों की संख्या, प्रत्येक पृष्ठ पर शब्दों की संख्या कितनी होगी? सारणियों, रेखाचित्रों आदि की संख्या एवं प्रकृति कैसी है?
3. प्रतिवेदन का प्रकाशन–मूल्य कितना होगा? उसका विक्रय–मूल्य कितना होगा? प्रकाशक एवं शोधकर्त्ता का लाभ का क्या प्रतिशत होगा?
4. संस्करण का आकार क्या होगा?
5. प्रतिवेदन के भविष्य में संस्करणों के प्रकाशन की क्या सम्भावनाएँ हैं?
6. प्रतिवेदन के शोधकर्त्ता की योग्यता क्या हैं? उसके प्रतिवेदन की सफलता की सम्भावना क्या है?

4.5.7 अपनी प्रगति जांचिए :

(ट) प्रतिवेदन से क्या अभिप्राय है ?

(ठ) अनुसंधान प्रतिवेदन लेखन से संबंधित कुछ सामान्य सिद्धान्त बताओ।

(ड) एक अच्छे प्रतिवेदन लेखन की विशेषताएँ बताओ।

(ढ) प्रतिवेदन की रूपरेखा को कितने भागों में बांटा जाता है?

(ण) वैज्ञानिक प्रतिवेदन से किन तीन मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति होती है?

(त) शोध की व्याख्या में किन तीन बातों का समावेश होता है?

4.5.8 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(ट) अनुसंधान के निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा करने व इससे सामाजिक योजना व सुधार की रूपरेखा तैयार हुई या नहीं, इन्ही उद्देश्यों की पूर्ति की जाँच के लिए सम्पूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है। यही प्रतिवेदन कहलाता है।

(ठ) प्रतिवेदन लेखन के सामान्य सिद्धान्त :

–प्रतिवेदन पाठकों के अनुसार तैयार होता है।

– स्पष्ट व सार्थक होना चाहिए।

– समालोचना हेतु पर्याप्त सूचना प्रदान की जानी चाहिए।

– विस्तार व सूक्ष्मता का उचित समावेश हो।

(ड) अच्छे प्रतिवेदन लेखन की विशेषताएँ :

– भाषा संतुलित होती है।

– ऊपर कवर स्वच्छ व आकर्षक होता है।

– एक ही प्रकार के तथ्यों को बार–बार दोहराया नहीं जाता है।

– तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक आधार पर होती है।

(ढ) प्रतिवेदन की रूपरेखा को प्रमुख रूप से तीन भागों में बांटा जाता है :

(1) प्रस्तावना संबंधी सामग्री

(2) प्रतिवेदन का विषय

(3) पूरक सामग्री

(ण) वैज्ञानिक प्रतिवेदन से तीन मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति होती है :

(1) ज्ञान के संदर्भ में उस शोध का स्थान क्या है ?

(2) अन्य वैज्ञानिक यह जान पाते हैं कि उस शोध से निष्कर्ष किस प्रकार निकाले गए हैं।

(3) शोध में प्रयुक्त सारी प्रक्रियाएँ प्रतिवेदन में ब्योरेवार दी रहती हैं।

(त) शोध की व्याख्या में तीन बातों का समावेश होता है :

(1) शोध से निकले अनुमान दूसरी परिस्थितियों में किस सीमा तक लागू हो सकते हैं ?

(2) शोध की कौन सी विशिष्ट परिस्थितियाँ अनुमानों के सामान्यीकरण को सीमित करती हैं ?

(3) शोध से किन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सका या कौन से नये प्रश्न उठे?

4.6 सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता

(Objectivity in Social Research)

यथार्थता किसी भी विज्ञान की प्रारम्भिक आवश्यकता है, और केवल आवश्यकता ही नहीं, अपितु परम उद्देश्य भी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम तथ्यों को ठीक उसी रूप में खोज न निकाले तथा उनका विश्लेषण न करें जिस रूप में वे वास्तव में हैं। वास्तविक रूप में एक घटना–विशेष का अध्ययन करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। इसके विपरीत, व्यक्तिनिष्ठ या वैषयिक अध्ययन का तात्पर्य उस अध्ययन से है जिसमें अनुसंधानकर्त्ता के मनोभावों या विचारों की प्रधानता होती है, जबकि वस्तुनिष्ठ अध्ययन में तथ्य प्रधान होता है। व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन वर्णनात्मक तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन विश्लेषणात्मक होता है। व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन के निष्कर्ष अनुसंधानकर्त्ता के अपने मस्तिष्क की उपज होते हैं, जबकि वस्तुनिष्ठ अनुसंधान वास्तविक तथ्यों के वास्तविक अवलोकन, परीक्षण व विश्लेषण पर आधारित होता है। प्रथम में व्यक्ति बोलता है तथा सत्य पर पर्दा डालने की कोशिश करता है, परन्तु दूसरे में स्वयं तथ्य बोलता है और सत्य की खोज करता है। इसलिए विज्ञान, जो कि सत्य की खोज का एक साधन है, वस्तुनिष्ठ अध्ययन को ही अपना आधार मानता है और वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के प्रति सदैव सचेत रहता है। परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है क्योंकि व्यक्ति सामाजिक घटनाओं का अपनी इन्द्रियों द्वारा निरीक्षण तथा परीक्षण करता है और विभिन्न सामाजिक घटनाओं व परिस्थितियों के प्रति इन इन्द्रियों का प्रत्युत्तर प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान नहीं होता है। जैसे हम लोकप्रशासन की परिभाषा को ही लेते हैं तो विभिन्न विचारक या सामाजिक वैज्ञानिक इसको अपने–अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। कुछ विचारक तो इसका सम्बन्ध केवल कार्यपालिका से बताते हैं, जहां पर सरकार का कार्य मुख्य रूप से होता है, कुछ इसका सम्बन्ध सरकार के तीनों स्तम्भों से बताते हैं जैसे कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका और कुछ इसको लोक नीति को पूर्ण करने अथवा क्रियान्वित करने के साधन के रूप में परिभाषित करते हैं। इस प्रकार की विविधता के कारणों को लुण्डबर्ग (Lundberg) ने इस प्रकार उल्लेखित किया है।

1. किसी भी घटना को प्रत्यक्ष करने की शक्ति बहुत–कुछ प्रशिक्षण तथा अन्य शारीरिक व मानसिक अवस्थाओं पर निर्भर करती है और ये सभी प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न–भिन्न होती हैं।

2. किसी भी घटना के प्रति हमारा प्रत्युत्तर भौतिक तथा पर्यावरण–सम्बन्धी (Environmental) अवस्थाओं – जैसे थकान, आयु, तापक्रम आदि द्वारा प्रभावित होता है।

3. किसी घटना विशेष को हम किस रूप में ग्रहण करेंगे और किस प्रकार उसका विश्लेषण करेंगे यह हमारे पिछले अनुभवों पर निर्भर करता है। कहा जाता है कि 'मनुष्य अपने भूतकाल की आँखों से निरीक्षण करता है।' भूतकाल की ये आँखें या पिछले अनुभव प्रत्येक व्यक्ति के एक नहीं होते। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति किसी घटना को न तो वस्तुनिष्ठ रूप में और न ही समान रूप में देख पाता है। सामाजिक अनुसन्धानों में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति इसी कारण कठिन होती है और इसी कठिनाई में तथ्यों के खोज की समस्याएँ निहित हैं। पर इस सम्बन्ध में और कुछ विवेचना करने से पूर्व वस्तुनिष्ठता के अर्थ को समझ लेना उचित होगा।

4.6.1 वस्तुनिष्ठता का अर्थ तथा परिभाषा
(Meaning and Definition of Objectivity)

'वास्तव में जैसा है' विशेष का अध्ययन करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। तटस्थ और पक्षपात रहित निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन विश्लेषणात्मक होता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन वास्तविक तथ्यों के वास्तविक अवलोकन, परीक्षण और विश्लेषण पर आधारित होता है। अपने स्वयं की भावना, विचार, उचित–अनुचित के आदर्श, विश्वास, आशा और आकांक्षाओं के रंग में न रंगकर किसी भी तथ्य या घटना को 'जैसा वह है' उसी रूप में देखना और विवेचना करना वस्तुनिष्ठता अथवा वैषयिकता है। घटना या तथ्य का यह वास्तविक रूप बुरा हो सकता है, कटु हो सकता है, अनुसन्धानकर्त्ता के अपने आदर्शों तथा मूल्यों के विपरीत हो सकता है, फिर भी उस घटना को यदि वह उसके मूल रूप में देखता है और समझता है तो वह वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में सफल होता है। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण रखने वाला अनुसन्धानकर्त्ता केवल सत्य को ही देखता है। विभिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों ने वस्तुनिष्ठता को भिन्न–भिन्न रूप से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

लावल कार (Lowell Carr) के अनुसार, "सत्य की वस्तुनिष्ठता का अर्थ यह है कि घटनामय संसार के किसी व्यक्ति के विश्वासों, आशाओं अथवा भय से स्वतंत्र एक वास्तविकता है जिसको हम अंतर्दृष्टि और कल्पना से नहीं, बल्कि वास्तविक अवलोकन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।"

ग्रीन (Green) के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता प्रमाण की निष्पक्षता से परीक्षण करने की इच्छा एवं योग्यता है।"

फेयरचाइल्ड (Fairchild) के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता या वैषयिकता का अर्थ उस योग्यता से है जिसमें एक अनुसंधानकर्त्ता स्वयं को उन परिस्थितियों से अलग रख सके जिसमें वह सम्मिलित है और द्वेष व उद्वेग के स्थान पर निष्पक्ष प्रमाणों या तर्क के आधार पर तथ्यों को उनकी स्वाभाविक पृष्ठभूमि में देख सके।"

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक अनुसन्धान की वह स्थिति है जिसमें संसार की विभिन्न घटनाओं या तथ्यों की वास्तविकता प्रकट होती है और हमारे लिए सत्य का ज्ञान सम्भव होता है। घटनामय संसार की वास्तविकता सत्य की खोज की कुंजी है और वस्तुनिष्ठता उसी कुंजी से समस्त रहस्यों का रहस्योद्घाटन करने का एक समाधान है। इस प्रकार वैषयिकता वैज्ञानिक अनुसन्धान की आधारशिला है। अतः इसके विषय में विस्तृत विवेचना की आवश्यकता है।

4.6.2 सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता का महत्त्व (Importance of Objectivity in Social Research)

सामाजिक अनुसन्धान और वस्तुनिष्ठता का संबंध बड़ा गहरा है। वस्तुनिष्ठता के बिना अनुसन्धान को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी घटना विशेष का अध्ययन किया जाये, तो वस्तुनिष्ठता के अभाव में विभिन्न व्यक्ति उससे विभिन्न प्रकार के परिणाम निकालेंगे। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्त्ता के पक्षपात के कारण वास्तविक तथ्यों पर प्रकाश नहीं पड़ता। अतः किसी एक घटना या समस्या के अध्ययन को वैज्ञानिक रूप देने के लिए उसमें वस्तुनिष्ठता का होना आवश्यक है। यदि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता है तो विभिन्न शोधकर्त्ताओं को किसी एक घटना के अध्ययन से एक ही प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त होंगे। सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता के महत्त्व को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

1. उचित रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले तथ्यों की प्राप्ति के लिए **(To Get an Adequate Representative Facts) :** अध्ययन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि अध्ययन–वस्तु सभी पक्षों का समुचित स्पष्टीकरण हो। यह तब तक सम्भव नहीं जब तक कि अध्ययन में इस प्रकार के तथ्यों का संकलन नहीं किया जाता जोकि एक सामाजिक घटना के विभिन्न पक्षों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें और उस घटना से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में एक संतुलित ज्ञान प्राप्त कर सके और यह तभी सम्भव है जब वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाया जाए।

2. सत्यापन के लिए **(For verification) :** अध्ययन में वस्तुनिष्ठता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा अध्ययन हमारे अपने विचारों, भावनाओं व कल्पनाओं द्वारा प्रभावित नहीं बल्कि वास्तविक तथ्यों पर आधारित है। वही सामाजिक अनुसन्धान विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है जिसकी कि हम कभी भी पुनः परीक्षा अथवा सत्यापन कर सकें। सत्यापन या पुनः परीक्षा का तत्व वैज्ञानिकता की एक आवश्यक शर्त है और इस शर्त की पूर्ति वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को अपनाए बिना सम्भव नहीं है। हमारा अध्ययन किस सीमा तक पुनः परीक्षा या सत्यापन के योग्य है। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किस सीमा तक वस्तुनिष्ठता को प्राप्त कर लिया गया है।

3. नए अनुसन्धानों की सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए **(To Explore Possibilities of New Investigations) :** वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के दौरान हम एक घटना से सम्बन्धित अनेक नई समस्याओं को समझते हैं और उनके विषय में अध्ययन करने की प्रवृत्ति हमारे अन्दर पैदा होती है। वास्तविकता यह है कि वस्तुनिष्ठता केवल एक सत्य को ही नहीं ढूंढ़ निकालती, बल्कि अन्य अनेक सम्भावित सत्यों की ओर संकेत भी करती है जिनके विषय में अनुसन्धान करने की इच्छा अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओं में पैदा हो सकती है।

4. समाजिक–विज्ञान को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान करने के लिए **(To attribute scientific status of Sociology) :** समाजिक–विज्ञान को यथार्थ विज्ञान न मानने वाले यह तर्क पेश करते हैं कि समाजिक–विज्ञान में वैषोयिक अध्ययन नहीं होता है क्योंकि अनुसन्धानकर्त्ता अपना दृष्टिकोण, सत्यता की खोज में सट्टेबाजी, पक्षपात, विशिष्ट आदर्श को प्रस्थापित करने की अभिलाषा रखता है और ऐसा होने से इस धारणा को पनपने में सहायक हुआ है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान 'समाजिक–विज्ञान' वैज्ञानिक

स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। समाजशास्त्र को इस आरोप से बचाने के लिए सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति बहुत आवश्यक है। यह प्रमाणित हो चुका है कि सामाजिक घटनाओं का भी वस्तुनिष्ठ अध्ययन सम्भव है। आज जरूरत इस बात की है कि सामाजिक अनुसन्धान में पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, कल्पना तथा पूर्वधारणा से अपने को विमुक्त रखते हुए सामाजिक घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने का लगातार प्रयत्न करें। समाजिक–विज्ञान को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान करने का और कोई विकल्प नहीं। इसीलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वस्तुनिष्ठता जरूरी है।

5. वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के लिए (For use of Scientific Method) : सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का अपनाया जाना अध्ययन की यथार्थता के लिए पहली शर्त है। कोई भी अध्ययन कार्य ठीक होगा या गलत यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अध्ययनकर्त्ता वैज्ञानिक पद्धति का ठीक ढंग से प्रयोग कर रहा है या नहीं। परन्तु वैज्ञानिक पद्धति का समुचित प्रयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसमें वस्तुनिष्ठता का अभाव हो। इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति की पहली शर्त वस्तुनिष्ठता है और इसकी प्राप्ति वस्तुनिष्ठ पद्धति द्वारा ही सम्भव है। इसलिए यदि हमारा उद्देश्य समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का सफल प्रयोग है तो अपने अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का हमें प्रयत्न करना होगा।

6. सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान की वृद्धि के लिए (For Advancement of Knowledge About Social Phenomena) : वस्तुनिष्ठता वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति की आधारशिला है। इस आधारशिला के बिना हमारे वर्तमान ज्ञान–भण्डार की समृद्धि असम्भव है। यदि वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाए तो उन घटनाओं के सम्बन्ध में हमारे वास्तविक ज्ञान की वृद्धि होती जाएगी। कोई भी समाजशास्त्री यदि अज्ञानता के अन्धकार को दूर करना चाहता है तो उसे वैषयिक दृष्टिकोण अपनाना होगा।

7. निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए (To Achieve Unprejudiced Conclusions) : सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता का महत्त्व यह है कि इसके बिना निष्पक्ष निष्कर्षों तक पहुँचना अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सम्भव नहीं होगा। वस्तुनिष्ठता का अर्थ ही है पक्षपात रहित होकर घटनाओं की वास्तविकताओं को ढूंढ़ निकालना। इसीलिए अनुसन्धानकर्त्ता के

लिए निर्भर योग्य निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए तब तक सम्भव नहीं जब तक उसमें वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने की क्षमता न हो। वस्तुनिष्ठ अध्ययन द्वारा ही अध्ययनकर्त्ता के लिए यह सम्भव होता है कि वह अपने व्यक्तिगत पक्षपातों, मूल्यों तथा आदर्शों आदि से स्वतन्त्र रहते हुए किसी सामाजिक घटना के सम्बन्ध में निर्णय योग्य निष्कर्षों को निकाल सके।

4.6.3. वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में कठिनाइयाँ (Difficulties in Obtaining Objectivity)

सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। किंतु इसे प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयां हैं। इन कठिनाइयों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

1. भावात्मक प्रभाव (Emotional Effect) : सामाजिक अनुसन्धान में, जिन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, वे भावात्मक प्रभाव से परिपूर्ण होती हैं। भौतिक विज्ञानों की भांति सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धानकर्त्ता अपने को घटना के प्रभाव से वंचित नहीं कर सकता। भौतिक विज्ञानों की विषय–वस्तु, भौतिक पदार्थ हैं। इन पदार्थों का अध्ययन, अनुसन्धानकर्त्ता के हृदय में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। लेकिन सामाजिक अनुसन्धान में, मनुष्य की संस्कृति, सभ्यता, व्यवहार अथवा प्रवृत्ति का अध्ययन किया जाता है, जिससे शीघ्र ही अनुसंधानकर्त्ता इनसे प्रभावित हो जाता है। इसके फलस्वरूप पक्षपातपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। अनुसन्धानकर्त्ता इस प्रकार अपने निष्कर्ष को तटस्थ नहीं कर पाता।

2. विषय–वस्तु की जटिलता (Complexity of Subject Matter) : सामाजिक अनुसन्धान में, वैयक्तिकता प्राप्त करने में द्वितीय कठिनाई अध्ययन की विषय वस्तु के कारण पैदा होती है। सामाजिक जीवन अत्यंत जटिल और उलझा हुआ है। सामाजिक जीवन के अधिकांश तत्त्व अस्थायी हैं। उनमें सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ अंतर उत्पन्न होता है।

3. एकरूपता का अभाव (Lack of Uniformity) : सामाजिक समस्याओं के बारे में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनमें एकरूपता का नितांत अभाव है। एक प्रकार की समस्या का स्वरूप, विभिन्न काल में अलग–अलग होता है। भौतिक विज्ञानों के अंतर्गत समस्या का

स्वरूप प्रत्येक काल में समान होता है। लेकिन सामाजिक समस्याओं की प्रकृति बदलती रहती है। उनमें एकरूपता स्थिर नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता एकरूपता को उत्पन्न नहीं होने देती।

4. नैतिक प्रभाव (Moral Effects) : अनुसन्धानकर्त्ता के नैतिक आदर्शों का प्रभाव भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है। लुंडबर्ग का मत है कि सामाजिक अनुसंधान में अशुद्धता उत्पन्न होने का एक सामान्य कारण अनुसन्धानकर्त्ता का नैतिक पक्षपात है। अनुसन्धानकर्त्ता तथ्यों के संकलन और विवेचन करने में नैतिक आदर्शों का भी ध्यान रखता है। इनका प्रभाव मनुष्य के ह्रदय में इतना दृढ़ होता है कि वह प्रायः इनके विपरीत किसी भी निष्ठता को स्वीकार नहीं करता। विज्ञान तभी तक शुद्ध है, जब तक कि वह शोधकर्त्ता के नैतिक प्रभाव से दूर हो। लेकिन अनुसन्धानकर्त्ता का नैतिक प्रभाव, परिणाम को प्रभावित करता है तो इससे अशुद्धता पैदा हो जाती है। इसलिए अनुसन्धानकर्त्ता का नैतिक प्रभाव वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है।

5. मौलिक तथ्यों पर प्रभाव (Effects on Fundamental Facts) : अनुसन्धानकर्त्ता का लक्ष्य निहित घटनाओं में मौलिक तथ्यों का वर्णन करना है। यह मौलिक तथ्य अपने सजातीय तथ्यों का प्रतिनिधि होता है। अगर ऐसा नहीं होगा तो अनुसन्धान सार्वभौमिक सत्य का आधार नहीं बन सकता। यदि वह अपनी ओर से अध्ययन में थोड़ा–सा भी अपना निर्णय जोड़ता है। तो तथ्यों की मौलिकता समाप्त हो जाती है। इसलिए तथ्यों को वास्तविक दशाओं में दर्शाने के लिए वस्तुनिष्ठता की अत्यंत आवश्यकता है।

6. निष्पक्ष निष्कर्ष की प्राप्ति (For Unprejudiced Conclusion) : अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अध्ययन के पश्चात् ऐसे निष्कर्षों को प्रस्तुत करना चाहिए जो वास्तविकता तथा प्रमाणिकता पर आधारित हों। जनसाधारण इन निष्कर्षों को तभी स्वीकार कर सकता है जब यह पक्षपात और स्वार्थपरता से रहित होंगे। अतः अनुसन्धानकर्त्ता को पूरी तरह तटस्थ रहना चाहिए।

7. सामान्य ज्ञान द्वारा उत्पन्न भ्रम (Misunderstanding caused by General Knowledge) : सामाजिक अनुसन्धान में प्रायः हम अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर किसी घटना या समस्या के संबंध में अपना निर्णय निश्चित करते हैं। जो सिद्धांत हमारे सामान्य ज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते उन्हें हम गलत मान लेते हैं। इसके विपरीत, अनेक

गलत सिद्धांत जो हमारे सामान्य ज्ञान से मेल खाते हैं, उन्हें हम सही मान लेते हैं। इस प्रकार भ्रम के फलस्वरूप अनेक गलत सिद्धांतों को सही मान लिया जाता है और अनेक सही सिद्धांतों को गलत मान लिया जाता है।

8. विषय–वस्तु का गुणात्मक रूप (Qualitative Nature of Subject Matter) : वस्तुनिष्ठता प्राप्ति की कठिनाई वस्तु के गुणात्मक रूप के कारण उत्पन्न होती है। गुणात्मक रूप का तात्पर्य अमूर्त से है, जिसे देख नहीं सकते, केवल अनुभव कर सकते हैं। सामाजिक विश्वास, मान्यताएं व धारणाओं आदि का रूप गुणात्मक होता है। अतएव उनके अध्ययन में भौतिक विज्ञानों की भांति निश्चित मापदंडों को प्रयोग करना कठिन है।

9. अनुसन्धानकर्त्ता का स्वार्थ (Self-interest of Researcher) : पी. वी. यंग का मत है कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की एक प्रमुख कठिनाई का कारण अनुसंधानकर्त्ता का निजी स्वार्थ भी है। कभी–कभी अनुसंधान के परिणाम में अनुसंधानकर्त्ता का निजी स्वार्थ निहित होता है। अतएव यह उन्हीं तथ्यों को खोजता है, जो उसके स्वार्थ का पूर्ति में सहायक सिद्ध हों। ऐसे अवसर पर वह स्वीकृत सिद्धांतों को अस्वीकार कर उस सिद्धांत को अपनाता है जोकि उसके विचारों के अनुकूल हो।

10. सामाजिक दर्शन का प्रभाव (Effect of Social Philosophy) : भौतक विज्ञानों में अनुसंधानकर्त्ता का संबंध जड़ और अचेतन वस्तुओं से है। लेकिन सामाजिक अनुसंधान में मानव समाज का अध्ययन किया जाता है। अतः समाज का वर्तमान दर्शन भी अनुसंधानकर्त्ता को प्रभावित करता है। इस कारण वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में बाधा पैदा होती है। इसके अतिरिक्त अनुसंधानकर्त्ता स्वयं भी उसी समाज का एक सदस्य होता है जिसे वह अध्ययन के लिए खोलता है। उसके अंदर भी मानव स्वभाव की कमियों का होना स्वाभाविक है। उसके विचार, संस्कार, धारणायें इत्यादि समाज के पर्यावरण द्वारा पहले से निश्चित रहती हैं। वह अपने पूर्व विचार, संस्कार व धारणाओं के अनुकूल, अनुसंधान के परिणामों को टालने के प्रयत्न करता है जिससे अनुसंधानकर्त्ता की तटस्थता समाप्त हो जाती है और वह अपने अनुसधान में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं कर पाता है।

11. अनुसन्धान की शीघ्रता (Research Conducted Hurriedly) : अनेक अवसरों पर अनुसंधान कार्य बड़ी शीघ्रता से संपन्न किया जाता है। इस शीघ्रता के कारण अनुसंधानकर्त्ता के अंदर प्रायः किसी भी निष्कर्ष को मान लेने की प्रवृत्ति होती है। इसी

कारण सही परिणाम प्राप्त करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक अनुसंधान की विषय–वस्तु इतनी जटिल होती है जिसके लिए दीर्घकालीन अध्ययन और धैर्य भी आवश्यक होता है। किंतु अनुसंधान कार्य की शीघ्रता के फलस्वरूप पूर्णतया सही निष्कर्ष प्राप्त नहीं होते हैं। केवल आंशिक रूप से सत्य परिणामों को ही पूर्णरूपेण सत्य मान लिया जाता है। अतः शीघ्र संपन्न किये गये अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं होता है।

4.6.4 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन (Means for Achieving Objectivity)

यह सच है कि सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर इसका तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि सामाजिक घटनाओं के अनुसन्धान वस्तुनिष्ठता से रहित होते हैं और उनमें यथार्थ निष्कर्ष की सम्भावनाएँ बिलकुल ही नहीं होती हैं। वास्तविक परिस्थिति इससे कुछ विपरीत ही है। वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में कठिन हो सकती है, पर कभी भी असम्भव नहीं। अपने अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर समाजशास्त्रियों ने उन अनेक साधनों का पता लगा लिया है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। कहा जाता है कि वस्तुनिष्ठ रहने की इच्छा और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। तटस्थ रहने की इच्छा का सम्बन्ध स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता से है और उसकी अभिव्यक्ति इस रूप में होती है कि अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए सचेत रहता है और उसके लिए समस्त व्यक्तिगत राग–द्वेष, विचार, मूल्य, पक्षपात, मिथ्या–झुकाव आदि से हर पग पर बचता है। दूसरी और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न इस बात का द्योतक है कि अनुसन्धानकर्त्ता ऐसी विधियों को अपनाता है, ऐसे तथ्यों को संकलित करने का प्रयत्न करता है कि उसका अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ हो सके। इन इच्छाओं तथा प्रयत्नों को ही उन साधनों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ये साधन निम्नलिखित हैं :

1. प्रयोगसिद्ध विधियां (Empirical Methods) : प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध अध्ययन–पद्धतियां वे विधियां हैं जिनके द्वारा अनुसंधानकर्त्ता या अध्ययनकर्त्ता को स्वयं क्षेत्र में जाकर सूचना संकलित करनी पड़ती है। केवल पुस्तकों के आधार पर, मनघड़ंत अथवा सुनी–सुनाई बातों

पर विश्वास करके जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे व्यक्ति प्रधान (Subjective) होते हैं, वैषयिक नहीं। बाह्य साधनों के द्वारा जो सूचना या सामग्री मिलती है, वह हमारे विचारों के विपरीत होते हुए भी सही है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति निरीक्षण परीक्षण करके बाह्य साधनों से वही सामग्री प्राप्त करेगा जिनके निष्कर्ष समान होंगे। व्यक्तिगत चिंतन–मनन कितना ही व्यवस्थित क्यों न हो, उसमें भ्रम तथा भ्रांतियों के समावेश की संभावना हो सकती है किंतु क्षेत्रीय साधनों से एकत्रित सूचना में व्यक्तिगत मान्यताओं का प्रभाव कम हो जाता है। ठोस, निश्चित और गणनात्मक विवरण वैषयिकता प्राप्त करने में पर्याप्त सहायक होता है। सामाजिक अनुसंधान में इन प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध विधियों का प्रचलन बढ़ रहा है और इसमें अधिकाधिक वैषयिकता लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। उदाहरण के लिए 'रहन–सहन का स्तर' (Standard of Living) एक सामान्य शब्द है जिसके माप का कोई विशेष साधन नहीं है, लेकिन प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध पद्धतियों के आधार पर जीवनोपयोगी वस्तुओं और गुणों की निश्चित सूची बनाकर उनकी प्राप्ति तथा अभाव का प्रत्यक्ष अध्ययन करके किसी को भी व्यक्ति, परिवार, समूह या वर्ग का निश्चित 'रहन–सहन का स्तर' समझने का वर्णन करने में सुविधा हो गई है और इसमें अध्ययनकर्त्ता का निर्णय या मत कहीं अधिक बाधक नहीं बनता। मानवशास्त्री भी इन विधियों के प्रयोग से अपने अध्ययनों में वैषयिकता प्राप्त करने जा रहे हैं।

2. परिभाषाओं और अवधारणाओं का प्रमापीकरण (Standardization of Terms and Concepts) : समाज–विज्ञान में पारिभाषिक शब्द तथा अवधारणाओं का विशेष अर्थ लगाया जाता है और यह विशेष अर्थ भी विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न रूप में लगाया है। इस प्रकार स्वयं विद्वानों ने 'समाज' शब्द को मूर्त और अमूर्त रूपों में समझा और प्रयोग किया है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञानों में कोई व्यक्ति किसी शब्द का मनमाना अर्थ लगा लेता है और जब एक ही तथ्य को प्रकट करने वाला निश्चित शब्द नहीं होता तो खोज के निष्कर्ष भी समान नहीं होते। इस दृष्टि से वैषयिकता होते हुए भी छिप जाती है। समाज विज्ञानों के अतिरिक्त प्राकृतिक विज्ञानों में प्रत्येक शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखता है जिसे प्रत्येक अनुसन्धानकर्त्ता उसी अर्थ में प्रयोग करता है। समाज–विज्ञानों में प्रयुक्त परिभाषाओं और अवधारणाओं का समान अर्थ न होने के कारण अनुसंधान या अध्ययन में एकरूपता नहीं रहती जो वैषयिकता का प्रधान आधार है। अतः अब प्रयत्न चल रहा है कि प्रत्येक

परिभाषा और शब्द निश्चित, प्रमाणित तथा प्रमाणित अर्थों में ही प्रयोग किया जाये ताकि सब लोग उसका समान अर्थ लगायें, तथा सामाजिक तथ्यों और इकाइयों को संख्यात्मक रूप में समझ सकें। ऐसा करने से अध्ययन में पर्याप्त वैषयिकता लाई जा सकती है।

3. यांत्रिक साधनों का उपयोग (Use of Mechanical Devices) : अनुसंधान में जितना ही अधिक कार्य यंत्रों के आधार पर होगा, उतनी ही अधिक वैषयिकता उपलब्ध हो सकेगी। यद्यपि सामाजिक तथ्यों के अध्ययन की प्रत्येक प्रक्रिया में यंत्रों का उपयोग संभव नहीं हो पाता है, फिर भी मनोविज्ञान में इस प्रकार के यंत्रों का सफल प्रयोग हो रहा है। समाजशास्त्र में भी तथ्यों के संकलन में 'टेपरिकार्डर', फिल्म, मानचित्र, समाजमिति पैमाने, फोटो आदि के द्वारा वैषयिक सामग्री संकलित की जा रही है। विश्लेषण व विवेचन में गणना करने, सारणीयन (Tabulation) करने आदि की मशीनों का उपयोग सफलतापूर्वक होता जा रहा है। कुछ भी हो इन साधनों के अधिक प्रयोग द्वारा वैषयिकता लाने पर हर संभव प्रयत्न किया जा रहा है।

4. प्रयोगात्मक विधियां (Experimental Method) : अध्ययन में पूर्ण वैषयिकता प्राप्त करने के लिए नियंत्रित परीक्षण (Controlled Experiment) अत्यंत उपयोगी व महत्त्वपूर्ण उपाय है। समाज–विज्ञानों में यद्यपि विषय–वस्तु को नियंत्रित करके उसका परीक्षण करना सरल नहीं है किंतु इस दिशा में सतत प्रयत्न किये जा रहे हैं। प्रयोगात्मक विधि में दो प्रकार के समूहों को चुन लिया जाता है। दोनों समूह सभी दृष्टियों से समान होते हैं। एक समूह को नियंत्रित कर दिया जाता है अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं होने दिया जाता, दूसरे समूह को परीक्षण के लिए स्वतंत्र कर दिया जाता है। यह स्वतंत्रता केवल विशेष कारक का प्रभाव मालूम करने के लिए की जाती है, अर्थात् परीक्षात्मक समूह में कोई कारक उत्पन्न करके उसका प्रभाव देखा जाता है। जैसे एलटन मेयो नें इस विधि का प्रयोग हार्थोन प्रयोग में किया था। इस प्रकार प्रयोगात्मक प्रणाली अभिमति व पक्षपात को कम कर देती है किंतु सामाजिक अनुसंधान में अभी इसका प्रयोग अधिक विकसित नहीं हुआ है। आशा है कि भविष्य में इस दिशा में महत्त्वूर्ण उपलब्धियां प्राप्त होंगी।

5. सामूहिक अनुसन्धान का उपयोग (Use of Group Research) : सामूहिक अनुसंधान का तात्पर्य यह है कि किसी भी सामाजिक समस्या की खोज केवल एक व्यक्ति के द्वारा न होकर अधिक व्यक्तियों द्वारा की जानी चाहिए। एक ही प्रकार की पद्धति तथा प्रणालियों के

द्वारा एक ही समस्या का अध्ययन जब कई अनुसंधानकर्त्ता करते हैं या फिर एक ही अनुसंधानकर्त्ता भिन्न–भिन्न प्रणालियों द्वारा एक ही समस्या का अध्ययन कर रहा होता है तो पक्षपात की संभावना बहुत कम हो जाती है। सामूहिक अनुसंधान या समूह अनुसंधान से प्राप्त प्रत्येक अध्ययनकर्त्ता के निष्कर्षों की तुलना की जाती है। तुलना करने पर यदि अंतर आता है तो इस अंतर के कारणों का पता लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त, यदि एक ही अनुसंधानकर्त्ता विभिन्न पद्धतियों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में अंतर पाता है तो वह भी अंतर का कारण ज्ञात कर सकता है। सामूहिक अनुसंधान पद्धति वास्तव में कई व्यक्तियों द्वारा एक ही समस्या के अध्ययन के लिए अधिक उपयोग में लायी जाती है। विभिन्न अनुसंधानकर्त्ताओं के निष्कर्षों में अंतर दूर करने के लिए पुनः अधिक वैषयिक अध्ययन किया जाता है और इस प्रक्रिया में पूर्ण वैषयिकता प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं, अब प्रत्येक अनुसंधानकर्त्ता को यह ध्यान होता है कि अन्य लोग भी उसी समस्या का उसी पद्धति से अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाभाविक रूप से वह प्रारंभ से ही सावधानीपूर्वक तटस्थ दृष्टि से निरीक्षण–परीक्षण विवेचन व विश्लेषण करता है, ताकि तुलनात्मक अन्वेषण में उसके निष्कर्ष ठीक उतरें। इस विधि में भी एक प्रकार से 'सांख्यिकीय नियमितता का नियम' (Law of Statistical Regularity) काम कर रहा होता है। सच तो यह है कि यह पद्धति वैषयिकता प्राप्त करने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अध्ययनकर्त्ता के दोष स्पष्ट हो जाते हैं और प्रत्येक दोष का निवारण भी हो जाता है। एक ही परीक्षण को जितनी बार दोहराया जाता है उतनी ही उसमें शुद्धता आती है। इस प्रकार सामूहिक अनुसंधान इस युग की मांग है और सामाजिक तथ्यों की जटिल प्रकृति का वैषयिक अध्ययन करने में अत्यधिक सहायक है। समाज–विज्ञानों में इसका प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

6. दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग (Use of Random Sampling Method) : वैषयिकता प्राप्ति में एक कठिनाई, "निदर्शन" चुनने के कारण भी होती है। वर्ग या समूह में से अध्ययन के लिए प्रतिनिधि इकाइयों के चुनाव के समय अध्ययनकर्त्ता की अभिमति, पक्षपात अथवा बाहरी कारकों का प्रभाव काम कर जाता है और सही प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयों या व्यक्तियों के स्थान पर ऐसी इकाइयों या व्यक्तियों को अध्ययन के लिये चुन लिया जाता है जो वास्तव में समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करती, फलस्वरूप निष्कर्ष सत्यापन व परीक्षण के योग्य नहीं होते। इस समस्या या कठिनाई को दूर करने के लिए सैंपल

चुनने के लिए 'दैव निदर्शन पद्धति' का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति के द्वारा प्रत्येक इकाई को प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने की संभावना होती है और अनुसन्धानकर्त्ता या अध्ययनकर्त्ता की इच्छा उसके चुनाव को प्रभावित नहीं कर पाती है। दैव निदर्शन सांख्यिकीय नियमितता के नियम (Law of Statistical Regularity) पर आधारित है जिसके द्वारा कभी भी अनायास चुनाव करने पर हर प्रकार की इकाइयों को चुने जाने की समान संभावना रहती है। अतः दैव निदर्शन के उपयोग से वैषयिकता लाने में पर्याप्त सहायता मिलती जा रही है।

7. प्रश्नावली और अनुसूची का उपयोग (Use of Questionnaire and Schedule) : सामाजिक घटना का अध्ययन केवल व्यक्तिगत अवलोकन अथवा सामान्य वार्तालाप तक सीमित रखकर कोई भी अनुसंधानकर्त्ता समान निष्कर्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। इस समस्या या कठिनाई को दूर करने में प्रश्नावलियां तथा अनुसूचियां विशेष तौर पर सहायक सिद्ध हुई हैं। अनुसूचियों में प्रमाणित व निश्चित प्रश्न होते हैं, जिनका निश्चित अर्थ होता है। अतः न तो प्रश्नों का अर्थ सूचनादाताओं द्वारा पृथक–पृथक लगाया जा सकता है और न ही अध्ययनकर्त्ता अपनी इच्छा से कोई कम या अधिक प्रश्न पूछ सकता है। निश्चित प्रश्न के निश्चित उत्तर होने से वैषयिकता के मार्ग में सफलता प्राप्त हो जाती है। किंतु सबसे बड़ी कठिनाई प्रश्नावली या अनुसूची के प्रमाणीकरण की है। प्रत्येक अध्ययनकर्त्ता अनुसूची व प्रश्नावली में प्रश्नों के निर्माण के समय उनके स्वरूप और भाषा में अंतरंग भावना का समावेश कर सकता है इसलिए यदि भिन्न–भिन्न प्रकार की अनुसूचियों व प्रश्नावलियों का प्रमापीकरण कर दिया जाये तो वह समस्या हल हो सकती है। लेकिन कठिनता यह है कि सामाजिक समस्याएं, घटनाएं तथा अध्ययन के उद्देश्य एक समान नहीं होते, अतः एक प्रमाणित प्रश्नावली या अनुसूची तैयार करना बड़ा कठिन कार्य है। इसका उपाय यह हो सकता है कि – प्रमुख समस्याओं को खंडों में विभाजित करके प्रत्येक खंड की पृथक् विशेषताएँ या अनुसूची तैयार कर दी जायें और जिस खंड से अध्ययन संबंधित हो, उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि प्रयोग में लाई जाये। इस प्रमाणित प्रश्नावली या अनुसूची के साथ अध्ययन क्षेत्र की स्थानीय विशेषताओं से संबंधित प्रश्न अध्ययनकर्त्ता स्वयं जोड़ सकता है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान में काफी सीमा तक एक वैषयिकता लायी जा सकती है।

8. अंतर–अनुशासन अथवा सहकारी अनुसंधान **(Inter Disciplinary or Co-operative Approach) :** समाज एक जटिल पूर्णता है जिसमें प्रत्येक घटना को मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य कारक सम्मिलित रूप से प्रभावित करते हैं इसलिए केवल एक ही सामाजिक विज्ञान में निपुण व्यक्ति प्रत्येक दृष्टिकोण से सामाजिक समस्या का सर्वांगीण अध्ययन नहीं कर सकता है। अतः ऐसी स्थिति में भिन्न–भिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा एक ही समस्या का अपने–अपने विशिष्ट दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार उस समस्या का यथार्थ, वास्तविक व बहुमुखी चित्र पूरे तौर पर सामने आ सकता है। इस सहकारी ढंग से किये गये अध्ययन को ही 'अंतर अनुशासन' अथवा 'सहकारी अनुसंधान' के नाम से जाना जाता है। मूल बात यह है कि सहकारी अनुसंधान में समाजशास्त्री, मानवशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री, भूगोलशास्त्री, भूगर्भशास्त्री, इंजीनियर, प्रशासन आदि सभी विज्ञानों के विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है। लीप्ले (Leplay) ने जो एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थे इस पद्धति के द्वारा पारिवारिक स्तर का सफल अध्ययन किया, इस अध्ययन का उद्देश्य कारीगरों पर औद्योगीकरण का प्रभाव ज्ञात करना था। उन्होंने अपने अन्वेषण में अर्थशास्त्रियों, राजनीति–विशेषज्ञों आदि के अतिरिक्त इंजीनियरों से भी सहायता प्राप्त की इस पद्धति की मूल विशेषता यह है कि विषय का अध्ययन सभी दृष्टिकोणों से किया जाता है। विभिन्न शाखाओं के निष्कर्षों के दोष तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा आसानी से स्पष्ट हो जाते हैं और उनके निवारण का पर्याप्त व उचित अवसर भी मिल जाता है।

अंतर–अनुशासन पद्धति के विषय के क्षेत्र में यंग (P.V. Young) लिखते हैं, "सहकारी अनुसंधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वर्तमान जीवन में जटिलतापूर्वक गुंथे हुये सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक व्यक्तियों के जाल के अध्ययन एवं विश्लेषण को सरल बना देता है।

आज किसी भी घटना के एक कारक पर बल देने की गलती समाज वैज्ञानिक नहीं करते हैं। आज अपराध के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी कारकों की विवेचना की जाती हैं। ऐसा करने से ही हमारे अध्ययन में यथार्थता या वस्तुनिष्ठता पनप पाती है। ऐसा करना हमारे लिए तभी सम्भव होता है जबकि उस विषय पर विभिन्न विज्ञानों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का प्रभावपूर्ण उपयोग करने में हम सफल होते हैं। इस प्रकार विभिन्न विज्ञानों के सहयोग पर आधारित अध्ययन या दृष्टिकोण को ही

अन्तः वैज्ञानिक या सहयोगी अध्ययन कहते हैं। आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि अनुसन्धानकर्त्ता कार्य के दौरान विभिन्न विज्ञानों के बीच जितना सहयोग होगा अध्ययन के निष्कर्ष उतने ही अधिक वस्तुनिष्ठ होंगे।

4.6.5 अपनी प्रगति जांचिए :

(थ) वस्तुनिष्ठता का अर्थ परिभाषित कीजिए।

(द) सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की क्यों आवश्यकता है ?

(ध) सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधनों का वर्णन करो।

(न) अनुसंधान में प्रयोगात्मक विधियों से आपका क्या अभिप्राय है?

(प) वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में आने वाली प्रमुख कठिनाईयों का वर्णन करो।

4.6.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर :

(थ) अनुसंधानकर्त्ता द्वारा तटस्थ और पक्षपात रहित निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है।

(द) उचित रूप से प्रतिनिधित्वकारी तथ्यों की प्राप्ति व सत्यापन के लिए सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता होती है, जिससे सामाजिक अनुसंधान को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जा सके और नए अनुसंधान की संभावनाओं को विकसित किया जा सके।

(ध) वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन :

–प्रयोगसिद्ध विधियाँ

–यांत्रिक साधनों का प्रयोग

–सामूहिक अनुसंधान का उपयोग

–अंतर–अनुशासनात्मक अनुसंधान

(न) प्रयोगात्मक विधि : इस विधि में दो समूहों को चुना जाता है जो सभी दृष्टियों में समान होते हैं। एक समूह को निर्धारित कर दिया जाता है, अर्थात उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होने दिया जाता बल्कि दूसरे समूह को परीक्षण के लिए स्वतंत्र कर दिया जाता है। इसके विशेष कारण प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

(प) वस्तुनिष्ठता में आने वाली कठिनाईयाँ :

–भावात्मक प्रभाव

–एकरूपता का अभाव

–मौलिक तथ्यों का प्रभाव

–सामान्य ज्ञान द्वारा उत्पन्न भ्रम

–निष्पक्ष निष्कर्ष की प्राप्ति

4.7 सारांश :

प्रस्तुत विषय के अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वितीयक आँकड़े प्राथमिक शोध की प्रारूप रचना में सहायक होने के साथ–साथ प्राथमिक आँकड़ों के संग्रह से प्राप्त परिणामों की तुलना में भी सहायक होते हैं। अतः किसी भी शोध कार्य की शुरूआत करने से पहले द्वितीयक आँकड़ों का विश्लेषण करना हितकर होता है। द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के लिए विशेष रूप से जिन तथ्यों व सूचनाओं की आवश्यकता होती है वे शोध विषय पर ही आधारित होते हैं। द्वितीयक आँकड़ों के पुनरावलोकन व विश्लेषण में वही सूचनाएं सांख्यिकीय तथा दूसरे प्रासंगिक आँकड़े सम्मिलित होते हैं जो विभिन्न स्तरों पर पारिस्थितिकीय विश्लेषण में भी सहायक होते हैं। आँकड़ों का विश्लेषण न केवल यह समझने में सहायक है कि किसी विशेष क्षेत्र में क्या हो रहा है बल्कि यह भी कि ये क्यों हो रहा है? अन्तर्वस्तु विश्लेषण के अध्ययन विषय सामान्यतः गुणात्मक होते हैं और हम अपनी प्रविधि की ही सहायता से इसके परिमाणात्मक परिणामों को निकालते हैं। इस प्रकार गुणात्मक तथ्यों का परिमाणात्मक विश्लेषण ही इस प्रविधि का अभीष्ट होता है। व्यावसायिक या राजनीतिक जनमत को जानने के प्रयास में भी इस प्रविधि की सहायता मिलती है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि अन्तर्वस्तु विश्लेषण के माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान सम्पन्न किए गए हैं। शोध कार्य का अंतिम चरण प्रतिवेदन लेखन होता है। प्रतिवेदन के द्वारा सामाजिक वैज्ञानिक अपने सारे प्रयत्न और उसके निष्कर्षों को दूसरों को बताता है। पहले किया हुआ शोध आगे वाले शोध के लिए नींव का काम करता है। वैज्ञानिक शोध में विभिन्न शोध कार्यों के बीच यह तारतम्य बहुत महत्वपूर्ण है। प्रतिवेदनों के द्वारा यह तारतम्य बनता है। संसार के किसी भी भाग में कोई भी शोध हो, उसके प्रतिवेदन के प्रकाशन के बाद वह संसार के वैज्ञानिक कोष का अंग बन जाता है। सामाजिक विज्ञान की घटनाओं की जटिलता व वैयक्तिक अभिनति दोनों का सामाजिक विज्ञान के अनुसंधान में समावेश के साथ–साथ इसमें वस्तुनिष्ठता का अभाव कर देता है। लेकिन इसके बावजूद भी सामाजिक विज्ञान अनुसंधान के अध्ययन विषय में यदि समुचित

पद्धतियों एवं साधनों का समन्वित उपयोग किया जाए तो ऐसे अध्ययनों में पर्याप्त वस्तुनिष्ठता प्राप्त करना संभव है।

4.8 मुख्य शब्दावली :

- **द्वितीयक आँकड़े** : द्वितीयक तथ्य सामग्री वह है जिसे मौलिक स्रोतों से एक बार एकत्र किया गया है तथा जिसका प्रकाशन अधिकारी उनसे अलग है जिसने प्रथम स्तर पर सामग्री इकट्ठी करने को नियंत्रित किया था।
- **विश्लेषण** : किसी विधान या व्यवस्थाक्रम की सूक्ष्मता से परीक्षण करने की तथा उसके मूल तत्त्वों को खोजने की क्रिया को विश्लेषण कहा जाता है।
- **अन्तर्वस्तु विश्लेषण–** अन्तर्वस्तु विश्लेषण दरों को मापने के लिए संचारों के व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और मात्रात्मक ढ़ंग से अध्ययन और विश्लेषण करने की पद्धति है।
- **प्रतिवेदन लेख** : वह लिखित सामग्री, जो किसी घटना, कार्य–योजना, समारोह आदि के बारे में प्रत्यक्ष देखकर या छानबीन करके तैयार की गई रिपोर्ट होती है।
- **वस्तुनिष्ठता** : वस्तुनिष्ठता प्रमाण की निष्पक्षता से परीक्षण करने की इच्छा एवं योग्यता है।

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न :

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

(1) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण से आपका क्या अभिप्राय है ?

(2) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की सीमाओं का वर्णन करो।

(3) अंतर्वस्तु विश्लेषण का अर्थ समझाते हुए इसकी विशेषताएँ बताओ।

(4) अंतर्वस्तु विश्लेषण के कारणों का वर्णन करो।

(5) अनुसंधान प्रतिवेदन का अर्थ बताते हुए उसकी विशेषताओं का वर्णन करो।

(6) अनुसंधान प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियों का वर्णन करो।

(7) अनुसंधान प्रतिवेदन के प्रकाशन का वर्णन करो।

(8) वस्तुनिष्ठता का अर्थ परिभाषित करते हुए उसका अनुसंधान में महत्व का वर्णन करो।

(9) वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के प्रमुख साधनों का वर्णन करो।

(10) अंतर अनुशासनात्मक अध्ययन का अर्थ बताओ।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तारपूर्वक उत्तर दीजिए :

(1) द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए इसके गुण व दोषों का वर्णन करो।

(2) अंतर्वस्तु विश्लेषण की श्रेणियों का विस्तार से वर्णन करो।

(3) अंतर्वस्तु विश्लेषण का अर्थ समझाते हुए इसके चरणों का वर्णन करो।

(4) प्रतिवेदन लेखन का अर्थ परिभाषित करते हुए अनुसंधान में इसके उद्देश्यों का वर्णन करो।

(5) प्रतिवेदन लेखन की रूपरेखा का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

(6) अनुसंधान प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियों व प्रकाशन का वर्णन करो।

(7) वस्तुनिष्ठता का अर्थ परिभाषित करते हुए अनुसंधान में इसके महत्व का वर्णन करो।

(8) सामाजिक विज्ञान अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की समस्याओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं :

- अर्ल बैबी, ''द प्रक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च'', (थ्रटियथ एडिशन), वैड्सवर्थ पब्लिशिंग कम्पनी, न्यूयार्क, 2012
- डी.के. भट्टाचार्य, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'', एक्सल बुक्स, न्यू दिल्ली, 2005
- सी.आर. कोठारी, ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी : मैथड्स एण्ड टैक्निक्स'', (सैकिण्ड रिवाइज्ड एडिसन), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स (पी. लिमिटेड), न्यू दिल्ली, 2004
- राबर्ट बी.बर्नस, ''इंट्रोडूक्सन टू रिसर्च मैथड्स'', (फोर्थ एडिसन), सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, 2000
- एस. सरनताकोस, ''सोशल रिसर्च'', (सैकिण्ड एडिसन), मैकमिलन प्रेस, लंदन, 1998
- एच.एल. मैनहिम, ''सोशलोजिकल रिसर्च'', दा डोरसे प्रेस, इलिनोइस, 1977
- रसेल एल. एकॉफ, ''डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च'',यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1960
- राम आहूजा, ''सामाजिक अनुसंधान'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2010

***